आभार प्रदर्शन

इस भाग के निर्माण एवं प्रकाशन काल में दिवंगत परम प्रतापी जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज एवं वर्तमान पूज्य श्री गणेशीलालजी महाराज साहब अपने विद्वान् शिष्यों के साथ भीनासर एवं बीकानेर विराजते थे। समय समय पर पुस्तक का मेटर आप श्रीमानों को दिखाया गया है। आप श्रीमानों की अमूल्य सूचना एवं सम्मति से पुस्तक की प्रामाणिकता बहुत बढ़ गई है। इसलिये यह समिति आप श्रीमानों की चिरकृतज्ञ रहेगी। श्रीमान् मुनि बड़े चाँदमलजी महाराज साहेब, पण्डित मुनि श्री सिरेमलजी एवं जवरीमलजी महाराज साहेब ने भी पुस्तक के कतिपय विषय देखे हैं इसलिये यह समिति उक्त मुनियों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है। इस पुस्तक के प्रारम्भिक कुछ बोल श्रीमान् पन्नालालजी महाराज साहेब को दिखाने के लिये रतलाम भेजे थे। वहाँ उक्त मुनि श्री एव श्रीमान् बालचन्दजी सा० ने उन्हें देख कर अमूल्य सूचनाएँ देने की कृपा की है अतः हम आपके भी पूर्ण आभारी हैं।

निवेदक—पुस्तक प्रकाशन समिति

(द्वितीयावृत्ति के सम्बन्ध में)

शास्त्रमर्मज्ञ पडित मुनि श्री पन्नालालजी म. सा. ने इस भाग का दुबारा सूक्ष्मनिरीक्षण करके संशोधन योग्य स्थलों के लिये उचित परामर्श दिया है। अतः हम आपके आभारी हैं।

वयोवृद्ध मुनि श्री सुजानमलजी म. सा. के सुशिष्य पं० मुनिश्री लक्ष्मीचन्दजी म. सा ने इसकी प्रथमावृत्ति की छपी हुई पुस्तक का आद्योपान्त उपयोग पूर्वक अवलोकन करके कितनेक शंका स्थलों के लिये सूचना की थी। उनका यथास्थान संशोधन कर दिया गया है। अतः हम उक्त मुनि श्री के आभारी हैं।

इसके सिवाय जिन २ सज्जनों ने आवश्यक संशोधन कराये और पुस्तक को उपयोगी बनाने के लिये समय समय पर अपनी शुभ सम्मतियाँ प्रदान की हैं उन सब का हम आभार मानते हैं।

इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ के प्रणयन में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में मुझे जिन जिन विद्वानों की सम्मतियाँ और ग्रन्थ कर्त्ताओं की पुस्तकों से लाभ हुआ है उनके प्रति मैं विनम्र भाव से कृतज्ञ हूँ।

ऊन प्रेस बीकानेर

निवेदक—भैरोदान सेठिया

विषय सूची

दो शब्द

श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह के छठे भाग में २० से ३० तक ग्यारह बोल संग्रह किये गये हैं। इन बोलों मे आनुपूर्वी, साधु श्रावक का आचार, द्रव्यानुयोग, कथा सूत्रों के अध्ययन, न्याय प्रश्नोत्तर आदि अनेक विषयों का समावेश हुआ है। कागज की कमी के कारण थोकड़े सम्बन्धी कई बोल हम इस भाग मे नहीं दे सके हैं। सूत्रों की मूल गाथायें भी इसमें नहीं दी जा सकी हैं। प्रमाण के लिये उद्धृत ग्रन्थों की सूची प्रायः इसके भाग १ से ५ और ८ भाग के अनुसार है। बोलों के नीचे सूत्र और ग्रन्थ का नाम प्रमाण के लिये दिया हुआ है इसलिये इसमें नहीं दिया गया है। तीर्थङ्करों के वर्णन मे सप्ततिशत स्थान प्रकरण ग्रन्थ से बहुत सी बातें ली गई हैं। बोल संग्रह पर विद्वानों की सम्मतियाँ प्राप्त हुई है। वे भी कागज की कमी के कारण इस मे नहीं दी जा सकी हैं।

श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह के छठे भाग की द्वितीयावृत्ति पाठकों के सामने प्रस्तुत है। इसकी प्रथमावृत्ति संवत् २००० मे प्रकाशित हुई थी। पाठकों को यह बहुत पसन्द आई। इसलिए थोड़े ही समय में इसकी सारी प्रतियां समाप्त हो गईं। इस ग्रन्थ की उपयोगिता के कारण इसके प्रति जनता कि रुचि इतनी बढ़ी कि हमारे पास इसकी मांग बराबर आने लगी। जनता की माग को देख कर हमारी भी यह इच्छा हुई कि इसकी द्वितीयावृत्ति शीघ्र ही छपाई जाय किन्तु प्रेस की असुविधा के कारण इसके प्रकाशन में विलम्ब हुआ है। फिर भी हमारा प्रयत्न चालू था। आज हम अपने प्रयत्न में सफल हुए हैं। अतः इसकी द्वितीयावृत्ति पाठकों के सामने रखते हुए हमें आनन्द होता है।

'पुस्तक शुद्ध छपे' इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखा गया है फिर भी दृष्टिदोष से तथा प्रेस कर्मचारियों की असावधानी से छपते समय कुछ अशुद्धियां रह गई हैं इसके लिए पुस्तक में शुद्धिपत्र लगा दिया गया है। अतः पहले उसके अनुसार पुस्तक सुधार कर फिर पढ़ें। इनके सिवाय यदि कोई अशुद्धि आपके ध्यान में आवे तो हमें सूचित करने की कृपा करें ताकि आगामी आवृत्ति में सुधार कर दिया जाय।

वर्तमान समय में कागज, छपाई और अन्य सारा सामान महंगा होने के कारण इस द्वितीयावृत्ति की कीमत बढ़ानी पड़ी है फिर भी ज्ञान प्रचार की दृष्टि से इसकी कीमत लागत मात्र ही रखी गई है। इस कारण

से कमीशन आदि नहीं दिया जा सकता है। इससे प्राप्त रकम फिर भी साहित्य प्रकाशन आदि ज्ञान के कार्यों में ही लगाई जाती है।

निवेदकः—

मन्त्री

श्री अगरचन्द भैरोदान सेठिया

जैन पारमार्थिक संस्था

बीकानेर

श्री सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर

पुस्तक प्रकाशन समिति

ध्यत्त—श्री दानवीर सेठ भैरोदानजी सेठिया।

मंत्री — श्री जेठमलजी सेठिया।

उपमंत्री—श्री माणकचन्दजी सेठिया।

लेखक मण्डल

श्री इन्द्रचन्द शास्त्री M. A. शास्त्राचार्य, न्यायतीर्थ, वेदान्तवारिधि।

श्री रोशनलाल जैन B.A., LLB., न्याय काव्य सिद्धान्ततीर्थ, विशारद।

श्री श्यामलाल जैन M. A. न्यायतीर्थ, विशारद।

श्री घेवरचन्द्र बाँठिया 'वीरपुत्र' न्याय व्याकरणतीर्थ, सिद्धान्तशास्त्री।

आनुपूर्वी

जहां १ है वहां णमो अरिहंताणं बोलना चाहिए।
जहां २ है वहां णमो सिद्धाणं बोलना चाहिए।
जहां ३ है वहां णमो आयरियाणं बोलना चाहिए।
जहां ४ है वहां णमो उवज्झायाणं बोलना चाहिए।
जहां ५ है वहां णमो लोए सव्वसाहूणं बोलना चाहिए।

१
१ २ ३ ४ ५
२ १ ३ ४ ५
१ ३ २ ४ ५
३ १ २ ४ ५
२ ३ १ ४ ५
३ २ १ ४ ५

२
१ २ ४ ३ ५
२ १ ४ ३ ५
१ ४ २ ३ ५
४ १ २ ३ ५
२ ४ १ ३ ५
४ २ १ ३ ५

३
१ ३ ४ २ ५
३ १ ४ २ ५
१ ४ ३ २ ५
४ १ ३ २ ५
३ ४ १ २ ५
४ ३ १ २ ५

४
२ ३ ४ १ ५
३ २ ४ १ ५
२ ४ ३ १ ५
४ २ ३ १ ५
३ ४ १ २ ५
४ ३ २ १ ५

५
१ २ ३ ५ ४
२ १ ३ ५ ४
१ ३ २ ५ ४
३ १ २ ५ ४
२ ३ १ ५ ४
३ २ १ ५ ४

६
१ २ ५ ३ ४
२ १ ५ ३ ४
१ ५ २ ३ ४
५ १ २ ३ ४
२ ५ १ ३ ४
५ २ १ ३ ४

श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह

छठा भाग

मंगलाचरण

सिद्धाणं बुद्धाणं, पारगयाणं परंपरगयाणं ।
लोअग्गमुवगयाणं, णमो सया सव्वसिद्धाणं ॥ १ ॥
जो देवाण वि देवो, जं देवा पंजली नमंसंति ।
तं देवदेवमहिअं, सिरसा वंदे महावीरं ॥ २ ॥
इक्कोवि णमुक्कारो, जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स ।
संसार सागराओ, तारेइ णरं वा णारिं वा ॥ ३ ॥
उज्जितसेलसिहरे, दिक्खा णाणं णिसीहिआ जस्स ।
तं धम्मचक्कवट्टिं, अरिट्ठणेमिं णमंसामि ॥ ४ ॥
चत्तारि अट्ठ दस दो य, वंदिआ जिणवरा चउव्वीसं ।
परमट्ठणिट्ठिअट्ठा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ५ ॥

पुस्तक मिलने का पता—

अगरचन्द भैरोदान सेठिया

जैन पारमार्थिक संस्था,

मोहल्ला मरोटीयां का

बीकानेर (राजस्थान)

अकाराद्यनुक्रमणिका

७

१ ३ ५ २ ४
३ १ ५ २ ४
१ ५ ३ २ ४
५ १ ३ २ ४
३ ५ १ २ ४
५ ३ १ २ ४

८

२ ३ ५ १ ४
३ २ ५ १ ४
२ ५ ३ १ ४
५ २ ३ १ ४
३ ५ २ १ ४
५ ३ २ १ ४

९

१ २ ४ ५ ३
२ १ ४ ५ ३
१ ४ २ ५ ३
४ १ २ ५ ३
२ ४ १ ५ ३
४ २ १ ५ ३

१०

१ २ ५ ४ ३
२ १ ५ ४ ३
१ ५ २ ४ ३
५ १ २ ४ ३
२ ५ १ ४ ३
५ २ १ ४ ३

११

१ ४ ५ २ ३
४ १ ५ २ ३
१ ५ ४ २ ३
५ १ ४ २ ३
४ ५ १ २ ३
५ ४ १ २ ३

१२

२ ४ ५ १ ३
४ २ ५ १ ३
२ ५ ४ १ ३
५ २ ४ १ ३
४ ५ २ १ ३
५ ४ २ १ ३

१३

१ ३ ४ ५ २
३ १ ४ ५ २
१ ४ ३ ५ २
४ १ ३ ५ २
३ ४ १ ५ २
४ ३ १ ५ २

१४

१ ३ ५ ४ २
३ १ ५ ४ २
१ ५ ३ ४ २
५ १ ३ ४ २
३ ५ १ ४ २
५ ३ १ ४ २

१५

१ ४ ५ ३ २
४ १ ५ ३ २
१ ५ ४ ३ २
५ १ ४ ३ २
४ ५ १ ३ २
५ ४ १ ३ २

१६

३	४	५	१	२
४	३	५	१	२
३	५	४	१	२
५	३	४	१	२
४	५	३	१	२
५	४	३	१	२

१७

२	३	४	५	१
३	२	४	५	१
२	४	३	५	१
४	२	३	५	१
३	४	२	५	१
४	३	२	५	१

१८

२	३	५	४	१
३	२	५	४	१
२	५	३	४	१
५	२	३	४	१
३	५	२	४	१
५	३	२	४	१

१९

२	४	५	३	१
४	२	५	३	१
२	५	४	३	१
५	२	४	३	१
४	५	२	३	१
५	४	२	३	१

२०

३	४	५	२	१
४	३	५	२	१
३	५	४	२	१
५	३	४	२	१
४	५	३	२	१
५	४	३	२	१

आनुपूर्वी कंठस्थ गुणने की सरल विधि

यह पांच पदों की आनुपूर्वी है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाचों पद क्रमशः १, २, ३, ४, ५ अकों से दिये गये हैं। जितने अंकों की आनुपूर्वी होती है उन अंकों को परस्पर गुणा करने से जो गुणनफल आता है उतने ही आनुपूर्वी के भंग बनते हैं। उक्त पाच अंकों को परस्पर गुणा करने से १२० गुणनफल आता है। इसलिये पांच पदों की इस आनुपूर्वी के १२० भग बनते हैं। आनुपूर्वी का प्रथम भंग १, २, ३, ४, ५ इस प्रकार अनुक्रम से है इसलिये इसे

पूर्वानुपूर्वी कहते हैं। अन्तिम भंग ५, ४, ३, २, १ इस प्रकार उल्टे क्रम से है इसलिये यह पश्चात् आनुपूर्वी कहलाता है। शेष मध्य के ११८ भंग अनानुपूर्वी के हैं। आनुपूर्वी में कुल बीस कोष्ठक हैं और एक एक कोष्ठक में छः छः भग हैं। ५ अंकों का एक भंग है इसलिये ६ भगों में अर्थात् एक कोष्ठक मे तीस अंक रहते हैं।

प्रत्येक कोष्ठक में चौथे पाँचवें खाने के अन्तिम दो अंक कायम रहते हैं। और प्रारम्भ के तीन खानों में परिवर्तन होता रहता है। बीसों कोष्ठकों के अन्तिम दो दो अंकों का यहा एक यन्त्र दिया जाता है—

पहले चार	कोष्ठकों के अन्तिम दो अंक			४५	३५	२५	१५
पांचवें से आठवें	”	”	”	५४	३४	२४	१४
नवें से बारहवें	”	”	”	५३	४३	२३	१३
तेरहवें से सोलहवें	”	”	”	५२	४२	३२	१२
सत्रहवें से बीसवें	”	”	”	५१	४१	३१	२१

यन्त्र भरने की विधि यह है। आनुपूर्वी के पहले कोष्ठक के अन्तिम अंक ४५ हैं। पहले कोष्ठक में चौथे पांचवें खाने में ये स्थायी रहेंगे। पहले कोष्ठक के पूरे हो जाने पर दूसरे कोष्ठक में दस घटा कर अन्तिम अंक ३५ रखना चाहिये। इसी प्रकार तीसरे और चौथे कोष्ठकों में भी दस दस घटाकर क्रमशः २५ और १५ अंक रखने चाहिये। ये चार कोष्ठक पूरे हो जाने पर यन्त्र की दूसरी पंक्ति में यानी पांचवें कोष्ठक में अन्तिम अंक ५४ रखना चाहिये। ५४ में दस घटाने से ४४ रहेंगे। किन्तु चूंकि एक भंग में दो अंक एक से नहीं आते इसलिये छठे कोष्ठकमें दस के बदले बीस घटाकर अन्तिम अंक ३४ रखना चाहिये, पर ४४ न रखना चाहिये। सातवें और आठवें कोष्ठक में दस दस घटा कर क्रमशः २४ और १४ अंक रखने चाहिये। यन्त्र की तीसरी चौथी और पाचवीं पंक्ति में क्रमशः नवें कोष्ठक के अन्तिम अंक ५३, तेरहवें के ५२ और सत्रहवें के ५१ हैं। इनके आगे के तीन तीन कोष्ठकों में

ऊपर की तरह दस दस घटा लेना चाहिये। जहां दस घटाने से एक ही अंक दो बार आता हो वहां बीस घटा लेना चाहिए। ग्यारहवें और सोलहवें कोष्टकों में इसी कारण दस के बदले बीस घटाये गये हैं।

इस प्रकार आनुपूर्वी के पहले, पांचवें, नवें, तेरहवें और सत्रहवें कोष्ठकों के अन्तिम अक क्रमशः ४५. ५४, ५३, ५२ और ५१ हैं। अगले तीन कोष्ठकों की अन्तिम अंकों के लिये पूर्ववर्ती कोष्ठकों में से दस दस घटा लेना चाहिये। किन्तु छठे ग्यारहवें और सोलहवें कोष्ठकों में से दस के बदले बीस घटाना चाहिये अन्यथा एक ही अंक दुबारा आ जाता है।

बीस कोष्ठकों में अन्तिम दो अंक ऊपर लिखे यन्त्र के अनुसार भरना चाहिये। कोष्ठकों के चौथे पांचवें खानों में ये अंक स्थायी रहेंगे और पहले के तीन खानों में ये अंक नहीं जायंगे। अन्तिम दो खानों में ऊपर लिखे अनुसार अंक रखने के बाद तीन अंक शेष रहेंगे। तीन अंकों में सब से छोटे अंक को पहला उससे बड़े को दूसरा और उससे भी बड़े को तीसरा अंक समझना चाहिये। मान लो, अन्तिम चौथे पांचवें खानों में ३४ अंक रखने के बाद १, २ और ५ ये तीन अंक शेष रहे। इनमें १ को पहला, २ को दूसरा, और पांच को तीसरा अंक समझना चाहिये। पहला दूसरा और तीसरा अंक प्रथम तीन खानों में छहों भगों में निम्नलिखित यन्त्र के अनुसार रहेंगे—

पहला भंग	पहला	दूसरा	तीसरा	१ २ ५
दूसरा भंग	दूसरा	पहला	तीसरा	२ १ ५
तीसरा भंग	पहला	तीसरा	दूसरा	१ ५ २
चौथा भंग	तीसरा	पहला	दूसरा	५ १ २
पांचवां भंग	दूसरा	तीसरा	पहला	२ ५ १
छठा भंग	तीसरा	दूसरा	पहला	५ २ १

आनुपूर्वी के बीसों कोष्टकों में यह यन्त्र लागू होता है। बीसों कोष्ठकों में स्थायी अंक भरने के बाद शेष तीन खाने ऊपर लिखे यन्त्र के अनुसार

भरे जाते हैं। विशेष खुलासा के लिये यहाँ कुछ और उदाहरण दिये जाते हैं। जैसे अन्तिम दो खानों में ४५ या ५४ अंक रहने पर शेष १, २, ३ रहते हैं। इनमें १ को पहला, २ को दूसरा और ३ को तीसरा अंक मान कर उक्त यन्त्र के अनुसार पहले तीन खाने भरने से पहला और पांचवां कोष्ठक बन जायगा।

	१ स्थायी					५ स्थायी				
१ भंग पहला दूसरा तीसरा	१	२	३	४	५	१	२	३	५	४
२ भंग दूसरा पहला तीसरा	२	१	३	४	५	२	१	३	५	४
३ भंग पहला तीसरा दूसरा	१	३	२	४	५	१	३	२	५	४
४ भंग तीसरा पहला दूसरा	३	१	२	४	५	३	१	२	५	४
५ भंग दूसरा तीसरा पहला	२	३	१	४	५	२	३	१	५	४
६ भंग तीसरा दूसरा पहला	३	२	१	४	५	३	२	१	५	४

दूसरा उदाहरण स्थायी अंक ३५ और ५३ का लीजिये। यहां शेष अंक १, २, ४, रहेंगे। इनमें १ को पहला २ को दूसरा और ४ को तीसरा समझ कर यन्त्र के अनुसार पहले तीन खाने भरने से दूसरा और नवां कोष्ठक बन जायगा।

	२ स्थायी					९ स्थायी				
१ भंग पहला दूसरा तीसरा	१	२	४	३	५	१	२	४	५	३
२ भंग दूसरा पहला तीसरा	२	१	४	३	५	२	१	४	५	३
३ भंग पहला तीसरा दूसरा	१	४	२	३	५	१	४	२	५	३
४ भंग तीसरा पहला दूसरा	४	१	२	३	५	४	१	२	५	३
५ भंग दूसरा तीसरा पहला	२	५	१	३	५	२	४	१	५	३
६ भंग तीसरा दूसरा पहला	४	२	१	३	५	४	२	१	५	३

तीसरा उदाहरण स्थायी अंक १२ और २१ को लीजिये। यहां ३, ४, ५ शेष रहेंगे। इनमें ३ को पहला, ४ को दूसरा और पांच को तीसरा अंक मान कर यन्त्र के अनुसार प्रथम तीन खाने भरने से सोलहवां और बीसवां कोष्ठक बन जायगा।

	१६ स्थायी					२० स्थायी				
१ भंग पहला दूसरा तीसरा	३	४	५	१	२	३	४	५	२	१
२ भग दूसरा पहला तीसरा	४	३	५	१	२	४	३	५	२	१
३ भंग पहला तीसरा दूसरा	३	५	४	१	२	३	५	४	२	१
४ भंग तीसरा पहला दूसरा	५	३	४	१	२	५	३	४	२	१
५ भग दूसरा तीसरा पहला	४	५	३	१	२	४	५	३	२	१
६ भंग तीसरा दूसरा पहला	५	४	३	१	२	५	४	३	२	१

अन्तिम स्थायी अंकों के सिवा शेष तीन अंक कोष्ठक के प्रथम भंग में छोटे बड़े के क्रम से रखे गये हैं। इनका हेर फेर होते हुए छठे भग में यह क्रम उलट गया है अर्थात् छोटे बड़े के बदले बड़े छोटे का क्रम हो गया है। इस यन्त्र को ध्यान पूर्वक देखने से मालूम होगा कि किस प्रकार परिवर्तन करने से छः भग बने हैं। स्थायी अंकों से बचे हुए तीन अंक तीसरे खाने में बड़े छोटे के क्रम से जोड़े से रखे गये हैं अर्थात् तीसरे खाने में प्रथम दो भंगों में तीसरा मध्यम दो भंगों में दूसरा और अन्तिम दो भगों में पहला अंक रखा गया है। इस प्रकार तीसरा खाना भर लेने के बाद जो अंक रह गये हैं उन्हें पहले दूसरे खाने में एक बार छोटे बड़े के क्रम से और दूसरी बार बड़े छोटे के क्रम से रखा गया है। जैसे आदि के दो भंगों में से प्रथम भंग में अवशिष्ट पहला दूसरा छोटे बड़े के क्रम से रखे गये हैं और दूसरे में इस क्रम को उलट कर बड़े छोटे के क्रम से दूसरा पहला रखे गये हैं। मध्य के दो भंगों में से प्रथम भंग में अवशिष्ट पहला तीसरा छोटे बड़े के क्रम से और दूसरे भंग में बड़े छोटे के क्रम से रखे गये हैं। इसी प्रकार अन्तिम दो भगों

में से प्रथम भंग में अवशिष्ट दूसरा तीसरा छोटे बड़े के क्रम से और दूसरे भंग में तीसरा दूसरा बड़े छोटे के क्रम से रखे गये हैं। इस प्रकार हेर फेर करते हुए एक कोष्ठक हो जाता है। शेष कोष्ठकों में भी इसी प्रकार परिवर्तन करने से छः छः भंग बन जाते हैं।

इस प्रकार समझ कर ऊपर के दो यंत्र याद रखने से आनुपूर्वी बिना पुस्तक की सहायता के जबानी फेरी जा सकती है। आनुपूर्वी को उपयोग पूर्वक जबानी फेरने से मन एकाग्र रहता है।

शुद्धि-पत्र

पुस्तक के छपते समय प्रेसमैन की असावधानी से अक्षर काना मात्रा अनुस्वार आदि की कई जगह नहीं उठने की गलतियां रह गई हैं। वह शुद्धि पत्र में नहीं निकल सकी हैं। इसलिये पाठक गण क्षमा करें।

श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, छठा भाग

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
६	२	—	पूर्वक
१४	२०	वर्तिनी	प्रवर्तिनी
१५	६	तिलेखित	प्रतिलेखित
१६	२४	टीकनुसार	टीकानुसार
२२	२५	उप नन	उपहनन
२६	२५	—	प्राणी
२७	१३	मनुष्ये र	मनुष्येतर
३०	२३	—	कहा
३१	१३	—	प्रजा
३१	१४	वार्थवश	स्वार्थवश
३१	१८	कुचशूल	कुक्षिशूल
३६	१	पुरमताल	पुरिमताल
४३	६	—	पुत्र
४८	२४	मत मत	मत
४६	२५	—	आदि
५६	१४	—	पत्ति
५७	२६		जायगा
६१	१८	—	क्लेश रहित परिणाम वाले अक्रूर कहलाते हैं।
६४	५	समेंती	समेंति
६४	२१	—	संभवासं
७०	२३	सवन	सेवन
७२	२१	हुऐ	हुए

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
७२	२६	—	वास्तविक
७३	६	पयार्थों	पदार्थों
८२	१२	समम	समय
१०४	८	दक्कड़ं	दुक्कड़
११२	१०	छुछ	कुछ
१९७	८	६३१	९३१
१९७	१८	६३२	९३२
२०२	१८	—	रहित
२०४	३	—	पूर्वक
२१०	२४	सशय	संशय
२१७	१३	आलोकित पान	आलोकित प्रकाशित पान
२२०	३	—	चराये
२२०	२२	निधूम अग्नि	निधूम वैक्रिय पुद्गल अग्नि
२३२	२१	धम	धर्म
२४४	२६	ग्रकार	प्रकार
२४६	८	(४)	(२)
२५६	२६	वेधूर्तता	वे धूर्तता
२५६	२६	सेही	से ही
२५८	१०	अच्भी	अच्छी
२५८	१९	स	से
२५९	१५	का	को
२६१	१२	अभमकुमार	अभयकुमार
२६१	१६	—	इसके
२७९	५	धनुविद्या	धनुर्विद्या
२८२	१९	पिउणा	पिउणो
३०२	१	पवत	पर्वत
३०२	४	उसस	उससे

भावार्थ - सिद्ध(कृतार्थ),बुद्ध, संसार के पार पहुंचे हुए,लोकाग्र स्थित, परम्परागत सभी सिद्ध भगवान् को सदा नमस्कार हो॥१॥

जो देवों का भी देव अर्थात् देवाधिदेव है, जिसे देवता अंजलि बांध कर प्रणाम करते हैं, देवेन्द्र पूजित उस भगवान् महावीर स्वामी को मैं नतमस्तक होकर वन्दना करता हूँ ॥२॥

जिनवरों में वृषभ रूप भगवान् वर्धमान स्वामी को भावपूर्वक किया गया एक भी नमस्कार संसार-सागर से स्त्री पुरुष को तिरा देता है ॥३॥

गिरनार पर्वत पर जिसके दीक्षा कल्याणक, ज्ञान कल्याणक एवं निर्वाण कल्याणक सम्पन्न हुए हैं, धर्म चक्रवर्ती उस अरिष्टनेमि प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥४॥

इन्द्र नरेन्द्रादि द्वारा वन्दित, परमार्थतः कृतकृत्य हुए एवं सिद्ध गति को प्राप्त चार, आठ, दस और दो–यानी चौबीसों जिनेश्वर देव मुझे सिद्धि प्रदान करें ॥५॥

बीसवां बोल संग्रह

९०१–श्रुत ज्ञान के बीस भेद

मतिज्ञान के बाद शब्द और अर्थ के पर्यालोचन से होने वाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। इसके बीस भेद हैं—

पज्जय अक्खर पय संघाया, पडिवत्ति तह य अणुओगो।
पाहुडपाहुड पाहुड, वत्थू पुव्वा य ससमासा॥

शब्दार्थ-(पज्जय) पर्याय श्रुत, (अक्खर) अक्षर श्रुत, (पय) पद श्रुत, (संघाय) संघात श्रुत, (पडिवत्ति) प्रतिपत्ति श्रुत, (तह य) इसी प्रकार (अणुओगो) अनुयोग श्रुत, (पाहुडपाहुड) प्राभृत प्राभृत श्रुत, (पाहुड) प्राभृत श्रुत, (वत्थू) वस्तु श्रुत (य) और (पुव्व) पूर्व श्रुत ये दसों (ससमासा) समास सहित हैं-अर्थात् दसों के साथ समास शब्द जोड़ने से दूसरे दस भेद भी होते हैं।

(१) पर्याय श्रुत-लब्धि अपर्याप्त सूक्ष्म निगोद के जीव को उत्पत्ति के प्रथम समय में कुश्रुत का जो सर्व जघन्य अंश होता है, उसकी अपेक्षा दूसरे जीव में श्रुत ज्ञान का जो एक अंश बढ़ता है उसे पर्याय श्रुत कहते हैं।

(२) पर्याय समास श्रुत-दो, तीन आदि पर्याय श्रुत, जो दूसरे जीवों में बढ़े हुए पाये जाते हैं, उनके समुदाय को पर्याय समास श्रुत कहते हैं।

(३) अक्षर श्रुत-अ आदि लब्ध्यक्षरों में से किसी एक अक्षर को अक्षर श्रुत कहते हैं।

(४) अक्षर समास श्रुत-लब्ध्यक्षरों के समुदाय को अर्थात्

दो तीन आदि संख्याओं को अक्षर समास श्रुत कहते हैं।

(५) पद श्रुत-जिस अक्षर समुदाय से किसी अर्थ का बोध हो उसे पद और उसके ज्ञान को पद श्रुत कहते हैं।

(६) पद समास श्रुत-पदों के समुदाय का ज्ञान पद समास श्रुत कहा जाता है।

(७) संघात श्रुत-गति आदि चौदह मार्गणाओं में से किसी एक मार्गणा के एक देश के ज्ञान को संघात श्रुत कहते हैं। जैसे गति मार्गणा के चार अवयव हैं-देव गति, मनुष्य गति, तिर्यञ्च गति और नरक गति। इनमें से एक का ज्ञान संघात श्रुत कहलाता है।

(८) संघात-समास श्रुत-किसी एक मार्गणा के अनेक अवयवों का ज्ञान संघात समास श्रुत कहलाता है।

(९) प्रतिपत्ति श्रुत-गति, इन्द्रिय आदि द्वारों में से किसी एक द्वार के द्वारा समस्त संसार के जीवों को जानना प्रतिपत्ति श्रुत है।

(१०) प्रतिपत्ति समास श्रुत-गति आदि दो चार द्वारों के द्वारा होने वाला जीवों का ज्ञान प्रतिपत्ति समास श्रुत है।

(११) अनुयोग श्रुत--सत्पद प्ररूपणा आदि किसी अनुयोग के द्वारा जीवादि पदार्थों को जानना अनुयोग श्रुत है।

(१२) अनुयोग समास श्रुत-एक से अधिक अनुयोगों के द्वारा जीवादि को जानना अनुयोग समास श्रुत है।

(१३) प्राभृत-प्राभृत श्रुत-दृष्टिवाद के अन्दर प्राभृत प्राभृत नामक अधिकार है, उनमें से किसी एक का ज्ञान प्राभृत-प्राभृत श्रुत है।

(१४) प्राभृत-प्राभृत समास श्रुत- एक से अधिक प्राभृत-प्राभृतों के ज्ञान को प्राभृत-प्राभृत समास श्रुत कहते हैं।

(१५) प्राभृत श्रुत--जिस प्रकार कई उद्देशों का एक अध्ययन होता है उसी प्रकार कई प्राभृत-प्राभृतों का एक प्राभृत होता है। एक प्राभृत के ज्ञान को प्राभृत श्रुत कहते हैं।

(१६) प्राभृत समास श्रुत-एक से अधिक प्राभृतों के ज्ञान को प्राभृत समास श्रुत कहते हैं।

(१७) वस्तु श्रुत-कई प्राभृतों का एक वस्तु नामक अधिकार होता है। एक वस्तु का ज्ञान वस्तु श्रुत है।

(१८) वस्तु समास श्रुत-अनेक वस्तुओं के ज्ञान को वस्तु समास श्रुत कहते हैं।

(१९) पूर्व श्रुत-अनेक वस्तुओं का एक पूर्व होता है। पूर्व के ज्ञान को पूर्व श्रुत कहते हैं।

(२०) पूर्व समास श्रुत-अनेक पूर्वों के ज्ञान को पूर्व समास श्रुत कहते हैं। (कर्मग्रन्थ १ गाथा ७)

९०२-तीर्थङ्कर नामकर्म बाँधने के बीस बोल

अरिहंत सिद्ध पवयण, गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसु।
वच्छल्लया एएसिं, अभिक्ख णाणोवओगे य॥
दंसण विणए आवस्सए य, सीलव्वए णिरइआरं।
खण लव तव च्चियाए, वेयावच्चे समाही य॥
अप्पुव्वणाणगहणे, सुयभत्ती पवयणे पभावणया।
एएहि कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो॥

(१) घाती कर्मों का नाश किये हुए, इन्द्रादि द्वारा वन्दनीय, अनन्त ज्ञान दर्शन सम्पन्न अरिहन्त भगवान् के गुणों की स्तुति एवं विनय भक्ति करने से जीव के तीर्थङ्कर नामकर्म का बंध होता है।

(२) सकल कर्मों के नष्ट हो जाने से कृतकृत्य हुए, परम सुखी, ज्ञान दर्शन में लीन, लोकाग्र स्थित, सिद्ध शिला के ऊपर विराजमान सिद्ध भगवान् की विनय भक्ति एवं गुणग्राम करने से जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है।

(३) बारह अंगों का ज्ञान प्रवचन कहलाता है एवं उपचार

से प्रवचन-ज्ञान के धारक संघ को भी प्रवचन कहते हैं। विनय भक्ति पूर्वक प्रवचन का ज्ञान सीखकर उसकी आराधना करने, प्रवचन के ज्ञाता की विनय भक्ति करने, उनका गुणोत्कीर्तन करने तथा उनकी आशातना टालने से जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है।

(४) धर्मोपदेशक गुरु महाराज की बहुमान भक्ति करने, उन के गुण प्रकाश करने एवं आहार, वस्त्रादि द्वारा सत्कार करने से जीव के तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है।

(५) जाति, श्रुत एवं दीक्षापर्याय के भेद से स्थविर के तीन भेद हैं। तीनों का स्वरूप इसी ग्रन्थ के प्रथम भाग के ९१ बोल में दिया गया है। स्थविर महाराज के गुणों की स्तुति करने से वन्दनादि रूप भक्ति करनेसे एवं प्रासुक आहारादि द्वारा सत्कार करने से जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है।

(६) प्रभूत श्रुतज्ञानधारी मुनि बहुश्रुत कहलाते हैं। बहुश्रुत के तीन भेद हैं-सूत्र बहुश्रुत, अर्थ बहुश्रुत, उभय बहुश्रुत। सूत्र बहुश्रुत की अपेक्षा अर्थ बहुश्रुत प्रधान होते हैं एवं अर्थबहुश्रुत से उभय बहुश्रुत प्रधान होते हैं। इनकी वन्दना नमस्कार रूप भक्ति करने, उनके गुणों की श्लाघा करने, आहारादि द्वारा सत्कार करने तथा अवर्णवाद एवं आशातना का परिहार करने से जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है।

(७) अनशन-ऊनोदरी आदि छहों बाह्य तप एवं प्रायश्चित्त विनय आदि छहों आभ्यन्तर तप का सेवन करने वाले साधु मुनिराज तपस्वी कहलाते हैं। तपस्वी महाराज की विनय भक्ति करने से, उनके गुणों की प्रशंसा करने से, आहारादि द्वारा उनका सत्कार करनेसे एवं अवर्णवाद, आशातना का परिहार करने से जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है।

(८) निरन्तर ज्ञान में उपयोग रखने से जीव के तीर्थंकर नाम

कर्म का बंध होता है।

(९) निरतिचार शुद्ध सम्यक्त्व धारण करने से जीव के तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है।

(१०) ज्ञानादि का यथा योग्य विनय करने से जीव तीर्थंकर नाम कर्म बाँधता है।

(११) भाव पूर्वक शुद्ध आवश्यक प्रतिक्रमण आदि कर्त्तव्यों का पालन करने से जीव के तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है।

(१२) निरतिचार शील और व्रत यानी मूल गुण, और उत्तरगुणों का पालन करने वाला जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है।

(१३) सदा संवेग भावना एवं शुभ ध्यान का सेवन करने से जीव तीर्थंकर नाम कर्म बाँधता है।

(१४) यथाशक्ति बाह्य तप एवं आभ्यन्तर तप करने से जीव के तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है।

(१५) सुपात्र को साधुजनोचित्त प्रासुक अशनादि का दान देने से जीव के तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है।

(१६) आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान; नवदीक्षित धार्मिक, कुल, गण, संघ, इन की भावभक्ति पूर्वक वैयावृत्त्य करने से जीव तीर्थंकर नाम कर्म बांधता है। यह प्रत्येक वैयावृत्त्य तेरह प्रकार का है। (१) आहार लाकर देना (२) पानी लाकर देना (३) आसन देना (४) उपकरण की प्रतिलेखना करना (५) पैर पूँजना (६) वस्त्र देना (७) औषधि देना (८) मार्ग में सहायता देना (९) दुष्ट, चोर आदि से रक्षा करना (१०) उपाश्रय में प्रवेश करते हुए ग्लान या वृद्ध साधु का दण्ड [लकड़ी] ग्रहण करना (११-१३) उच्चार, प्रश्रवण एवं श्लेष्म के लिये पात्र देना।

(१७) गुरु आदि का कार्य सम्पादन करने से एवं उनका मन प्रसन्न रखने से जीव तीर्थंकर नाम कर्म बाँधता है।

(१८) नवीन ज्ञान का निरन्तर अभ्यास करने से जीव तीर्थंकर नाम कर्म बाँधता है।

(१९) श्रुत की भक्ति बहुमान करने से जीव तीर्थंकर नाम कर्म बाँधता है।

(२०) देशना द्वारा प्रवचन की प्रभावना करने से जीव तीर्थंकर नाम कर्म बांधता है।

इन बीस बोलों की भाव पूर्वक आराधना करने से जीव तीर्थंकर नाम कर्म बाँधता है। (आवश्यक सूत्र निर्युक्ति गाथा १७६-१८१ पृ ११८)
(ज्ञातासूत्र अ० ८) (प्रवचन सारोद्धार द्वार १० गा. ३१०-३१९)

९०३—विहरमान बीस

जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र के मध्य भाग में मेरु पर्वत है। पर्वत के पूर्व में सीता और पश्चिम में सीतोदा महानदी है। दोनों नदियों के उत्तर और दक्षिण में आठ आठ विजय हैं। इस प्रकार जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में आठ आठ की पंक्ति में बत्तीस विजय हैं। इन विजयों में जघन्य ४ तीर्थङ्कर रहते हैं अर्थात् प्रत्येक आठ विजयों की पंक्ति में कम से कम एक तीर्थङ्कर सदा रहता है। प्रत्येक विजय में एक तीर्थङ्कर के हिसाब से उत्कृष्ट बत्तीस तीर्थङ्कर रहते हैं।
(स्थानांग ८ सूत्र ६३७)

धातकी खंड और अर्द्धपुष्कर द्वीप के चारों विदेह क्षेत्र में भी ऊपर लिखे अनुसार ही बत्तीस बत्तीस विजय हैं। प्रत्येक विदेह क्षेत्र में ऊपर लिखे अनुसार जघन्य चार और उत्कृष्ट बत्तीस तीर्थङ्कर सदा रहते हैं। कुल विदेह क्षेत्र पांच हैं और उनमें विजय १६० हैं। सभी विजयों में जघन्य बीस और उत्कृष्ट १६० तीर्थङ्कर रहते हैं।

वर्तमान काल में पांचों विदेह क्षेत्र में बीस तीर्थङ्कर विद्यमान हैं। वर्तमान समय में विचरने के कारण उन्हें विहरमान कहा जाता है। विहरमानों के नाम ये हैं—

(१) श्री सीमन्धर स्वामी (२) श्री युगमन्धर स्वामी (३) श्री बाहु स्वामी (४) श्री सुबाहु स्वामी (५) श्री सुजात स्वामी (श्री संयातक स्वामी) (६) श्री स्वयं प्रभ स्वामी (७) श्री ऋषभानन स्वामी (८) श्री अनन्त वीर्य स्वामी (९) श्री सूरप्रभ स्वामी (१०) श्री विशाल-धर स्वामी (विशाल कीर्ति स्वामी) (११ श्री वज्रधर स्वामी (१२) श्री चन्द्रानन स्वामी १३ श्री चन्द्र बाहु स्वामी (१४) श्री भुजंग स्वामी (भुजंगप्रभ स्वामी) १५) श्री ईश्वर स्वामी (१६) श्री नेमिप्रभ स्वामी नेमीश्वर स्वामी (१७ श्री वीरसेन स्वामी (१८) श्री महा-भद्र स्वामी (१९) श्री देवयश स्वामी (२०) श्री अजितवीर्य स्वामी।

बीस विहरमानों के चिह्न लांछन क्रमशः इस प्रकार हैं—

(१) वृषभ २ हस्ती (३) मृग (४) कपि (५) सूर्य (६) चन्द्र (७) सिंह (८) हस्ती (९) चन्द्र १०) सूर्य (११) शंख (१२) वृषभ (१३) कमल (१४ कमल (१५) चन्द्र (१६) सूर्य १७) वृषभ (१८) हस्ती १९) चन्द्र (२०) स्वस्तिक।

(श्री विहरमान एक विंशति स्थानक। त्रिलोकसार)

९०४— बीस कल्प

बृहत्कल्प सूत्र प्रथम उद्देशे में साधु साध्वियों के आहार, स्थानक आदि बीस बोलों सम्बन्धी कल्पनीयता और अकल्पनीयता का वर्णन है, वे क्रमशः नीचे दिये जाते हैं—

(१) साधु साध्वियों को कच्चे ताल, कदली (केले) आदि वृक्षों के फल एवं मूल अखण्डित लेना नहीं कल्पता है परन्तु यदि टुकड़े किये हुए हों और अचित्त हों तो वे ले सकते हैं। यदि वे पके हों और अचित्त हों तो साधु उन्हें टुकड़े और अखण्डित दोनों तरह से ले सकता है। साध्वी इन्हें अखण्डित नहीं ले सकती, इनके टुकड़े भी तभी ले सकती हैं यदि विधि पूर्वक किए गए हों। अविधिपूर्वक किए गए पके फलों के टुकड़े भी साध्वी को लेना नहीं कल्पता है।

(२) साधु को ग्राम नगर आदि सोलह स्थानों में, (जो इसी ग्रन्थ के पाँचवें भाग के बोल नं० ८६७ में दिये गये हैं) जो कोट आदि से घिरे हुए हैं एवं जिनके बाहर वस्ती नहीं है, हेमन्त ग्रीष्म ऋतु में एक मास रहना कल्पता है। यदि ग्राम यावत् राजधानी के बाहर बस्ती हो तो साधु एक मास अन्दर और एक मास बाहर रह सकता है। अन्दर रहते समय उसे अन्दर और बाहर रहते समय बाहर गोचरी करनी चाहिये। साध्वी उक्त स्थानों में साधु से दुगुने समय तक रह सकती है।

जिस ग्राम यावत् राजधानी में एक ही कोट हो, एक ही दरवाजा हो और निकलने और प्रवेश करने का एक ही मार्ग हो,- वहाँ साधु साध्वी दोनों एक साथ (एक ही काल में) रहना नहीं कल्पता है। परन्तु यदि अधिक हों तो वहाँ साधु साध्वी एक ही साथ रह सकते हैं।

* आपण गृह, रथ्यामुख, शृङ्गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर एवं अन्तरापण, इन सार्वजनिक स्थानों में साध्वी को रहना नहीं कल्पता। साधु को अन्य उपाश्रयों के अभाव में इन स्थानों में रहना कल्पता है।

साध्वी को खुले (विना किंवाड़ के) दरवाजे वाले उपाश्रय में रहना नहीं कल्पता परन्तु साधु वहाँ रह सकता है। यदि साध्वी को विना किंवाड़ के दरवाजे वाले मकान में रहना पड़े तो उसे दरवाजे के बाहर और अन्दर पर्दा लगा कर रहना कल्पता है।

---

* आपण गृह - बाजार के बीच का घर अथवा जिस घर के दोनों तरफ बाजार हो। रथ्यामुख - गली के नाके का घर। शृंगाटक – त्रिकोण मार्ग। त्रिक - तीन रास्ते जहाँ मिलते हों। चतुष्क - चार रास्ते जहाँ मिलते हों। चत्वर--जहाँ छः रास्ते मिलते हों। अन्तरापण - जिस घर के एक तरफ या दोनों तरफ हाट हो अथवा घर ही दुकान रूप हो जिसके एक तरफ व्यापार किया जाता हो और दूसरी तरफ घर हो।

(३) साध्वियों को अन्दर से लेप किया हुआ घटी के आकार का संकड़े मुंह का पात्रक (घड़वा) रखना एवं उसका परिभोग करना कल्पता है। साधुओं को ऐसा पात्र रखना नहीं कल्पता है।

(४) साधु साध्वियों को वस्त्र की चिलमिली (पर्दा) रखना एवं उसका परिभोग करना कल्पता है। चिलमिली वस्त्र, रज्जु, वल्क, दंड और कटक इस तरह पाँच प्रकार की होती है। इन पाँचों में वस्त्र के प्रधान होने से यहाँ सूत्रकार ने वस्त्र की चिलमिली दी है।

(५) साधु साध्वियों को जलाशय के किनारे खड़े रहना, बैठना, सोना, निद्रा लेना, अशन, पान आदि का उपभोग करना, उच्चार, प्रश्रवण, कफ एवं नाक का मैल परठना, स्वाध्याय करना, धर्म जागरणा करना एवं कायोत्सर्ग करना नहीं कल्पता।

(६) साधु साध्वियों को चित्र कर्म वाले उपाश्रय में रहना नहीं कल्पता है। उन्हें चित्ररहित उपाश्रय में रहना चाहिये।

(७) साध्वियों को शय्यातर की निश्रा के बिना रहना नहीं कल्पता। उन्हें शय्यातर की निश्रा में ही उपाश्रय में रहना चाहिए। 'मुझे आपकी चिन्ता है, आप किसी बात से न डरें, इस प्रकार शय्यातर के स्वीकार करने पर ही साध्वियाँ उसके मकान में रह सकती हैं। साधु कारण होने पर शय्यातर की निश्रा में और कारण न होने पर उसकी निश्रा के बिना रह सकते हैं।

(८) साधु साध्वियों को सागारिक उपाश्रय में रहना नहीं कल्पता है। जहाँ रूप, आभरण, वस्त्र, अलंकार, भोजन, गन्ध, वाद्य, गीत वाला या बिना गीत वाला नाटक हो वह सागारिक उपाश्रय है। इन्हें देख कर भुक्तभोगी साधु को भुक्त भोगों का स्मरण हो सकता है एवं अभुक्त भोगी को कुतूहल उत्पन्न होता है। वस्तुओं की ओर आकृष्ट साधु साध्वी से स्वाध्याय, भिक्षा आदि की ओर उपेक्षा होना सम्भव है। आपस में वे इन चीजों के भले बुरे की आलोचना

करने लग जाते हैं। सदा इनकी ओर चित्त लगे रहने से वे जो भी क्रियाएं करते हैं वे सभी बेमन की अतएव द्रव्य रूप होता हैं। यहाँ तक कि मोह के उद्रेक से संयम का त्याग कर गृहस्थ तक बन जाते हैं। इसलिये ये जहाँ न हों उस उपाश्रय में साधु साध्वी को रहना चाहिये। सामान्य रूप से कहे गये सागारिक उपाश्रय को स्त्री और पुरुष के भेद से शास्त्रकार अलग अलग बतलाते हैं।

साधुओं को स्त्री सागारिक उपाश्रय में रहना नहीं कल्पता परन्तु वे पुरुष सागारिक उपाश्रय में अपवाद रूप से रह सकते हैं। इसी प्रकार साध्वियों को पुरुष सागारिक उपाश्रय में रहना नहीं कल्पता परन्तु वे स्त्री सागारिक उपाश्रय में अपवाद रूप से रह सकती हैं।

साधुओं को प्रतिबद्ध शय्या (उपाश्रय) में रहना नहीं कल्पता। द्रव्य भाव के भेद से प्रतिबद्ध उपाश्रय दो प्रकार का है। गृहस्थ के घर और उपाश्रय की एक ह छत हो वह द्रव्य प्रतिबद्ध है। भाव प्रतिबद्ध प्रश्रवण, स्थान, रूप और शब्द के भेद से चार प्रकार का है। जिस उपाश्रय में स्त्रियों और साधुओं के लिये कायिकी भूमि (लघुमात्रा की जगह) एक हो वह प्रश्रवण प्रतिबद्ध है। जहाँ स्त्रियों और साधुओं के लिये बैठक की जगह एक हो वह स्थान प्रतिबद्ध उपाश्रय है। जिस उपाश्रय से स्त्रियों का रूप दिखाई देता है वह रूप प्रतिबद्ध है एवं जहाँ स्त्रियों की बोली, भूषणों की ध्वनि एवं रहस्य शब्द सुनाई देते हैं वह भाषा प्रतिबद्ध है। साध्वियों को दूसरा उपाश्रय न मिलने पर प्रतिबद्ध शय्या में रहना कल्पता है।

साधुओं को उस उपाश्रय में रहना नहीं कल्पता जहाँ उन्हें गृहस्थों के घर में होकर आना जाना पड़ता हो। साध्वियाँ दूसरे उपाश्रय के अभाव में ऐसे उपाश्रय में रह सकती हैं।

(९) आपस में कलह हो जाने पर आचार्य, उपाध्याय एवं साधु साध्वियों को अपना अपराध स्वीकार कर एवं 'मिच्छामि

दुक्कड़" देकर उसे शान्त करना चाहिये अर्थात् गुरु के समक्ष अपने दुश्चरित की आलोचना कर, उनके दिये गये प्रायश्चित्त को स्वीकार करना चाहिये एवं भविष्य में कलह न हो इसके लिये सावधान रहना चाहिये। इस प्रकार कलह उपशान्त करने वाले के प्रति सामने वाला चाहे आदर, अभ्युत्थान, वन्दना, नमस्कार रूप क्रियाएं करे या न करे, चाहे वह उसके साथ आहार एवं संवास करे या न करे एवं कलह को शान्त करे या न करे, यह सभी उसकी इच्छा पर निर्भर है परन्तु जो कलह का उपशम करता है वह आराधक है एवं उपशम न करने वाला विराधक है। इसलिये आत्मार्थी साधु को कलह शान्त कर देना चाहिये। उपशम ही साधुता का सार है।

(१०) साधु साध्वियों को चौमासे में विहार करना उचित नहीं है। शेष आठ महीनों में ही विहार करने का उनका कल्प है।

(११) जिन राज्यों के बीच पूर्व पुरुषों से वैर चला आ रहा है अथवा वर्तमान काल में जिन राज्यों में वैर है, जहाँ राजादि दूसरे ग्राम नगर आदि को जलाते हुए वैर विरोध कर रहे हैं, जिस राज्य में मन्त्री आदि प्रधान पुरुष राजा से विरक्त हैं, जिस राज्य का राजा मर गया है अथवा भाग गया है वे सभी वैराज्य कहलाते हैं। जहाँ दोनों राजाओं के राज्य में एक दूसरे के यहाँ जाना आना मना है उसे विरुद्ध राज्य कहते हैं। साधु साध्वियों को वैराज्य और विरुद्ध राज्य में वर्तमान काल में गमन, आगमन एवं गमनागमन न करना चाहिये। जहाँ पूर्व वैर है एवं भविष्य में वैर होने की संभावना है उन राज्यों में गमन आगमन आदि भी न करने चाहिएं। जो साधु ऐसे राज्यों में जाना आना रखता है एवं जाने आने वालों का अनुमोदन करता है वह तीर्थङ्कर भगवान् की और राजाओं की आज्ञा का उल्लंघन करता है एवं वह गुरु चौमासी प्रायश्चित्त का भागी होता है।

(१२) गृहस्थ के घर भित्तार्थ गए हुए साधु से कोई वस्त्र,पात्र कम्बल, झोली, पात्र पूंछने का वस्त्र या पूंजणी एवं रजोहरण लेने के लिए निमंत्रण करे तो साधु को यह कह कर उन्हें लेना चाहिए कि ये वस्त्रादि आचार्य की नेश्राय में लेता हूँ। वे अपने लिए रख सकते हैं, मुझे दे सकते हैं और उनकी इच्छा हो तो दूसरे साधुओं को दे सकते हैं। लेने के बाद उपाश्रय में लाकर साधु उन्हें आचार्य के चरणों में रखे। यदि आचार्य लाने वाले को ही वस्त्रादि देवें तो गुरु महाराज से दूसरी बार आज्ञा लेकर उन्हें रखने एवं परिभोग करने का साधु का कल्प है। इसी प्रकार जंगल जाने या स्वाध्याय के लिए उपाश्रय से बाहर निकले हुए साधु से उक्त वस्त्रादि लेने के लिए गृहस्थ निमन्त्रण करे तो उसे ऊपर लिखे अनुसार ही गृहस्थ से लेना चाहिए एवं आचार्य के पास लाकर आचार्य की आज्ञानुसार ही उन्हें रखना चाहिए एवं उनका परिभोग करना चाहिए।

गोचरी के लिये गई हुई अथवा जंगल या स्वाध्याय भूमि जाती हुई साध्वी से उक्त वस्त्रादि की निमन्त्रणा होने पर उन्हें लेने की विधि ऊपर लिखे अनुसार ही है। अन्तर केवल इतना है कि साध्वी आचार्य की जगह प्रवर्तिनी की नेश्राय में लेती है एवं प्रवर्तिनी की सेवा में ही उन्हें लाती है। यदि प्रवर्तिनी लाने वाली साध्वी को उन्हें देवे तो वह दूसरी बार प्रवर्तिनी की आज्ञा लेकर उन्हें रखती है एवं उनका परिभोग करती है।

(१३) साधु साध्वियों को रात्रि एवं विकाल में अशनादि चारों आहार लेना नहीं कल्पता है। कई आचार्य सन्ध्या को रात्रि एवं शेष सारी रात को विकाल कहते हैं। दूसरे आचार्य रात्रि का रात एवं विकाल का सन्ध्या अर्थ करते हैं। नियुक्ति एवं भाष्यकार ने रात्रि भोजन से साधु के पाँचों महाव्रतों का दूषित होना बतलाया है।

(१४) साधु साध्वी को पूर्व प्रतिलेखित शय्या संस्तारक के सिवाय और कोई चीज रात्रि में लेना नहीं कल्पता है। पूर्व प्रतिलेखित शय्या संस्तारक का रात्रि में लेना भी उत्सर्ग मार्ग से निषिद्ध है। अपवाद मार्ग से यह कल्प बताया गया है।

(१५) रात्रि में पूर्व प्रतिलेखित शय्या संस्तारक लेने का कल्प बताया है। इससे कोई यह न समझ ले कि पूर्व प्रतिलेखित शय्या संस्तारक आहार नहीं है। इसलिये ये लिये जा सकते हैं। इसी प्रकार पूर्व प्रतिलेखित वस्त्रादि लेने में कोई दोष न होना चाहिए। इसलिये सूत्रकार स्पष्ट कहते हैं कि साधु साध्वियों को रात्रि अथवा विकाल में वस्त्र, पात्र, कम्बल, झोली, पात्र पूंछने का वस्त्र या पूंजनी एवं रजोहरण लेना नहीं कल्पता है। आहार की तरह इन्हें रात्रि में लेने से भी पाँचों महाव्रतों का दूषित होना संभव है।

(१६) ऊपर रात्रि में वस्त्र लेने का निषेध किया है परन्तु उसका एक अपवाद है। यदि वस्त्र को चोरों ने चुरा लिया हो एवं वापिस लाये हों तो वह वस्त्र लिया जा सकता है। चाहे उसे उन्होंने पहना हो, धोया हो, रंगा हो, घिसा हो, कोमल बनाया हो या धूप दिया हो।

(१७) रात्रि अथवा विकाल में साधु साध्वियों को विहार करना नहीं कल्पता है। रात्रि में विहार करने वाले के संयम आत्मा और प्रवचन विषयक अनेक उपद्रव होते हैं।

(१८) साधु साध्वियों को संखडी (विवाहादि निमित्त दिये गये भोज) के उद्देश्य से जहाँ संखडी हो वहाँ जाना नहीं कल्पता है।

(१९) रात्रि अथवा विकाल के समय साधु को विचार भूमि (जंगल) या विहार भूमि (स्वाध्याय की जगह) के उद्देश्य से अकेले उपाश्रय से बाहर निकलना नहीं कल्पता है। उसे एक अथवा दो साधुओं के साथ बाहर निकलना चाहिए। साध्वी को इस तरह विचार भूमि या विहार भूमि के उद्देश्य से उपाश्रय से बाहर जाना

हो तो उसे अकेली न जाना चाहिए। दो तीन या चार साध्वियों को मिल कर बाहर जाना कल्पता है।

(२०) साधु साध्वियों को पूर्व दिशा में अंग देश एवं मगध देश, दक्षिण में कौशाम्बी, पश्चिम में स्थूणा और उत्तर में कुणाला नगरी तक विहार करना कल्पता है। इसके आगे अनार्य देश होने से यहीं तक विहार करने के लिये कहा गया है। इसके आगे साधु उन क्षेत्रों में विहार कर सकते हैं जहाँ उनके ज्ञान दर्शन और चारित्र की वृद्धि हो।

ऊपर जो कल्प दिये हैं वे सभी उत्सर्ग मार्ग से हैं और साधु को उसके अनुसार आचरण करना ही चाहिये। बृहत्कल्प सूत्र की निर्युक्ति एवं भाष्य में कई कल्पों के लिये बताया है कि ये कल्प अपवाद मार्ग से हैं और निरुपाय होने पर ही साधु यदि इनका आश्रय ले एवं अपवाद सेवन करे तो प्रायश्चित्त आता है।

(सनिर्युक्ति लघु भाष्य वृत्तिक बृहत्कल्प सूत्र, प्रथम उद्देशा)

६०५—परिहार विशुद्धि चारित्र के बीस द्वार

जिस चारित्र में परिहार (तप विशेष) से कर्मनिर्जरा रूप शुद्धि होती है उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं। इसके निर्विश्यमान और निर्विष्टकायिक दो भेद हैं। नौ साधु गण बना कर इसे अङ्गीकार करते हैं और अठारह महीने में यह तप पूरा होता है। स्वयं तीर्थङ्कर के पास या जिसने तीर्थङ्कर के पास यह चारित्र अङ्गीकार किया है ऐसे मुनि के पास यह चारित्र अङ्गीकार किया जाता है। परिहार विशुद्धि चारित्र के स्वरूप एवं विधि का वर्णन इसी ग्रन्थ के प्रथम भाग बोल नं० ३१५ में दिया गया है। परिहार विशुद्धि चारित्र को धारण करने वाले मुनि किस क्षेत्र और किस काल में

पाये जाते हैं इत्यादि बातों को बताने के लिये बीस द्वार कहे गये हैं। वे ये हैं—

(१) क्षेत्र द्वार—जन्म और सद्भाव की अपेक्षा क्षेत्र के दो भेद हैं। परिहार विशुद्धि चारित्र को अङ्गीकार करने वाले व्यक्ति का जन्म और सद्भाव पांच भरत और पांच ऐरावत में ही होता है, महाविदेह क्षेत्र में नहीं। परिहार विशुद्धि चारित्र वालों का संहरण नहीं होता है।

(२) काल द्वार—परिहार विशुद्धि चारित्र को अङ्गीकार करने वाले व्यक्तियों का जन्म अवसर्पिणी काल के तीसरे और चौथे आरे में होता है और इस चारित्र का सद्भाव तीसरे, चौथे और पांचवें आरे में पाया जाता है। उत्सर्पिणी काल में दूसरे, तीसरे और चौथे आरे में जन्म तथा तीसरे और चौथे आरे में सद्भाव पाया जाता है। नोअवसर्पिणी नोउत्सर्पिणी रूप काल में परिहार विशुद्धि चारित्र वालों का जन्म और सद्भाव नहीं हो सकता है, क्योंकि यह काल महाविदेह क्षेत्र में ही होता है और वहाँ परिहार विशुद्धि चारित्र वाले होते ही नहीं हैं।

(३) चारित्र द्वार—चारित्र द्वार में संयम के स्थानों का विचार किया गया है। सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्र के जघन्य स्थान समान परिणाम होने से परस्पर तुल्य हैं। इसके बाद असंख्यात लोकाकाश प्रदेश परिमाण संयम स्थानों के ऊपर परिहार विशुद्धि चारित्र के संयम स्थान हैं। वे भी असंख्यात लोकाकाश प्रदेश परिमाण होते हैं और पहले के दोनों चारित्र के संयम स्थानों के साथ अविरोधी होते हैं। परिहार विशुद्धि चारित्र के बाद असंख्यात संयम स्थान सूक्ष्मसम्पराय के और यथाख्यात चारित्र का एक होता है।

(४) तीर्थ द्वार—परिहार विशुद्धि चारित्र तीर्थ के समय में ही होता है। तीर्थ के विच्छेद काल में अथवा तीर्थ अनुत्पत्ति काल में

परिहार विशुद्धि चारित्र नहीं पाया जाता है।

(५) पर्याय द्वार–पर्याय के दो भेद हैं–गृहस्थ पर्याय (जन्म पर्याय) और यति पर्याय (दीक्षा पर्याय)। गृहस्थ (जन्म) पर्याय जघन्य नौ वर्ष और यति (दीक्षा) पर्याय जघन्य बीस वर्ष और उत्कृष्ट दोनों देशोन करोड़ पूर्व वर्ष की हैं। यदि कोई नौ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ले तो बीस वर्ष साधु पर्याय का पालन करने के पश्चात् वह परिहार विशुद्धि चारित्र अंगीकार कर सकता है। परिहार विशुद्धि चारित्र की जघन्य स्थिति अठारह मास है और उत्कृष्ट स्थिति देशोन करोड़ पूर्व वर्ष है।

(६) आगम द्वार–परिहार विशुद्धि चारित्र को अङ्गीकार करने वाला व्यक्ति नये आगमों का अध्ययन नहीं करता किन्तु पहले पढ़े हुए ज्ञान का स्मरण करता रहता है। चित्त एकाग्र होने से वह पूर्व पठित ज्ञान को नहीं भूलता। उसे जघन्य नवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु और उत्कृष्ट कुछ कम दस पूर्व का ज्ञान होता है।

(७) वेद द्वार–परिहार विशुद्धि चारित्र के वर्तमान समय की अपेक्षा पुरुष वेद और *पुरुष नपुँसक वेद होता है, स्त्री वेद नहीं, क्योंकि स्त्री को परिहार विशुद्धि चारित्र की प्राप्ति नहीं होती है। भूतकाल की अपेक्षा पूर्व प्रतिपन्न अर्थात् जिसने पहले परिहार विशुद्धि चारित्र अङ्गीकार किया था यदि वह जीव उपशमश्रेणी या क्षपक श्रेणी में हो तो वेद रहित होता है और श्रेणी की प्राप्ति के अभाव में वह वेद सहित होता है।

(८) कल्प द्वार–कल्प के दो भेद हैं–स्थित कल्प और अस्थित कल्प। निम्न लिखित दस स्थानों का पालन जिस कल्प में किया जाता है उसे स्थित कल्प कहते हैं। दस स्थान ये हैं–अचेलकत्व औद्देशिक, शय्यातर पिण्ड, राजपिण्ड, कृतिकर्म व्रत, ज्येष्ठ, प्रतिक्रमण, मास कल्प और पर्युषणा कल्प।

---

* नपुंसक के दो भेद हैं– १–पुरुष नपुंसक और २–स्त्रीनपुंसक। यहाँ पुरुष नपुंसक का ग्रहण है, स्त्री नपुंसक का नहीं। क्योंकि स्त्री नपुंसक वेद में परिहार विशुद्धि चारित्र नहीं होता है।

जो कल्प चार स्थानों में स्थित और छः स्थानों में अस्थित होता है वह अस्थित कल्प कहलाता है। चार स्थान ये हैं-शय्यातर पिण्ड, चतुर्याम (चार महाव्रत), पुरुष ज्येष्ठ और कृतिकर्म करणा।

परिहार विशुद्धि चारित्र स्थित कल्प में ही पाया जाता है। अस्थित कल्प में नहीं।

परिहार विशुद्धि चारित्र भरत और ऐरावत क्षेत्र के प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के शासन काल में ही होता है। बाईस तीर्थङ्करों के समय यह चारित्र नहीं होता है।

(९) लिङ्ग द्वार-द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग इन दोनों लिङ्गों में ही परिहार विशुद्धि चारित्र होता है। दोनों लिङ्गों के सिवाय किसी एक ही लिङ्ग में यह चारित्र नहीं हो सकता।

(१०) लेश्या द्वार-तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या में परिहार विशुद्धि चारित्र होता है।

(११) ध्यान द्वार-बढ़ते हुए धर्म ध्यान के समय परिहार विशुद्धि चारित्र की प्राप्ति होती है।

(१२) +गणना द्वार-जघन्य तीन गण परिहार विशुद्धि चारित्र को अङ्गीकार करते हैं और उत्कृष्ट सौ गण इसे स्वीकार करते हैं। पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट सैकड़ों गण होते हैं। पुरुष गणना की अपेक्षा जघन्य सत्ताईस पुरुष और उत्कृष्ट * हजार पुरुष इसे स्वीकार करते हैं। पूर्व प्रतिपन्न तो जघन्य और उत्कृष्ट हजारों पुरुष होते हैं।

(१३) अभिग्रह द्वार-अभिग्रह चार प्रकार के हैं-द्रव्याभिग्रह, क्षेत्राभिग्रह, कालाभिग्रह और भावाभिग्रह। परिहार विशुद्धि

+ इसका मिलान भगवती सूत्र के मूलपाठ से नहीं होता है। यह बात टीकानुसार दी है।

* इस चारित्र को अंगीकार करने वाले उत्कृष्ट सौ गण बतलाये गये हैं। इसलिये पुरुष गणना की अपेक्षा उत्कृष्ट ९०० पुरुष होते हैं। प्रज्ञापना सूत्र की टीका में उत्कृष्ट हजार पुरुष बतलाए हैं। उसी के अनुसार यहाँ पर भी दिया गया है।

चारित्र वाले के इन चार अभिग्रहों में से कोई भी अभिग्रह नहीं होता क्योंकि इनका कल्प ही अभिग्रह रूप है। इनका आचार अपवाद रहित और निश्चित होता है। उसका सम्यक् रूप से पालन करना ही इनके चारित्र की विशुद्धि का कारण है।

(१४) प्रव्रज्या द्वार-अपने कल्प की मर्यादा होने के कारण परिहार विशुद्धि चारित्र वाला किसी को दीक्षा नहीं देता। वह यथाशक्ति और यथावसर धर्मोपदेश देता है।

(१५) मुण्डापन द्वार-परिहार विशुद्धि चारित्र वाला किसी को मुण्डित नहीं करता।

(१६) प्रायश्चित्त विधि द्वार-यदि मन से भी सूक्ष्म अतिचार लगे तो परिहार विशुद्धि चारित्र वाले को चतुर्गुरुक प्रायश्चित्त आता है। इस कल्प में चित्त की एकाग्रता प्रधान है। इसलिये उसका भङ्ग होने पर गुरुतर दोष होता है।

(१७) कारण द्वार-कारण (आलम्बन) शब्द से यहाँ विशुद्ध ज्ञानादि का ग्रहण होता है। परिहार विशुद्धि चारित्र वाले के यह नहीं होता जिससे उसको किसी प्रकार का अपवाद सेवन करना पड़े। इस चारित्र को धारण करने वाले साधु सर्वत्र निरपेक्ष होकर विचारते हैं और अपने कर्मों को क्षय करने के लिये स्वीकार किये हुए कल्प को दृढ़ता पूर्वक पूर्ण करते हैं।

(१८) निष्प्रतिकर्मता द्वार-परिहार विशुद्धि चारित्र को अङ्गीकार करने वाले महात्मा शरीर संस्कार रहित होते हैं। अक्षिमलादिक को भी वे दूर नहीं करते। प्राणान्त कष्ट आ पड़ने पर भी वे अपवाद मार्ग का सेवन नहीं करते।

(१९) भिक्षा द्वार-परिहार विशुद्धि चारित्र वाले मुनि भिक्षा तीसरी पौरिसी में ही करते हैं। दूसरे समय में वे कायोत्सर्ग आदि करते हैं। इनके निद्रा भी बहुत अल्प होती है।

(२०) पन्थद्वार–वे महात्मा तीसरी पौरिसी में विहार करते हैं। यदि जंघाबल क्षीण हो जाय और विहार करने की शक्ति न रहे तो वे एक ही जगह रहते हैं किन्तु किसी प्रकार के अपवाद मार्ग का सेवन न करते हुए दृढ़ता पूर्वक अपने कल्प का पालन करते हैं।

परिहार विशुद्धि चारित्र को स्वीकार करने वालों के दो भेद हैं। इत्वर और यावत्कथिक। जो परिहार विशुद्धि कल्प को पूरा करके फिर से इसी कल्प को प्रारम्भ करते हैं या गच्छ में आकर मिल जाते हैं वे इत्वर परिहार विशुद्धि चारित्र वाले कहलाते हैं। जो इस कल्प को पूरा करके जिनकल्प को स्वीकार कर लेते हैं वे यावत्कथिक परिहार विशुद्धि चारित्र वाले कहलाते हैं। इत्वर परिहार विशुद्धि कल्प वालों के कल्प के प्रभाव से देव, मनुष्य और तिर्यञ्चकृत उपसर्ग, रोग और असह्य वेदना आदि उत्पन्न नहीं होते किन्तु यावत्कथिक कल्प को स्वीकार करने वालों के ये सब बातें हो सकती हैं। (पन्नवणा पद १सू० ३७ टीका)

९०६–असमाधि के बीस स्थान

जिस कार्य के करने से चित्त में शान्ति लाभ हो, वह ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मोक्ष मार्ग में लगा रहे, उसे समाधि कहते हैं। ज्ञानादि के अभाव रूप अप्रशस्त भाव को असमाधि कहते हैं। नीचे लिखे बीस कारणों का सेवन करने से स्व पर और उभय को इस लोक और परलोक में असमाधि उत्पन्न होती है, इनसे चित्त दूषित हो कर चारित्र को मलिन कर देता है इसलिये ये असमाधि स्थान कहे जाते हैं।

(१) दव दवचारी–जल्दी जल्दी चलना। संयम तथा आत्मा का ध्यान रक्खे बिना शीघ्रता पूर्वक बिना जयणा के चलने वाला व्यक्ति कहीं गिर पड़ता है और उससे असमाधि प्राप्त करता है।

दूसरे प्राणियों की हिंसा कर वह उन्हें असमाधि पहुँचाता है। प्राणियों की हिंसा करने से परलोक में भी असमाधि प्राप्त करता है। इस प्रकार जल्दी जल्दी चलना असमाधि का कारण होने से असमाधि स्थान है।

(२) अप्पमज्जियचारी-बिना पूँजे चलना, बैठना, सोना उपकरण लेना और रखना, उच्चारादि परठाना वगैरह। स्थान तथा वस्त्र पात्र आदि वस्तुओं को बिना देखे भाले काम में लेने से आत्मा तथा दूसरे जीवों की विराधना होने का डर रहता है इसलिए यह असमाधि स्थान है।

(३) दुप्पमज्जियचारी-स्थान आदि वस्तुओं को लापरवाही के साथ अयोग्य रीति से पूंजना, पूंजना कहीं और पैर कहीं धरना वगैरह। इससे भी अपनी तथा दूसरे जीवों की विराधना होती है।

(४) अतिरित्त सेज्जासणिए-रहने के स्थान तथा बिछाने के लिए पाट आदि का परिमाण से अधिक होना। रहने के लिए बहुत बड़ा स्थान होने से उसकी पडिलेहणा वगैरह ठीक नहीं होती। इसी प्रकार पीठ, फलक, आसन आदि वस्तुएं भी यदि परिमाण से अधिक हों तो कई प्रकार से मन में असमाधि हो जाती है।

(५) रातिणिअपरिभासी-ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र में अपने से बड़े आचार्य वगैरह पूजनीय पुरुषों का अपमान करना। विनय रहित होने के कारण वह स्वयं भी असमाधि प्राप्त करता है और उसके व्यवहार से दूसरों को भी असमाधि होती है। इसलिये ऐसा करना असमाधि स्थान है।

(६) थेरोवघाइए-दीक्षा आदि में स्थविर अर्थात् बड़े साधुओं के आचार तथा शील में दोष बता कर, उनके ज्ञान आदि को गलत कह कर अथवा अवज्ञादि करके उनका उपहनन करने वाला तथा उनकी घात चिन्तवने वाला असमाधि को प्राप्त होता है।

(७) भूओवघाइए-ऋद्धि, रस और साता गौरव के वश होकर, विभूषा निमित्त अथवा निष्प्रयोजन एकेन्द्रिय आदि जीवों की हिंसा करने वाला अथवा आधाकर्मी आहार लेने वाला भूतोपघातिक है। जिससे प्राणियों की हिंसा हो ऐसी बात कहने या करने वाला भी भूतोपघातिक है। जीव हिंसा से आत्मा असमाधि को प्राप्त होता है।

(८) संजलणे-प्रतिक्षण अर्थात् बात बात में क्रोध करने वाला। क्रोध करने वाला दूसरे को जलाता है और साथ ही अपनी आत्मा और चारित्र को नष्ट करता है।

(९) कोहणे-बहुत अधिक क्रोध करने वाला। कुपित होने पर वैर का उपशम न करने वाला जीव असमाधि को प्राप्त करता है।

(१०) पिट्ठिमंसिए-पीठ पीछे दूसरों की चुगली, निन्दा करने वाला। अनुपस्थिति में दूसरों के अवगुण प्रगट करने वाला अपनी आत्मा को दूषित करता है। इससे वह अपनी और दूसरों की शान्ति का भंग कर असमाधि को बढ़ाता है।

(११) अभिक्खणं अभिक्खणं ओहारइत्ता-मन में शङ्का होने पर भी किसी बात के लिए बार बार निश्चयकारी भाषा बोलने वाला अथवा गुणों का अपहरण करने वाले शब्दों से दूसरे को पुकारने वाला, जैसे-तू चोर है, तू दास है इत्यादि। उक्त प्रकार की भाषा बोलने से संयम तथा आत्मा की विराधना होती है इसलिये यह असमाधि का कारण है।

(१२) णवाणं अधिकरणाणं अणुप्पण्णाणं उप्पाइत्ता-नए नए अधिकरण अर्थात् झगड़ों को शुरू करने वाला। कलह का प्रारम्भ करने में स्व पर और उभय की असमाधि प्रत्यक्ष ही है।

(१३) पोराणाणं अधिकरणाणं खामिअविउसविआणं पुणोदीरित्ता-पुराने झगड़े जो क्षमा कर देने आदि के बाद शान्त

हो गए हैं उन्हें फिर से खड़ा करने वाला शान्ति का भंग कर असमाधि को बढ़ाता है।

(१४) अकाल सज्झाय कारए—अकाल में शास्त्रों का स्वाध्याय करने वाला। अकाल में स्वाध्याय करने से आज्ञा भंग दोष लगता है जो कि संयम की विराधना का कारण है। अकाल स्वाध्याय से अन्य भी स्व-पर-घातक दोषों की संभावना रहती है। इसलिए यह भी असमाधि स्थान है।

(१५) ससरक्ख पाणिपाए—गृहस्थ के हाथ या पैरों में सचित्त रज लगी हो, फिर भी उससे भिक्षा लेने वाला। अथवा जो स्थण्डिल भूमि में जाता हुआ पैरों को नहीं पूंजता। अथवा जो किसी कारण के उपस्थित होने पर कल्प से अव्यवहित सचित्त पृथ्वी पर बैठता है। ऊपर लिखे अनुसार किसी प्रकार से पृथ्वीकाय के जीवों की विराधना करना असमाधि स्थान है।

(१६) सद्दकरे—रात को पहले पहर के बाद ऊँचे स्वर से बातचीत या स्वाध्याय करने वाला। अथवा गृहस्थों के समान सावद्य भाषा बोलने वाला। उक्त प्रकार से तथा और तरह से प्रमाण से अधिक शब्द बोलने वाला स्व पर की शान्ति भंग कर असमाधि उत्पन्न करता है।

(१७) झंझकरे—जिससे साधु समुदाय में भेद या फूट पड़ जाय अथवा साथ रहने वालों के मन में दुःख उत्पन्न हो ऐसे कार्यों को करने वाला अथवा ऐसे वचन कहने वाला। इस प्रकार समुदाय में फूट डालने वाला तथा साथ वालों को दुःख उत्पन्न करने वाला भी सभी के लिए असमाधि उत्पन्न करता है।

(१८) कलहकरे—आक्रोशादि वचन का प्रयोग कर कलह उत्पन्न करने वाला। कलह स्व पर और उभय के लिए तथा संयम के लिए असमाधि का कारण है।

(१९) सूरप्पमाणभोई—सूर्योदय से लेकर अस्त होने तक जो कुछ न कुछ खाता रहे अर्थात् जिसका मुँह सारा दिन चलता रहे। दिन भर खाने वाला स्वाध्यायादि नहीं कर सकता है। प्रेरणा करने पर वह क्रोध करता है। बहुत आहार करने से अजीर्ण भी हो जाता है। इस तरह यह भी असमाधि का कारण है।

(२०) एसणाऽसमिते—एषणा समिति का ध्यान न रखने वाला अर्थात् उसमें दोष लगाने वाला। अनेषणिक आहार लेने वाला साधु संयम और जीवों की विराधना करता है। इसलिए यह असमाधि का स्थान है। (समवायाग २०) (दशाश्रुतस्कन्ध दशा १)

९०७—आश्रव के बीस भेद

कर्मबन्ध के कारणों को आश्रव कहते हैं। इसके बीस भेद हैं:—

(१–५) पांच अव्रत—प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह। (समवायाग ५) (प्रश्नव्याकरण आश्रवद्वार)

(६–१०) पांच इन्द्रियों की अशुभ प्रवृत्ति। (ठाणाग ५ उ. २ सूत्र ४२७

(११–१५) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। (ठाणाग ५ सूत्र ४१८)

इनकी व्याख्या इसी ग्रन्थ के प्रथम भाग बोल नं० २८९ में दी है।

(१६–१८) मन, वचन काया रूप योगों की अशुभ प्रवृत्ति।

(१९) भण्ड, उपकरण आदि वस्तुओं को अयतना से लेना और अयतना से रखना।

(२०) सूई कुशाग्र आदि वस्तुओं को अयतना से लेना और अयतना से रखना। (ठाणाग १० उ० ३ सूत्र ७०९) (नव तत्त्व)

९०८—संवर के बीस भेद

जीव रूपी समुद्र में आते हुए आश्रव रूपी नालों को रोकना संवर कहलाता है। संवर के बीस भेद हैं—

(१—५) अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच व्रतों का पालन करना।

(६—१०)स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय इन पाँचों इन्द्रियों को वश में रखना।

(११—१५) सम्यक्त्व,व्रत प्रत्याख्यान, कषाय का त्याग, प्रमाद का त्याग और शुभ योगों की प्रवृत्ति।

(१६—१८) तीन योग अर्थात् मन, वचन और काया को वश में रखना।

(१९) भंड, उपकरण आदि को यतना से लेना और रखना।

(२०) सूई, कुशाग्र मात्र को यतना से लेना और यतना से रखना।

(ठा० ५ उ० २ सू० ४१८, ४२७) (सम० ५) (प्रश्न व्या. सवर द्वार)

९०९—चतुरंगीय अध्ययन की बीस गाथाएं

मनुष्यभव, शास्त्र श्रवण, श्रद्धा एवं वीर्य, ये चारों आत्म विकास के आलम्बन हैं। इन चारों के प्राप्त होने पर जीव आत्म विकास की चरम सीमा पर पहुँच सकता है परन्तु इनका प्राप्त करना सहज नहीं है। कभी पुण्य योग से मानव देह प्राप्त हो जाय तो धर्म सुनने का योग कहां? उसी तरह श्रद्धा और वीर्य भी दुर्लभ हैं। यही उत्तराध्ययन के तीसरे अध्ययन का विषय है और इसीलिए इसका नाम 'चतुरंगीय अध्ययन' रखा गया है। इस अध्ययन में बीस गाथाएँ हैं। उनका भावार्थ क्रमशः नीचे दिया जाता है।

(१) इस ससार में प्राणियों को मनुष्य जन्म, धर्म श्रवण, धर्म पर श्रद्धा एवं वीर्य (संयम में प्रवृत्त कराने वाली आत्मशक्ति) इन चार मोक्ष के प्रधान अंगों की प्राप्ति होना दुर्लभ है।

(२)संसार में विविध गोत्र वाली जातियों में जन्म लेकर प्राणी नाना प्रकार के कर्म करते हैं और इनके वश होकर वे एक एक कर

यानी कभी कहीं कभी कहीं उत्पन्न होकर सारे लोक में व्याप्त होते हैं।

(३) जीव स्वकृतकर्मानुसार कभी देवलोक में उत्पन्न होता है, कभी नरक में जन्म लेता है एवं कभी असुर काया को प्राप्त करता है।

(४) कभी वह क्षत्रिय होता है, कभी चाण्डाल होता है और कभी बुक्कस (मिश्र जाति) होता है। यहाँ से मर कर कीट, पतंग कुंथु और चींटी अर्थात् तिर्यञ्च का भव ग्रहण करता है।

(५) इस प्रकार आवर्त्त वाली योनियों में भ्रमण करते हुए अशुभ कर्म वाले जीव संसार से निर्वेद प्राप्त नहीं करते। संसार से कब छुटकारा होगा, ऐसा उन्हें कभी उद्वेग नहीं होता। सभी अर्थ पाने पर भी जैसे क्षत्रियों को संतोष नहीं होता उसी प्रकार संसार भ्रमण से उन्हें तृप्ति नहीं होती।

(६) कर्म सम्बन्ध से मूढ़ बने हुए, दुखी और शारीरिक वेदना से व्यथित प्राणी कर्म वश मनुष्येतर योनियों में उत्पन्न होते हैं।

(७) मनुष्य गति के बाधक कर्मों का नाश होने पर शुद्ध हुए जीवात्मा मानव भव पाते हैं।

(८) मानव शरीर पाकर भी उस सत्य धर्म का सुनना दुर्लभ है जिसे सुन कर प्राणी क्षमा और अहिंसा को प्राप्त करते हैं।

(९) कदाचित् सद्धर्म सुनने का सुयोग प्राप्त हो जाय तो भी श्रद्धा, रुचि होना अति कठिन है। न्याय संगत सम्यग्दर्शनादि मुक्ति पथ का श्रवण कर भी जमालि जैसे अनेक जीव भ्रष्ट हो जाते हैं।

(१०) धर्म श्रवण एवं धर्म श्रद्धा पाकर भी जीवों के लिए संयम में शक्ति का लगाना दुर्लभ है। अनेक जीव धर्म क्रियाओं में रुचि रखते हुए भी उनका सेवन (पालन) नहीं कर सकते।

(११) जो जीव मनुष्य भव में आकर धर्म का श्रवण करता है एवं उस पर श्रद्धा करता है। संयम में उद्योग करके तप एवं संवर से युक्त होकर वह कर्म रज का नाश कर देता है।

(१२) मानव भव, धर्म श्रवण, श्रद्धा एवं वीर्य, इन चारों अंगों को पाकर मुक्ति कीओर अभिमुख हुए जीव की शुद्धि होती है एवं शुद्धि प्राप्त जीव में क्षमा आदि धर्म रहते हैं। घी से सींची हुई अग्नि की तरह तप के तेज से दीप्त वह आत्मा परम निर्वाण को प्राप्त करता है।

(१३) मिथ्यात्व, अविरति आदि कर्म के हेतुओं को आत्मा से पृथक् करो और क्षमा, मार्दव आदि द्वारा संयम की वृद्धि करो। ऐसा करने से तुम पार्थिव (पृथ्वी सम्बन्धी) शरीर का त्याग कर ऊँची दिशा (सिद्धि) में जाओगे।

(१४) विभिन्न व्रत पालन और अनुष्ठानों के फल स्वरूप जीव मर कर उत्तरोत्तर विमानवासी देव होते हैं। वे सूर्य चन्द्र की तरह प्रकाशमान होते हैं। अति दीर्घ स्थिति होने के कारण ऐसा मानने लगते हैं कि मानों अब वे वहाँ से कभी च्युत न होंगे।

(१५) दिव्याङ्गना स्पर्श आदि देव कामों को प्राप्त इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वे देव ऊपर कल्प विमानों में बहुत से पूर्व एवं सदियों (सैकड़ों वर्षों) तक रहते हैं।

(१६) देवलोक में अपने अपने स्थानों में रहे हुए वे देव स्थिति पूरी होने पर वहाँ से चवते हैं और मनुष्य योनि को प्राप्त करते हैं। उन्हें यहाँ दश अङ्ग प्राप्त होते हैं।

(१७) क्षेत्र वस्तु, (खुली जमीन मकान आदि), और सुवर्ण, पशु और दास वर्ग—ये चार कामस्कन्ध जहां होते हैं, वहाँ वे उत्पन्न होते हैं।

(१८) वे मित्र और स्वजन वाले, उच्च गोत्र वाले, सुन्दर वर्ण वाले, नीरोग, महाप्रज्ञा वाले, विनीत, यशस्वी एवं बलवान् होते हैं।

(१९) वे आयु के अनुसार मनुष्य सम्बन्धी उदार भोगों को भोगते हैं। पूर्व जन्म में निदान रहित शुद्ध चारित्र का पालन करने से इन्हें शुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

(२०) मनुष्यभव, धर्म श्रवण, श्रद्धा और संयम में वीर्य—इन चार

अंगों को पाना दुर्लभ समझ कर वे संयम अंगीकार करते हैं। तप द्वारा कर्मों का नाश कर अन्त में वे शाश्वत सिद्ध हो जाते हैं।

(उत्तराध्ययन अध्ययन ३)

९१०–विपाक सूत्र की बीस कथाएं

ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों के शुभाशुभ परिणाम को विपाक कहते हैं। ऐसे विपाक का वर्णन इस सूत्र में होने से यह विपाक सूत्र कहलाता है। यह ग्यारहवाँ अङ्ग सूत्र है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं, प्रथम श्रुतस्कन्ध दुःखविपाक कहलाता है। इसमें दस अध्ययन हैं, जिनमें दस व्यक्तियों का वर्णन है। वे कर्मों के दुखमयी विपाकों को भोग कर दुःख पूर्वक मोक्ष प्राप्त करेंगे इसलिए यह श्रुतस्कन्ध दुःखविपाक कहलाता है। दूसरे श्रुतस्कन्ध का नाम सुखविपाक है। इसमें भी दस अध्ययन हैं, जिनमें दस व्यक्तियों का वर्णन है। इन दस में से कुछ व्यक्तियों ने कर्मों के सुखमयी विपाकों को भोग कर सुखपूर्वक मोक्ष प्राप्त किया और कुछ भवान्तर में मोक्ष प्राप्त करेंगे। इसलिए यह श्रुतस्कन्ध सुख विपाक कहलाता है।

प्रथम श्रुतस्कन्ध दुःखविपाक के दस अध्ययन हैं। यथा–

(१) मृगापुत्र (२) उज्झितकुमार (३) अभग्ग सेन चोर (४) शकट कुमार (५) बृहस्पतिकुमार (६) नन्दी वर्द्धन (७) उम्बर दत्त कुमार (८) सौर्यदत्त कुमार (९) देवदत्ता रानी (१०) अंजू कमारी।

(१) मृगापुत्र–मृगाग्राम नामक नगर में विजय राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम मृगादेवी था। मृगादेवी की कुक्षि से उत्पन्न हुए एक पुत्र का नाम मृगापुत्र था। वह जन्म से अन्धा, मूक, बहरा, एवं पङ्गु था। उसके नाक कान आदि नहीं थे। केवल उनके चिह्न मात्र थे। मृगादेवी उसे भूमिगृह (भोंयरे) में छिपा कर रखती थी और वहीं उसे आहार पानी ले जाकर देती थी।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। जनता

उन्हें वन्दना नमस्कार करने गई। मृगाग्राम में एक दूसरा भी जन्मान्ध पुरुष रहता था। उसके शरीर से दुर्गन्ध आती थी। जिससे उसके चारों तरफ मक्खियाँ भिनभिनाया करती थीं। एक सचक्षु (नेत्रों वाला) पुरुष उसकी लकड़ी पकड़ कर आगे आगे चलता था और वह अन्धा पुरुष दीनवृत्ति से भिक्षा मांग कर अपनी आजीविका करता था। भगवान् का आगमन सुन कर वह अन्धा पुरुष भी वहाँ पहुँचा। भगवान् ने धर्मोपदेश फरमाया। भगवान् को वन्दना नमस्कार कर जनता वापिस चली गई। तब गौतमस्वामी ने भगवान् से पूछा—भगवन्! इस जन्मान्ध पुरुष जैसा दूसरा और भी कोई जन्मान्ध पुरुष इस मृगाग्राम में है? भगवान् ने फरमाया कि मृगादेवी रानी का पुत्र मृगापुत्र जन्मान्ध है और इससे भी अधिक वेदना को सहन करता हुआ भूमिगृह में पड़ा हुआ है। तब गौतम स्वामी उसे देखने के लिए मृगादेवी रानी के घर पधारे।

गौतम स्वामी को पधारते हुए देख कर मृगादेवी अपने आसन से उठी और सात आठ कदम सामने जाकर उसने वन्दना नमस्कार किया। मृगादेवी ने गौतम स्वामी से आने का कारण पूछा। तब गौतम स्वामी ने अपनी इच्छा जाहिर की। तब मृगादेवी ने मृगापुत्र के बाद जन्मे हुए अपने सुन्दर चार पुत्रों को दिखलाया। गौतम स्वामी ने कहा—देवि! मैं तुम्हारे इन पुत्रों को देखने के लिए नहीं आया हूँ किन्तु भूमिगृह में पड़े हुए तुम्हारे जन्मान्ध पुत्र को देखने आया हूँ। भोजन की वेला हो जाने से एक गाड़ी में बहुत सा आहार पानी भर कर मृगादेवी उस भूमिगृह की तरफ चली और गौतम स्वामी से कहा कि आप भी मेरे साथ पधारिये। मैं आपको मृगापुत्र दिखलाती हूँ। भूमिगृह के पास आकर उसने उसके दरवाजे खोले तो ऐसी भयंकर दुर्गन्ध आने लगी जैसे कि मरे हुए सांप के सड़े हुए शरीर से आती है। मृगादेवी ने सुगन्धि युक्त आहार

उस भूमिगृह में डाला। शीघ्र ही वह मृगापुत्र उस तमाम आहार को खा गया। वह आहार तत्क्षण विकृत होकर पीप (राध) रूप में परिणत होकर उसके शरीर से बहने लगा। इसे देख कर गौतम स्वामी अपने मन में विचार करने लगे कि मैंने नरक के नेरीये के प्रत्यक्ष रूप से नहीं देखा है किन्तु यह मृगापुत्र प्रत्यक्ष नैरयिक सरीखा दुःख भोग रहा है। इसके बाद गौतम स्वामी भगवान् के पास आकर पूछने लगे कि-भगवन्! इसने पूर्वभव में कौन से पाप कर्म उपार्जन किए हैं? भगवान् उसके पूर्वभव का वृत्तान्त फरमाने लगे।

प्राचीन समय में शतद्वार नामक एक नगर था। वहाँ धनपति राजा राज्य करता था। उसकी अधीनता में विजयवर्द्धन नाम का एक खेड़ा था। उसमें देशाधिकारी इकाई राठौड़ नाम का एक ठाकुर रहता था। वह ५०० गांवों का अधिपति था। वह प्रजा पर बहुत अत्याचार करता था। प्रजा से बहुत अधिक कर लेता था। एक का अपराध दूसरे के सिर डाल देता था। अपने स्वार्थवश अन्याय करता था। चोरों को गुप्त सहायता देकर गांव के गांव लुटवा देता था। इस प्रकार जनता को अनेक प्रकार से कष्ट देता था। एक समय उस इकाई राठौड़ के शरीर में एक साथ सोलह रोग (श्वास, खांसी, ज्वर, दाह, कुक्षशूल, भगन्दर, अर्श (मस्सा), अजीर्ण, दृष्टिशूल, मस्तकशूल, अरुचि, नेत्र पीड़ा, कर्ण वेदना, खुजली, जलोदर और कोढ़) उत्पन्न हुए। तब इकाई राठौड़ ने यह घोषणा करवाई कि जो कोई वैद्य मेरे इन सोलह रोगों में से एक भी रोग की शान्ति करेगा उसको बहुत धन दिया जायगा। इस घोषणा को सुन कर बहुत से वैद्य आए और अनेक प्रकार की चिकित्सा करने लगे किन्तु उनमें से एक रोग की भी शान्ति करने में समर्थ नहीं हुए। प्रबल वेदना से पीड़ित हुआ वह इकाई राठौड़ मर कर रत्नप्रभा पृथ्वी में एक सागरोपम की स्थिति वाला नैरयिक

हुआ। वहाँ से निकल कर मृगावती रानी की कुक्षि में आया। गर्भ में आते ही रानी को अशुभ सूचक स्वप्न आया। रानी राजा को अप्रिय लगने लगी। तब रानी ने उस गर्भ को सड़ाने, गलाने और गिराने के लिये बहुत कड़वी कड़वी औषधियाँ खाईं किन्तु वह गर्भ न तो गिरा, न सड़ा और न गला। गर्भावस्था में ही उस बालक को भस्माग्नि रोग हो गया जिससे वह जो आहार करता था वह पीप बन कर माता की नाड़ियों द्वारा बाहर आ जाता था। नौ मास पूर्ण होने पर बालक का जन्म हुआ। वह जन्म से ही अन्धा, मूक और बहरा था। वह केवल मांस की लोथ सरीखा था। उसके हाथ पैर नाक कान आदि कुछ नहीं थे। केवल उनके चिह्न मात्र थे। रानी ने धायमाता को आज्ञा दी कि इसे ले जाकर उकरड़ी पर डाल दो। जब राजा को यह बात मालूम हुई तो उसे उकरड़ी पर डालने से रोक दिया और रानी से कहा कि यह तुम्हारी पहली सन्तान है, यदि इसे उकरड़ी पर डलवा दोगी तो फिर आगे तुम्हारे सन्तान नहीं होगी। इसलिये इसे किसी भूमिगृह में छिपा कर रख दो। राजा की बात मान कर रानी ने वैसा ही किया। इस प्रकार पूर्व भव के पापाचरण के कारण यह मृगापुत्र यहाँ इस प्रकार का दुःख भोग रहा है।

गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया कि भगवन्! यह मृगापुत्र यहाँ से मर कर कहाँ जायगा? तब भगवान् ने उसके आगे के भवों का वर्णन किया।

यहाँ २६ वर्ष की आयु पूरी करके मृगापुत्र का जीव वैताढ्य पर्वत पर सिंह रूप से उत्पन्न होगा। वह बहुत अधर्मी, पापी और क्रूर होगा। बहुत पाप का उपार्जन करके वह पहली नरक में एक सागरोपम की स्थिति वाला नैरयिक होगा। पहली नरक से निकल कर नकुल (नौलिया) होगा। वहाँ की आयु पूरी करके दूसरी नरक

में उत्पन्न होगा। वहाँ उसकी उत्कृष्ट तीन सागरोपम की स्थिति होगी। वहाँ से निकल कर पक्षी रूप से उत्पन्न होगा। वहाँ से तीसरी नरक में सात सागरोपम की स्थिति वाला नैरयिक होगा। वहाँ से निकल कर सिंह होगा फिर चौथी नरक में नैरयिक होगा। वहाँ से निकल कर सर्प होगा। वहाँ से आयु पूरी करके पाँचवीं नरक में नैरयिक होगा। उस नरक से निकल कर स्त्री रूप से उत्पन्न होगा। वहाँ की आयु पूरी करके छठी नरक में नैरयिक होगा। वहाँ से निकल कर मनुष्य होगा। फिर सातवीं नरक में उत्पन्न होगा। सातवीं नरक से निकल कर जलचर तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय होगा। मच्छ, कच्छ, ग्रह, मकर सुँसुमार आदि जलचर जीवों की साढ़े बारह लाख कुलकोड़ी में उत्पन्न होगा। एक एक योनि में लाखों बार जन्म मरण करेगा। फिर चतुष्पदों में जन्म लेगा। फिर उरपरिसर्पों में, भुजपरिसर्पों में, खेचरों में जन्म लेगा। फिर चतुरेन्द्रिय, तेइन्द्रिय और बेइन्द्रिय जीवों में जन्म लेगा। फिर वनस्पतिकाय में कड़वे और कांटे वाले वृक्षों में जन्म लेगा। फिर वायुकाय, तेउकाय, अप्काय और पृथ्वीकाय में लाखों बार जन्म मरण करेगा। फिर सुप्रतिष्ठ नगर में सांड (बैल) होगा। यौवन अवस्था को प्राप्त होकर वह अति बलशाली होगा। एक समय वर्षा ऋतु में जब वह गंगा नदी के किनारे की मिट्टी को अपने सींगों से खोदेगा तब वह तट टूट कर उस पर गिर पड़ेगा जिससे उसकी उसी समय मृत्यु हो जायगी। वहाँ से मृत्यु प्राप्त कर सुप्रतिष्ठ नगर में एक सेठ के यहाँ पुत्र रूप से उत्पन्न होगा। बाल्यवस्था से मुक्त होने पर वह धर्म श्रवण कर दीक्षा लेगा। बहुत वर्षों तक दीक्षा पर्याय का पालन कर यथासमय काल करके पहले देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से चव कर वह महाविदेह क्षेत्र में उत्तम कुल में जन्म लेगा। दीक्षा लेकर सकल कर्मों का क्षय कर मोक्ष जायगा।

(२) उज्झित कुमार की कथा

वाणिज्यग्राम नामक एक नगर था। उसमें मित्र नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम श्रीदेवी था। उसी नगर में कामध्वजा नामक एक वेश्या रहती थी। वह पुरुष की ७२ कला में निपुण थी और वेश्या के ६४ गुण युक्त थी। उसी नगर में विजय मित्र नामक एक सार्थवाह रहता था। उसकी स्त्री का नाम सुभद्रा था। उनके पुत्र का नाम उज्झित कुमार था।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। उनके ज्येष्ठ शिष्य गौतम स्वामी भिक्षा के लिए नगर में पधारे। वापस लौटते हुए उन्होंने एक दृश्य देखा—कवच और झूल आदि से सुसज्जित बहुत से हाथी घोड़े और धनुषधारी सिपाहियों के बीच में एक आदमी खड़ा था। वह उल्टी मुश्कों से बन्धा हुआ था। उसके नाक कान आदि का छेदन किया हुआ था। चिमटे से उसका तिल तिल जितना मांस काट काट कर उसी को खिलाया जा रहा था। फूटा हुआ ढोल बजा कर राजपुरुष उद्घोषणा कर रहे थे कि इस उज्झित कुमार पर राजा या राजपुत्र आदि किसी का कोप नहीं है किन्तु यह अपने किये हुए कर्मों का फल भोग रहा है। इस करुणा जनक दृश्य को देख कर गौतम स्वामी भगवान् के समीप आये। सारा वृत्तान्त कह कर पूछने लगे कि हे भगवन् ! यह पुरुष पूर्वभव में कौन था, इसने क्या पाप किया जिससे यह दुःख भोग रहा है ?

भगवान् फरमाने लगे—जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में हस्तिनापुर नाम का एक नगर था। वहाँ सुनन्द नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगर में एक अति विशाल गोमंडप (गोशाला) था। उसमें बहुत सी गायें, भैंसें, बैल, भैंसा, साँड आदि रहते थे। उसमें घास पानी आदि खूब था इसलिए सब पशु सुख पूर्वक रहते थे।

उसी नगर में भीम नामक एक कूटग्राही (कुकर्म से द्रव्य उपार्जन करने वाला) रहता था। उसकी स्त्री का नाम उत्पला था। एक समय उत्पला गर्भवती हुई। उसे गाय, बैल आदि के अङ्ग प्रत्यङ्ग के मांस खाने का दोहला उत्पन्न हुआ। आधी रात के समय वह भूमि कूटग्राही उस गोशाला में पहुंचा और गायों के स्तन, कन्धे गलकम्बल आदि का मांस काट कर लाया। उसके शूले बना कर और तल कर मदिरा के साथ अपनी स्त्री को खिला कर उसका दोहला पूर्ण किया। नौ महीने पूर्ण होने पर उत्पला ने एक बालक को जन्म दिया। जन्मते ही उस बालक ने चिल्ला कर, चीख मार कर ऐसा जोर से रुदन किया जिससे गोशाला के सब पशु भयभ्रान्त होकर भागने लगे। इससे माता पिता ने उसका गोत्रासिया ऐसा गुणनिष्पन्न नाम दिया। गोत्रासिया के जवान होने पर उसके पिता भीम कूटग्राही की मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् सुनन्द राजा ने उस गोत्रासिया को अपना दूत बना लिया। अब गोत्रासिया निःशंक होकर उस गोशाला में जाता और बहुत से पशुओं के अङ्गोपाङ्ग छेदन करता और उसके शूले बना कर खाता। इस प्रकार बहुत पाप कर्मों का उपार्जन करता हुआ वह पाँच सौ वर्ष की आयु पूर्ण करके आर्त्त रौद्र ध्यान ध्याता हुआ मर कर दूसरी नरक में उत्पन्न हुआ वहाँ तीन सागरोपम का आयुष्य पूर्ण करके इसी नगर में विजयमित्र सार्थवाह की भार्या भद्रा की कुक्षि से पुत्रपने उत्पन्न हुआ। भद्रा को अप्रियकारी लगने से उस बालक को उकरड़ी पर फिकवा दिया था किन्तु विजयमित्र के कहने पर उसे वापिस मंगवाया। जन्मते ही उसे उकरड़ी पर फेंक दिया गया था इसलिए उसका नाम 'उज्झित कुमार' रखा गया।

एक समय विजयमित्र जहाज में माल भर कर लवण समुद्र में यात्रा कर रहा था किन्तु जहाज के टूट जाने से वह समुद्र में डूब

कर मर गया। उसकी मृत्यु के समाचार सुन कर जिनके पास उसका धन वगैरह रखा हुआ था उन लोगों ने उसे दबा लिया। कुछ समय पश्चात् विजयमित्र की स्त्री भी कालधर्म को प्राप्त हो गई।

माता पिता के मर जाने के बाद उज्झितकुमार स्वच्छन्दी बन कर कुसंगति में पड़ गया। वह मांस भक्षण, मदिरापान, वेश्यागमन आदि सातों व्यसनों का सेवन करने लगा। नगर में घूमते हुए उसका कामध्वजा वेश्या के साथ प्रेम हो गया। वह उसके साथ काम-भोग भोगता हुआ समय बिताने लगा। एक समय राजा की दृष्टि उस कामध्वजा वेश्या पर पड़ी। वह उसमें आसक्त हो गया। राजा ने कामध्वजा को अपने यहाँ बुला लिया। अब राजा उसके साथ काम भोग भोगता हुआ आनन्द पूर्वक समय बिताने लगा। वेश्या का विरह पड़ने से उज्झित कुमार अत्यन्त दुखित हुआ। एक वक्त मौका देख कर वह कामध्वजा के पास चला गया और उसके साथ क्रीड़ा करने लगा। यह बात देख कर राजा अतिकुपित हुआ। राजा ने अपने सिपाहियों को आज्ञा दी कि इसे पकड़ कर उल्टी मुश्कों से बांध लो और कूटते पीटते हुए इसकी बुरी दशा करो।

भगवान् ने फरमाया कि हे गौतम! पूर्वभव के उपार्जित पाप कर्मों को भोगता हुआ यह उज्झित कुमार इस प्रकार दुखी हो रहा है। गौतम स्वामी ने फिर पूछा—भगवन्! यह मर कर कहाँ उत्पन्न होगा? भगवान् ने फरमाया कि यह उज्झित कुमार यहाँ की पच्चीस वर्ष की आयु पूरी करके पहली नरक में उत्पन्न होगा। वहाँ से निकल कर बन्दर होगा, फिर वेश्यापुत्र होगा। फिर रत्न-प्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होगा। वहाँ से निकल कर सरीसृपों में जन्म लेगा। इस प्रकार मृगापुत्र की तरह भव भ्रमण करता हुआ फिर भैंसा होगा। गोठिले पुरुषों द्वारा मार दिया जाने पर चम्पा नगरी में एक सेठ के घर पुत्र रूप से जन्म लेगा। संयम स्वीकार कर

प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। फिर दीक्षा लेकर कर्मों का क्षय कर मोक्ष में जावेगा।

(३) अभग्गसेन चोर की कथा

पुरिमताल नगर में महाबल नाम का एक प्रतापी राजा राज्य करता था। उस नगर के ईशान कोण में शाला नाम की अटवी चोरपल्ली थी। वह बहुत मजबूत कोट से घिरी हुई थी। उसके अनेक गुप्त रास्ते थे। उस चोरपल्ली में पाँच सौ चोर रहते थे। विजय नामक उनका सेनापति था। वह महा पापी और क्रूर कर्म करने वाला था। वह नित्य प्रति अधर्म का आचरण करता था। उसकी स्त्री का नाम स्कन्ध श्री था। उसके अभग्गसेन नामक पुत्र था।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पुरिमताल नगर के बाहर उद्यान में पधारे। गौतम स्वामी भिक्षा के लिए शहर में पधारे। वापिस लौटते समय गौतम स्वामी ने एक पुरुष को देखा। राजपुरुषों ने उज्झित कुमार की तरह उसकी दुर्दशा कर रखी थी। राजपुरुष चौराहों पर उसके सामने उसके चाचा चाची, ताऊ ताई आदि रिश्तेदारों को मार कर उनका मांस उसे खिलाते और खून पिलाते थे। इससे वह नरक के नेरीये सरीखा दुःख भोग रहा था।

भगवान् के पास आकर गौतम स्वामी ने सारा वृत्तान्त निवेदन किया और उसके पाप कर्मों के विषय में पूछा। भगवान् फरमाने लगे—जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में पुरिमताल नामक एक नगर था। वहाँ उदायन राजा राज्य करता था। उस नगर में निन्नय नामक एक अंड-वनिया रहता था। वह महा अधर्मी था। उसने बहुत से नौकर रख रखे थे। उनसे कौए, कबूतर, टींटोड़ी, मुर्गी आदि पक्षियों के अण्डे मंगवा कर उन्हें तेल में तलता था और मसाला आदि से संस्कारित कर बेचता था। इस प्रकार वह अपनी आजीविका चलाता था। वह उन अण्डों को बेचता भी था और स्वयं भी खाता था। इस

प्रकार महान् पापकर्म का उपार्जन कर मर कर तीसरी नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से निकल कर विजयसेन चोर सेनापति की स्त्री स्कन्धश्री के गर्भ में आया। तीसरे महीने उसे शराब पीने और मांस खाने का तथा अपने सगे सम्बन्धियों को खिलाने पिलाने का दोहला उत्पन्न हुआ। विजय चोर सेनापति ने उसकी इच्छानुसार दोहला पूर्ण करवाया। गर्भ काल पूर्ण होने पर स्कन्धश्री ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम अभग्गसेन रखा गया। यौवन वय प्राप्त होने पर आठ कन्याओं के साथ उसका विवाह किया गया। एक एक कन्या के साथ आठ आठ करोड़ सोनैया दायचे में आए। यौवन में उन्मत्त बना हुआ अभग्गसेन लोगों को बहुत दुःख देने लगा। उसकी लूट खसोट से तंग आकर जनता ने राजा महाबल से सारा वृत्तान्त निवेदन किया। अभग्गसेन चोर सेनापति की उदण्डता को सुन कर राजा अति कुपित हुआ और दंड सेनापति को बुला कर आज्ञा दी कि जाओ और शाला नामक अटवी चोरपल्ली को लूट लो और अभग्गसेन चोर सेनापति को जीवित पकड़ कर मेरे सामने हाजिर करो। राजा की आज्ञा प्राप्त कर बहुत सी फौज साथ लेकर दण्ड सेनापति ने पल्ली पर चढ़ाई की। अभग्गसेन चोर सेनापति ने भी पाँच सौ चोरों को साथ लेकर उसका सामना किया। दोनों में खूब संग्राम हुआ। आखिरकार राजा की सेना हार कर पीछे भाग गई। दण्ड सेनापति ने राजा से कहा कि चोर सेनापति बड़ा बलवान् है। आपकी फौज उसके सामने टिक नहीं सकती और न वह इस तरह से हाथ आ सकता है। इसलिए उसे भोजन का निमंत्रण देकर यहाँ बुलवाइये और उसे विश्वास पैदा करके फिर पकड़ लीजिये। कुछ समय पश्चात् राजा ने एक महोत्सव कराया, उसमें अभग्गसेन को भी आमन्त्रण दिया। राजा का आमंत्रण पाकर अभग्गसेन चोर

सेनापति अपने पाँच सौ चोरों को साथ लेकर पुरमताल नगर में आया। राजा ने अभग्गसेन का बहुत आदर सत्कार कर कूटागार शाला में ठहराया और उसके खाने पीने के लिए बहुत सी भोजन सामग्री और मदिरा आदि भेजे। उनका आहार कर नशे में उन्मत्त होकर वह वहीं सो गया। राजा ने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि नगर के सारे दरवाजे बन्द कर दो और अभग्गसेन को पकड़ कर मेरे सामने उपस्थित करो। नौकरों ने ऐसा ही किया। अभग्गसेन चोर सेनापति को जीवित पकड़ कर वे राजा के पास ले आये।

भगवान् फरमाने लगे कि हे गौतम ! जिस पुरुष को तुम देख आये हो वह अभग्गसेन चोर सेनापति है। राजा ने उसे इस प्रकार दण्ड दिया है। आज तीसरे पहर शूली पर चढ़ाया जाकर मृत्यु को प्राप्त करेगा। यहाँ का ३७ वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके रत्नप्रभा नरक में उत्पन्न होगा। इसके पश्चात् मृगापुत्र की तरह अनेक भव भ्रमण कर बनारसी नगरी में शूकर (सूअर) रूप से उत्पन्न होगा। वहाँ शिकारी उसे मार देंगे। मर कर बनारस में ही एक सेठ के घर जन्म लेगा। यौवन वय को प्राप्त होकर दीक्षा ग्रहण करेगा। कई वर्षों तक संयम का पालन कर पहले देवलोक में जायगा। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। फिर दीक्षा अङ्गीकार करेगा और कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त होकर सब दुःखों का अन्त करेगा।

(४) शकट कुमार की कथा

प्राचीन समय में सोहञ्जनी नाम की एक अति रमणीय नगरी थी। वहाँ महाचन्द नाम का राजा राज्य करता था। वह साम, दाम, दण्ड, भेद आदि राजनीति में बड़ा ही चतुर था। उसी नगर में सुदर्शना नामक एक गणिका भी रहती थी। वह गणिका के सब गुणों से युक्त थी। वहीं सुभद्र नाम का एक सार्थ-

वाह रहता था। उसकी स्त्री का नाम भद्रा और पुत्र का नाम शकट था।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। भिक्षा के लिए गौतम स्वामी नगर में पधारे। राजमार्ग पर उज्झित कुमार की तरह राजपुरुषों से घिरे हुए एक स्त्री और पुरुष को देखा। गोचरी से लौट कर गौतम स्वामी ने भगवान् के आगे राजमार्ग का दृश्य निवेदन किया और उसका कारण पूछा।

गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् ने फरमाया कि– प्राचीन समय में छगलपुर नामक एक नगर था। उसमें सिंहगिरि नाम का राजा राज्य करता था। उसी नगर में छन्निक नामक एक खटीक (कसाई) रहता था। उसके बहुत से नौकर थे। वह बहुत से बकरे, मेढ़े, भैंसे आदि को मरवा कर उनके शूले बनवाता था। तेल में तल कर उन्हें स्वयं भी खाता और बेच कर अपनी आजीविका भी चलाता था। वह महा पापी था। पाप कर्मों का उपार्जन कर सात सौ वर्षों का उत्कृष्ट आयुष्य पूर्ण कर चौथी नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से निकल कर भद्रा की कुक्षि से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम शकट रखा गया। कुछ समय पश्चात् शकट कुमार के माता पिता की मृत्यु हो गई। शकट कुमार स्वेच्छाचारी हो सुदर्शना गणिका के साथ काम भोग में आसक्त हो गया। एक समय सुसेन प्रधान ने उस वेश्या को अपने अधीन कर लिया और उसे अपने अन्तःपुर में लाकर रख दिया। वेश्या के वियोग से दुखित बना हुआ शकट कुमार इधर उधर भटकता फिरता था। मौका पाकर एक दिन शकट कुमार वेश्या के पास चला गया। वेश्या के साथ काम भोग में प्रवृत शकट कुमार को देख कर सुसेन प्रधान अतिकुपित हुआ। अपने सिपाहियों द्वारा शकट कुमार को पकड़वा कर उसे राजा के सामने उपस्थित कर सुसेन प्रधान ने कहा कि इसने मेरे अन्तःपुर में अत्याचार किया है। राजा ने कहा–तुम अपनी इच्छानुसार इसे दण्ड दो।

राजा की आज्ञा पाकर प्रधान ने शकट कुमार और गणिका को बंधवा कर मारने की आज्ञा दी।

भगवान् ने फरमाया हे गौतम! तुमने जिस स्त्री पुरुष को देखा, वह शकट कुमार और सुदर्शना वेश्या है। आज तसर पहर लोहे की गरम की हुई एक पुतली के साथ उन दोनों को चिपटाया जायगा। वे अपने पूर्वकृत कर्मों के फल भोग रहे हैं। मर कर वे पहली नरक में उत्पन्न होंगे। वहाँ से निकल कर वे दोनों चाण्डाल कुल में पुत्र और पुत्री रूप से युगल उत्पन्न होंगे। यौवन वय को प्राप्त होने पर शकट कुमार का जीव अपनी बहिन के रूप लावण्य में आसक्त बन कर उसी के साथ काम भोगों में प्रवृत्त हो जायगा। पापकर्म का आचरण कर पहली नरक में उत्पन्न होगा। इसके बाद मृगापुत्र की तरह अनेक नरक तिर्यञ्च के भव करके अन्त में मच्छ होगा। वह धीवर के हाथ से मारा जायगा। फिर बनारसी नगरी में एक सेठ के घर जन्म लेकर दीक्षा लेगा। आयु समाप्त होने पर सौधर्म देवलोक में देव होगा। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। दीक्षा लेकर सकल कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त होगा।

(५) बृहस्पतिदत्त कुमार की कथा

कौशाम्बी नगरी में शतानीक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम मृगावती और पुत्र का नाम उदायन था। उसके पुरोहित का नाम सोमदत्त था। वह चारों वेदों का ज्ञाता था। उसके वसुदत्ता नाम की स्त्री और बृहस्पतिदत्त नाम का पुत्र था।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। गौतम स्वामी भिक्षार्थ नगर में पधारे। मार्ग में उज्झितकुमार की तरह राजपुरुषों से घिरे हुए एक पुरुष को देखा। भगवान् के पास आकर गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव का वृत्तान्त पूछा। भगवान् फरमाने लगे—

प्राचीन समय में सर्वतोभद्र नाम की एक नगरी थी। जितशत्रु राजा राज्य करता था। उसके महेश्वरदत्त नाम का पुरोहित था। राज्य की वृद्धि के लिए प्रति दिन वह चार (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) लड़कों का कलेजा निकाल कर होम करता था। अष्टमी, चतुर्दशी को आठ, चौमासी को १६, षण्मासी को ३२, अष्टमासी को ६४ और वर्ष पूरा होने पर १०८ लड़कों को मरवा कर उनके कलेजे के मांस का होम करता था। दूसरे राजा का आक्रमण होने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रत्येक के एक सौ आठ आठ अर्थात् ४३२ लड़कों का होम करता था। इस प्रकार महान् पाप कर्मों को उपार्जित कर वह पांचवीं नरक में गया। वहाँ से निकल कर सोमदत्त पुरोहित की वसुदत्ता भार्या की कुक्षि से उत्पन्न हुआ। उसका नाम बृहस्पतिदत्त कुमार रखा गया।

भगवान् ने फरमाया कि हे गौतम! तुमने जिस पुरुष को देखा है वह बृहस्पतिदत्त है। शतानीक राजा के पुत्र उदायन कुमार के साथ बालक्रीड़ा करता हुआ वह यौवन वय को प्राप्त हुआ। शतानीक राजा की मृत्यु के पश्चात् उदायन राजा हुआ और बृहस्पतिदत्त पुरोहित हुआ। वह राजा का इतना प्रीतिपात्र हो गया था कि वह उसके अन्तःपुर में निःशंक होकर वक्त बेवक्त हर समय आ जा सकता था। एक समय वह पद्मावती रानी में आसक्त होकर उसके साथ कामभोग भोगने में प्रवृत्त हो गया। इस बात का पता लगने पर राजा अत्यन्त कुपित हुआ। उसे अपने सिपाहियों से पकड़वा कर मंगवाया और अब उसे मारने की आज्ञा दी है। आज तीसरे पहर वह शूली में पिरोया जायगा। यह बृहस्पतिदत्त यहाँ अपने पूर्व कर्मों का फल भोग रहा है। यहाँ से मर कर पहली नरक में उत्पन्न होगा। मृगापुत्र की तरह संसार में परिभ्रमण करके मृगपने उत्पन्न होगा। शिकारी के हाथ से मारा

जाकर हस्तिनापुर में एक सेठ के घर पुत्रपने जन्म लेगा। संयम का पालन कर पहले देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। दीक्षा लेकर सब कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त होगा।

(६) नन्दी वर्धन कुमार की कथा

मथुरा नगरी में श्रीदाम राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम बन्धुश्री और पुत्र का नाम नन्दीसेन था। राजा के प्रधान का नाम सुबन्धु था। वह राजनीति में बड़ा चतुर था। उसके त्र का का नाम बहुमित्र था। उसी नगर में चित्र नाम का नाई था जो राजा की हजामत करता था। वह राजा का इतना प्रीतिपात्र और विश्वासी हो गया था कि राजा ने उसे अन्तःपुर आदि सब जगहों में आने जाने की आज्ञा दे रखी थी।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मथुरा नगरी के बाहर उद्यान में पधारे। नगर में भिक्षा के लिये फिरते हुए गौतम स्वामी ने उज्झित कुमार की तरह राजपुरुषों से घिरे हुए एक पुरुष को देखा। उसे एक पाटे पर बिठा कर राजपुरुष पिघले हुए सीसे और ताम्बे आदि से उसे स्नान करा रहे थे। अत्यन्त गरम किया हुआ लोहे का अठारह लड़ी हार गले में पहना रहे थे और गरम किया हुआ लोह का टोप सिर पर रख रहे थे। इस प्रकार राज्याभिषेक के समय की जाने वाली स्नान, मंडन यावत् मुकुट धारण रूप क्रियाओं की नकल कर रहे थे। उसे प्रत्यक्ष नरक सरीखे दुःख का अनुभव करते देख कर गौतम स्वामी ने भगवान् से उसके पूर्व भव का वृत्तान्त पूछा। भगवान् फरमाने लगे—

सिंहपुर नगर में सिंहरथ राजा राज्य करता था। उसके दुर्योधन नाम का चोररक्षपाल (जेलर) था। वह महा पापी था। पाप

कर्म करके आनन्दित होता था। अपने यहाँ बड़े बड़े घड़े रखवा रखे थे जिन में गरम किया हुआ सीसा, ताम्बा, खार, तेल, पानी भरा हुआ था। कितनेक घड़ों में हाथी, घोड़े, गदहे आदि का मूत्र भरा हुआ था। इसी प्रकार खड्ग, छुरी आदि बहुत से शस्त्र इकट्ठे कर रखे थे। वह किसी चोर को गरम किया हुआ सीसा, ताम्बा, मूत्र आदि पिलाता था। किसी के शरीर को शस्त्र से फड़वा डालता था और किसी के अङ्गोपाङ्ग छेदन करवा डालता था। इस प्रकार वह दुर्योधन महान् पाप कर्मों का उपार्जन कर छठी नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से निकल कर मथुरा नगरी के राजा श्रीदाम की बन्धुश्री रानी की कुक्षि से पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ। उसका नाम नन्दीसेन रक्खा गया। जब वह यौवन वय को प्राप्त हुआ तो राज्य में मूर्च्छित होकर राजा को मार कर स्वयं राज्य लक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छा करने लगा। राजा की हजामत बनाने वाले उस चित्र नाई को बुला कर कहने लगा कि हजामत बनाते समय गले में उस्तरा लगा कर तुम राजा को मार डालना। मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दूँगा। पहले तो उसने राजकुमार की बात स्वीकार कर ली किन्तु फिर विचार किया कि यदि इस बात का पता राजा को लग जायगा तो न जाने वह मुझे किस प्रकार बुरी तरह से मरवा डालेगा। ऐसा सोच कर उसने सारा वृत्तान्त राजा से निवेदन कर दिया। इसे सुन कर राजा अतिकुपित हुआ। राजा ने नन्दी-सेन कुमार को पकड़वा लिया। वह उसकी बुरी दशा करवा रहा है। नन्दीसेन कुमार अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोग रहा है। यहाँ से मर कर पहली नरक में उत्पन्न होगा। मृगापुत्र की तरह भव भ्रमण करेगा। फिर हस्तिनापुर में मच्छ होगा। मच्छीमार के हाथ से मारा जाकर उसी नगर में एक सेठ के यहाँ जन्म लेगा। दीक्षा लेकर प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से चव कर महा-

विदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। फिर संयम लेगा और सब कर्मों का क्षय कर मोक्ष जायगा।

(७) उम्बरदत्त कुमार की कथा

पाटलखण्ड नामक नगर में सिद्धार्थ राजा राज्य करता था। उस नगर में सागरदत्त नाम का एक सार्थवाह रहता था। उसकी स्त्री का नाम गङ्गादत्ता और पुत्र का नाम उम्बरदत्त था।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। गौतम स्वामी भिक्षा के लिए नगर में पूर्व के दरवाजे से पधारे। मार्ग में उन्होंने एक भिखारी को देखा, जिसका प्रत्येक अङ्ग कोढ़ से सड़ रहा था। पीप बह रही थी। छोटे छोटे कीड़ों से उसका सारा शरीर व्याप्त था। मक्खियों का समूह उसके चारों तरफ भिनभिना रहा था। मिट्टी का फूटा हुआ बर्तन हाथ में लेकर दीन शब्द उच्चारण करता हुआ भीख मांग रहा था। भगवान् के पास आकर गौतम स्वामी ने उस पुरुष के विषय में पूछा। भगवान् फरमाने लगे—

प्राचीन समय में विजयपुर नाम का नगर था। वहाँ कनकरथ राजा राज्य करता था। धन्वन्तरि नाम का एक राजवैद्य था। वह चिकित्सा शास्त्र में अति निपुण था। रोगियों को जब दवा देता तो पथ्यभोजन के लिए उन्हें कछुए, मुर्गे, खरगोश, हिरण, कबूतर, तीतर, मोर आदि का मांस खाने के लिए उपदेश देता था। इस प्रकार वह महान् पाप कर्मों का उपार्जन कर छठी नरक में उत्पन्न हुआ वहाँ से निकल कर सागरदत्त सार्थवाह की स्त्री गंगादत्ता की कुक्षि से पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ। गंगादत्ता मृतवन्ध्या थी। उम्बरदत्त यक्ष की आराधना से यह पुत्र उत्पन्न हुआ था इसलिए इसका नाम उम्बरदत्त रक्खा गया। यौवन वय को प्राप्त होने पर उसके माता पिता की मृत्यु हो गई। उम्बरदत्त के शरीर में कोढ़

आदि अनेक रोग उत्पन्न हो गये और वह भिखारी बन कर घर घर भीख माँगता फिरता है। यह अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोग रहा है। यहाँ की आयुष्य पूर्ण कर वह रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होगा। फिर मृगापुत्र की तरह संसार में परिभ्रमण करेगा। पृथ्वीकाय से निकल कर हस्तिनापुर में मुर्गा होगा। गोठिले पुरुषों द्वारा मारा जाकर उसी नगर में एक सेठ के घर जन्म लेगा। संयम लेकर सौधर्म देवलोक में जायेगा। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। संयम अङ्गीकार कर, सकल कर्मों का क्षय कर सिद्ध बुद्ध यावत् मुक्त होगा।

(८) सौर्यदत्त की कथा

सोरीपुर में सौर्यदत्त नाम का राजा राज्य करता था। नगर के बाहर ईशानकोण में एक मच्छीपाड़ा (मच्छीमार लोगों के रहने का मोहल्ला) था। उसमें समुद्रदत्त नाम का एक मच्छीमार रहता था। उसकी स्त्री का नाम समुद्रदत्ता और पुत्र का नाम सौर्यदत्त था।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। भिक्षा के लिए गौतम स्वामी शहर में पधारे। वहाँ एक पुरुष को देखा जिसका शरीर बिल्कुल सूखा हुआ था। चलते फिरते, उठते बैठते, उसकी हड्डियाँ कड़कड़ शब्द करती थीं। गले में मच्छी का काँटा फँसा हुआ था, जिससे वह अत्यन्त वेदना का अनुभव कर रहा था। गोचरी से वापिस लौट कर गौतम स्वामी ने भगवान् से उसके पूर्वभव के विषय में पूछा। भगवान् फरमाने लगे—

प्राचीन समय में नन्दीपुर नाम का नगर था। वहाँ मित्र नामक राजा राज्य करता था। उसके सिरीअ नामक रसोइया था। वह अधर्मी था और पाप कर्म करके आनन्द मानता था। वह अनेक पशु पक्षियों को मरवा कर उनके मांस के शूले बनवा कर स्वयं भी खाता

था और दूसरों को भी खिलाता था। वह ३२०० वर्ष का आयुष्य पूर्ण करके छठी नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से निकल कर समुद्र-दत्त की स्त्री समुद्रदत्ता की कुक्षि से उत्पन्न हुआ। उसका नाम सौर्य-दत्त रक्खा गया। यौवन अवस्था को प्राप्त होने पर उसके माता पिता की मृत्यु हो गई। वह स्वयं मच्छियों का व्यापार करने लगा। वह बहुत से नौकरों को रख कर समुद्र में से मच्छियाँ पकड़वा कर मंगवाता था, उन्हें तेल में तल कर स्वयं भी खाता था और दूसरों को भी खिलाता था तथा बेच कर आजीविका करता था। एक समय मछलियों के मांस का शूला बना कर वह सौर्यदत्त खा रहा था कि उसके गले में मछली का काँटा लग गया। इससे अत्यन्त प्रबल वेदना उत्पन्न हुई। बहुत से वैद्य उसकी चिकित्सा करने आये किन्तु कोई भी वैद्य उसकी शान्ति करने में समर्थ नहीं हुआ।

सौर्यदत्त मच्छीमार के गले में तकलीफ बढ़ती ही गई जिससे उसका सारा शरीर सूख कर निर्मांस बन गया। वह अपने पूर्व-भव के पाप कर्मों का फल भोग रहा है। यहाँ से मर कर वह रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होगा। मृगापुत्र की तरह संसार परिभ्रमण करेगा। फिर पृथ्वीकाय से निकल कर मच्छ होगा। मच्छीमार के हाथ से मारा जाकर इसी नगर में एक सेठ के यहाँ पुत्ररूप से उत्पन्न होगा। दीक्षा लेकर सौधर्म देवलोक में देव होगा। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र में जन्म ले कर दीक्षा अङ्गीकार करेगा और सकल कर्मों का क्षय कर मोक्ष जायगा।

(९) देवदत्ता रानी की कथा

रोहीड़ नामक नगर में वैश्रमणदत्त राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम श्रीदेवी और पुत्र का नाम पुष्पनन्दी था। उसी नगर में दत्त नाम का गाथापति रहता था। उसकी स्त्री का नाम कृष्णश्री

और पुत्री का नाम देवदत्ता था। वह सर्वाङ्ग सुन्दरी थी।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पधारे। गौतम स्वामी भिक्षा के लिये शहर में पधारे। मार्ग में उज्झित कुमार की तरह राजपुरुषों से घिरी हुई एक स्त्री को देखा। वह उल्टी मुश्कों से बंधी हुई थी और उसके नाक, कान, स्तन आदि कटे हुए थे। गोचरी से वापिस लौटकर गौतम स्वामी ने भगवान् से उस स्त्री का पूर्व भव पूछा। भगवान् फरमाने लगे—

प्राचीन समय में सुप्रतिष्ठ नाम का नगर था। वह ऋद्धि सम्पत्ति से युक्त था। महासेन राजा राज्य करता था। उसके धारिणी आदि एक हजार रानियाँ थीं। धारिणी रानी के सिंहसेन नाम का पुत्र था। जब वह यौवन वय को प्राप्त हुआ तो श्यामा देवी आदि पाँच सौ राज कन्याओं के साथ एक ही दिन में उसका विवाह करवाया। उन के लिये पाँच सौ बड़े ऊँचे ऊँचे महल बनवाये गये। सिंहसेन कुमार पाँच सौ ही रानियों के साथ यथेच्छ कामभोग भोगता हुआ आनन्द पूर्वक रहने लगा। कुछ सयम बीतने के बाद सिंहसेन राजा श्यामा रानी में ही आसक्त होगया। दूसरी ४९९ रानियों का आदर सत्कार कुछ भी नहीं करता और न उनसे सम्भाषण ही करता था। यह देख कर उन ४९९ रानियों की धायमाताओं ने विष अथवा शास्त्र द्वारा उस श्यामा रानी को मार देने का विचार किया। ऐसा विचार कर वे उसे मारने का मौका देखने लगीं। श्यामा देवी को पता लगने पर वह बहुत भयभीत हुई कि न जाने ये मुझे किस कुमृत्यु से मार देंगी। वह कोपगृह (क्रोध करके बैठने के स्थान) में जाकर आर्त्त रौद्र ध्यान करने लगी। राजा के पूछने पर रानी ने सारा वृत्तान्त निवेदन किया। राजा ने कहा तुम फिक्र मत मत करो, मैं ऐसा उपाय करूँगा जिससे तुम्हारी सारी चिन्ता दूर हो जायगी। सिंहसेन राजा ने सुप्रतिष्ठ नगर के बाहर एक बड़ी कूटागार शाला बनवाई। इसके

बाद उन ४९९ रानियों की धाय माताओं को आमन्त्रण देकर राजा ने कूटागार शाला में बुलवाया। उन धायमाताओं ने वस्त्र आभूषण पहने, स्वादिष्ट भोजन किया, मदिरा पी और नाच गान करने लगीं। अर्ध रात्रि के समय राजा ने उस कूटागार शाला के दरवाजे बन्द करवा कर चारों तरफ आग लगवा दी। जिससे तड़प तड़प कर उनके प्राण निकल गए।

सिंहसेन राजा चौंतीस सौ वर्ष का आयुष्य पूरा करके छठी नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से निकल कर रोहिड़ नगर के दत्त सार्थवाह की स्त्री कृष्णश्री की कुक्षि से पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम देवदत्ता रक्खा गया। एक समय स्नान आदि कर वस्त्रालंकारों से सज्जित होकर वह देवदत्ता क्रीड़ा कर रही थी। वनक्रीड़ा के लिए जाते हुए वैश्रमण राजा ने उस कन्या को देखा। अपने नौकर पुरुषों को भेज कर उस कन्या के माता पिता को कहलवाया कि वैश्रमण राजा चाहता है कि तुम्हारी कन्या का विवाह मेरे राजकुमार पुष्पनन्दी के साथ हो तो यह वर जोड़ी श्रेष्ठ है। देवदत्ता के माता पिता ने हर्षित होकर इस बात को स्वीकार किया।

दत्त सार्थवाह अपने मित्र और सगे सम्बन्धियों को साथ लेकर हजार पुरुषों द्वारा उठाने योग्य पालकी में देवदत्ता कन्या को बिठा कर राजमहल में लाया। हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक दत्त सार्थवाह ने अपनी कन्या देवदत्ता को राजा के सिपुर्द किया। राजा को इससे बड़ा हर्ष हुआ। तत्क्षण पुष्पनन्दी राजकुमार को बुला कर देवदत्ता कन्या के साथ पाट पर बिठाया। चाँदी और सोने के कलशों से स्नान करवा कर सुन्दर वस्त्र पहनाये और दोनों का विवाह संस्कार करवा दिया। कन्या के माता पिता एवं सगे सम्बन्धियों को भोजनादि करवा कर वस्त्र अलंकार आदि से उनका सत्कार सन्मान कर विदा किये। राजकुमार पुष्पनन्दी देवदत्ता

के साथ कामभोग भोगता हुआ आनन्द पूर्वक समय बिताने लगा।

कुछ समय पश्चात् वैश्रमण राजा की मृत्यु हो गई। पुष्पनन्दी राजा बना। वह अपनी माता श्रीदेवी की बहुत ही विनय भक्ति करने लगा। प्रातःकाल आकर प्रणाम करता, शतपाक, सहस्रपाक तेल से मालिश करवाता, फिर सुगन्धित जल स्नान करवाता। माता के भोजन कर लेने पर आप भोजन करता। ऐसा करने से अपने कामभोग में बाधा पड़ती देख कर देवदत्ता ने श्रीदेवी को मार देने का निश्चय किया। एक दिन रात्रि के समय मदिरा के नशे में बेभान सोती हुई श्रीदेवी को देख कर देवदत्ता अग्नि में अत्यन्त तपाया हुआ एक लोह दण्ड लाई और एकदम उसकी योनि में प्रक्षेप कर दिया जिससे तत्क्षण उसकी मृत्यु हो गई। श्रीदेवी की दासी ने यह सारा कार्य देख लिया और पुष्पनन्दी राजा के पास जाकर निवेदन किया। इसे सुनते ही राजा अत्यन्त कुपित हुआ। सिपाहियों द्वारा पकड़वा कर उल्टी मुश्कों से बन्धवा कर देवदत्ता रानी को शूली चढ़ाने की आज्ञा दी है।

हे गौतम! तुमने जिस स्त्री को देखा है वह देवदत्ता रानी है। अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोग रही है। यहाँ से काल करके देवदत्ता रानी का जीव रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होगा। मृगापुत्र की तरह संसार परिभ्रमण करेगा। तत्पश्चात् गंगपुर नगर में हंस पक्षी होगा। चिड़ीमार के हाथ से मारा जाकर उसी नगर में एक सेठ के घर पुत्ररूप से जन्म लेगा। दीक्षा लेकर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर संयम स्वीकार करेगा और कर्म क्षय कर मोक्ष जायगा।

(१०) अंजू कुमारी की कथा

वर्द्धमानपुर के अन्दर विजयमित्र नाम का राजा राज्य करता

था। उसी नगर में धनदेव सार्थवाह रहता था। उसकी स्त्री का नाम प्रियंगु और पुत्री का नाम अंजूकुमारी था।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वर्द्धमानपुर के बाहर विजय वर्द्धमान उद्यान में पधारे। भगवान् के ज्येष्ठ शिष्य गौतम स्वामी भिक्षा के लिए शहर में पधारे। राजा के रहने की अशोक वाटिका के पास जाते हुए उन्होंने एक स्त्री को देखा जो अति-कृश शरीर वाली थी। शरीर का मांस सूख गया था। केवल हड्डियाँ दिखाई देती थीं। वह करुणा जनक शब्दों का उच्चारण करती हुई रुदन कर रही थी। उसे देख कर गौतम स्वामी ने भगवान् के पास आकर उसके पूर्वभव के विषय में पूछा। भगवान् फरमाने लगे—

प्राचीन समय में इन्द्रपुर नाम का नगर था। इन्द्रदत्त राजा राज्य करता था। उसी नगर में पृथ्वीश्री नाम की एक वेश्या रहती थी। उसने बहुत से राजा महाराजाओं और सेठों को अपने वश में कर रखा था। पैंतीस सौ वर्ष इस प्रकार पापाचरण कर वह वेश्या छठी नरक में उत्पन्न हुई। वहाँ से निकल कर वर्द्धमानपुर में धनदेव सार्थवाह की स्त्री प्रियंगु की कुक्षि से पुत्री रूप से उत्पन्न हुई। उस का नाम अंजूकुमारी दिया गया।

एक समय वनक्रीड़ा के लिए जाते हुए विजयमित्र राजा ने खेलती हुई अंजूकुमारी को देखा। उसके माता पिता की आज्ञा लेकर उस कन्या के साथ विवाह कर लिया और उसके साथ सुख भोगता हुआ आनन्द पूर्वक समय बिताने लगा। कुछ समय पश्चात् अंजूरानी के योनिशूल रोग उत्पन्न हुआ। राजा ने अनेक वैद्यों द्वारा चिकित्सा करवाई किन्तु रानी को कुछ भी शान्ति न हुई। रोग की प्रबल वेदना से उसका शरीर सूख कर काँटा हो गया।

हे गौतम! तुमने जिस स्त्री को देखा है वह अंजूरानी है। अपने पूर्वकृत कर्मों का फल भोग रही है। यहाँ ९० वर्ष का आयुष्य

पूर्ण करके रत्नप्रभा नरक में उत्पन्न होगी। मृगापुत्र की तरह संसार परिभ्रमण करेगी। वनस्पतिकाय से निकल कर मयूर (मोर) रूप से उत्पन्न होगी। चिड़ीमार के हाथ से मारी जाकर सर्वतोभद्र नगर में एक सेठ के घर पुत्ररूप से उत्पन्न होगी। दीक्षा लेकर सौधर्म देवलोक में उत्पन्न होगी। वहाँ से चव कर महा विदेह क्षेत्र में जन्म लेकर दीक्षा अङ्गीकार करेगी। बहुत वर्षों तक संयम का पालन कर सकल कर्मों का क्षय कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त होगी।

उपरोक्त दस कथाएं दुःखविपाक की हैं। आगे दस कथाएं सुख विपाक की लिखी जाती हैं—

आज से लगभग २५०० वर्ष पहले मगध देश में राजगृह नामक नगर था। उस समय वह नगर अपनी रचना के लिए बहुत प्रसिद्ध था। वहाँ के निवासी धन धान्य और धर्म से सुखी थे। नगर के बाहर गुणशील नाम का एक बाग था। भगवान् महावीर के शिष्य सुधर्मा स्वामी, जो चौदह पूर्व के ज्ञाता और चार ज्ञान के धारक थे, अपने पाँच सौ शिष्यों सहित उस बाग में पधारे। सुधर्मा स्वामी के पधारने की खबर सुन कर राजगृह नगर की जनता उन्हें वन्दना नमस्कार करने गई। धर्मोपदेश श्रवण कर जनता वापिस चली गई। नगर निवासियों के लौट जाने पर सुधर्मा स्वामी के जेष्ठ शिष्य जम्बू स्वामी के मन में सुख के कारणों को जानने की इच्छा उत्पन्न हुई। अतः अपने गुरु सुधर्मा स्वामी की सेवा में उपस्थित होकर वन्दना नमस्कार कर वे उनके सन्मुख बैठ गये। दोनों हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक सुधर्मा स्वामी से कहने लगे —हे भगवन्! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी द्वारा कथित उन कारणों को, जिनका फल दुःख है, मैंने सुना। जिनका फल सुख है उन कारणों का वर्णन भगवान् ने किस प्रकार किया है? मैं आपके द्वारा उन कारणों को जानने का इच्छुक हूँ। अतः आप कृपा कर उनकारणों

को फरमाइयेगा।

जम्बू स्वामी की विनय भक्ति और उनकी इच्छा को देख कर सुधर्मा स्वामी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने जम्बू स्वामी के प्रश्न के उत्तर में पुण्य का फल सुख बतलाया और सुख प्राप्ति के उपाय को भाव रूप में न कह कर कथा द्वारा समझाया। वे कथाएं इस प्रकार हैं—

(११) सुबाहु कुमार (१२) भद्रनन्दी कुमार (१३) सुजात कुमार (१४) सुवासव कुमार (१५) जिनदास कुमार (१६) धनपति कुमार (१७ महाबल कुमार (१८) भद्रनन्दी कुमार (१९) महाचन्द्र कुमार (२०) वरदत्त कुमार।

(११) सुबाहु कुमार की कथा

हे जम्बू! इसी अवसर्पिणी काल के इसी चौथे आरे में हस्ती-शीर्ष नाम का एक नगर था। वह नगर बड़ा ही सुन्दर था। वहाँ के निवासी सब प्रकार से सुखी थे। नगर के बाहर ईशान कोण में पुष्पकरण्ड नाम का उद्यान था। उसमें कृतवनमालप्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन था।

हस्तिशीर्ष नगर में अदीनशत्रु राजा राज्य करता था। वह सब राजलक्षणों से युक्त तथा राजगुणों से सम्पन्न था। न्याय पूर्वक वह प्रजा का पालन करता था। अदीनशत्रु राजा के धारिणी नाम की पटरानी थी। वह बहुत ही सुन्दर और सर्वाङ्ग सम्पन्न थी। धारिणी के अतिरिक्त उसके ९९९ और भी रानियाँ थीं।

एक समय धारिणी रानी अपने शयनागार में कोमल शय्या पर सो रही थी। वह न तो गाढ़ निद्रा में थी और न जाग रही थी। इतने में उसने एक सिंह का स्वप्न देखा। स्वप्न को देख कर वह जागृत हुई। अपना स्वप्न पति को सुनाने के लिए वह अदीनशत्रु राजा के शयनागार में गई। राजा ने रत्नजड़ित भद्रासन पर बैठने की

आज्ञा दी। आसन पर बैठ कर रानी ने अपना स्वप्न सुनाया। स्वप्न को सुन कर राजा ने कहा कि तुम्हारी कुक्षि से ऐसे पुत्र का जन्म होगा जो यशस्वी, वीर, कुल दीपक और सर्वगुण सम्पन्न होगा। स्वप्न का फल सुन कर रानी बहुत प्रसन्न हुई। प्रातः काल राजा ने स्वप्नशास्त्रियों को बुला कर स्वप्न का फल पूछा। उन्होंने भी बतलाया कि रानी एक यशस्वी और वीर बालक को जन्म देगी। स्वप्न शास्त्रियों को बहुत सा धन देकर राजा ने उन्हें विदा किया।

गर्भ के दो मास पूर्ण होने पर धारिणी रानी को मेघ का दोहला उत्पन्न हुआ। अपने दोहले को पूर्ण करके धारणी रानी गर्भ की अनुकम्पा के लिये यतना के साथ खड़ी होती थी, यतना के साथ बैठती थी। यतना के साथ सोती थी। मेधा और आयु को बढ़ाने वाला, इन्द्रियों के अनुकूल, नीरोग और देश काल के अनुसार न अति तिक्त, न अति कटु, न अति कषैला, न अति अम्ल (खट्टा), न अति मधुर किन्तु उस गर्भ के हितकारक, परिमित तथा पथ्य आहार करती थी और चिन्ता, शोक, दीनता, भय, तथा परित्रास नहीं करती थी। चिन्ता, शोक, मोह, भय और परित्रास से रहित होकर भोजन, आच्छादन, गन्धमाल्य और अलङ्कारों का भोग करती हुई सुखपूर्वक उस गर्भ का पालन करती थी।

समय पूर्ण होने पर धारिणी रानी ने सुन्दर और सुलक्षण पुत्र को जन्म दिया। हर्ष मग्न दासियों ने यह शुभ समाचार राजा अदीनशत्रु को सुनाया। राजा ने अपने मुकुट के सिवाय सब आभूषण उन दासियों को इनाम में दे दिये तथा और भी बहुत सा द्रव्य दिया। पुत्र-जन्म की खुशी में राजा ने नगर को सजाया। कैदियों को बन्धनमुक्त किया और खूब महोत्सव मनाया। पुत्र का नाम सुबाहु कुमार दिया।

योग्य वय होने पर सुबाहु कुमार को शिक्षा प्राप्त करने के लिए

एक कलाचार्य को सौंप दिया। कलाचार्य ने थोड़े ही समय में उसे बहत्तर कला में प्रवीण कर दिया। राजा ने कलाचार्य का आदर सत्कार कर इतना धन दिया कि जो उसके जीवन भर के लिए पर्याप्त था। धीरे धीरे सुबाहु कुमार बढ़ने लगा। जब वह युवक हो गया तब माता पिता ने शुभ मुहूर्त्त देख कर पुष्पचूला प्रमुख पाँच सौ राज कन्याओं के साथ विवाह कर दिया। अपने सुन्दर महलों में रहता हुआ तथा पूर्वसुकृत के फल स्वरूप पाँचों प्रकार के इन्द्रिय भोग भोगता हुआ सुबाहु कुमार सुख पूर्वक अपना समय बिताने लगा।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी हस्तिशीर्ष नगर के बाहर पुष्पकरण्ड उद्यान में पधारे। नगर निवासी लोग भगवान् को वन्दना नमस्कार करने के लिए जाने लगे। राजा अदीनशत्रु और सुबाहु कुमार भी बड़े ठाट के साथ भगवान् को वन्दना करने गए। धर्मोपदेश सुन कर जनता वापिस लौट गई। सुबाहु कुमार वहीं ठहर गया। हाथ जोड़ कर भगवान् से अर्ज करने लगा कि हे भगवन्! धर्मोपदेश सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। जिस प्रकार आपके पास राजकुमार आदि प्रव्रजित होते हैं उस तरह से प्रव्रज्या ग्रहण करने में तो मैं समर्थ नहीं हूँ किन्तु आपके पास श्रावक के व्रत अङ्गीकार करना चाहता हूँ। भगवान् ने फरमाया कि धर्म कार्य में ढील मत करो। श्रावक के व्रत अङ्गीकार कर सुबाहु कुमार वापिस अपने घर आ गया। इसके पश्चात् गौतम स्वामी ने भगवान् से प्रश्न किया कि भगवन्! यह सुबाहु कुमार सब लोगों को इतना इष्टकारी और प्रियकारी लगता है, इसका रूप बड़ा सुन्दर है। यह सारी ऋद्धि इसको किस कार्य से प्राप्त हुई है? यह पूर्वभव में कौन था और इसने कौन से श्रेष्ठ कार्यों का आचरण किया था? भगवान् फरमाने लगे—

प्राचीन समय में हस्तिनापुर नाम का नगर था। उसमें सुमुख नाम का एक गाथापति रहता था। एक समय धर्मघोष नामक स्थविर अपने पाँच सौ शिष्यों सहित वहाँ पधारे। उनके शिष्य सुदत्त नामक अनगार मास मास खमण (एक एक महीने का तप) किया करते थे। मास खमण के पारणे के दिन वे तीसरे पहर भिक्षा के लिए निकले। नगर में जाकर सुमुख गाथापति के घर में प्रवेश किया। मुनिराज को पधारते देख कर सुमुख अपने आसन से खड़ा हुआ। सात आठ कदम सामने जाकर मुनिराज को यथा-विधि वन्दना की। रसोई घर में जाकर शुद्ध आहार पानी का दान दिया। द्रव्य,दाता और प्रतिग्रह तीनों शुद्ध थे अर्थात् आहार जो दिया गया था वह द्रव्य भी शुद्ध था। फल की वाञ्छा रहित होने से दाता भी शुद्ध था और दान लेने वाले भी शुद्ध संयम के पालन करने वाले भावितात्मा अनगार थे। तीनों की शुद्धता के कारण सुमुख गाथापति ने संसार परित्त किया और मनुष्य आयु का बन्ध किया। आकाश में देवदुन्दुभि बजी और 'अहोदाणं अहोदाणं' की ध्वनि के साथ देवताओं ने बारह करोड़ सोनैयों की वर्षा की तथा पुष्प वस्त्र आदि की वृष्टि की। नगर में इसकी खबर तुरन्त फैल गई। लोग सुमुख गाथापति की प्रसंशा करने लगे। वहाँ की आयु पूरी करके सुमुख गाथापति का जीव हस्तिशीर्ष नगर में अदीनशत्रु राजा के घर धारिणी रानी की कुक्षि से पुत्र-रूप से उत्पन्न हुआ है।

गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया कि हे भगवन्! क्या वह सुबाहु कुमार आपके पास दीक्षा ग्रहण करेगा? भगवान् ने उत्तर दिया– हाँ गौतम! सुबाहु कुमार मेरे पास दीक्षा ग्रहण करेगा। पश्चात् भगवान् अन्यत्र विहार कर गए।

एक समय सुबाहु कुमार तेले का तप कर पौषध शाला में बैठा

हुआ धर्मध्यान में तल्लीन था। उनके हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि जो राजकुमार आदि भगवान् के पास दीक्षा लेते हैं वे धन्य हैं। अब यदि भगवान् इस नगर में पधारें तो मैं भी उनके समीप मुण्डित होकर दीक्षा धारण करूँगा।

सुबाहुकुमार के उपरोक्त अध्यवसाय को जान कर भगवान् हस्तिशीर्ष नगर में पधारे। भगवान् के आगमन को सुन कर जनता दर्शनार्थ गई। सुबाहु कुमार भी गया। धर्मोपदेश सुन कर जनता तो वापिस लौट आई। सुबाहु कुमार ने भगवान् से अर्ज की कि मैं माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर आपके पास दीक्षा लेना चाहता हूँ। घर आकर माता पिता के सामने अपने विचार प्रकट किये। माता पिता ने संयम की अनेक कठिनाइयाँ बतलाईं किन्तु सुबाहु कुमार ने उनका यथोचित् उत्तर देकर माता पिता से आज्ञा प्राप्त कर ली। राजा अदीनशत्रु ने बड़े ठाठ से दीक्षामहोत्सव किया। भगवान् के पास संयम लेकर सुबाहुकुमार अनगार ने ग्यारह अङ्ग पढ़े और उपवास, बेला, तेला आदि अनेक विध तपस्या करते हुए संयम में रत रहने लगा। बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर अन्तिम समय में एक महीने की संलेखना संथारा कर यथा समय काल करके सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ।

सौधर्म देवलोक से चव कर सुबाहु कुमार का जीव मनुष्यभव करेगा। वहाँ दीक्षा लेकर यावत् संथारा कर तीसरे देवलोक में उत्पन्न होगा। तीसरे देवलोक से चव कर पुनः मनुष्य का भव करेगा एवं आयु पूरी कर पाँचवें ब्रह्मलोक देवलोक में उत्पन्न होगा। उस देवलोक की स्थिति पूरी कर मनुष्य गति में जन्म लेगा। वहाँ से काल कर सातवें महाशुक्र देवलोक में उत्पन्न होगा। महाशुक्र देवलोक की स्थिति पूरी कर पुनः मनुष्य भव में जन्म लेगा और आयु पूरी होने पर [illegible] त देवलोक में जायगा [illegible] देवलोक की

आयु पूरी कर मनुष्य का भव करके ग्यारहवें आरण देवलोक में उत्पन्न होगा। वहाँ से चव कर मनुष्य का भव करेगा। वहाँ उत्कृष्ट संयम का पालन कर सर्वार्थसिद्ध में अहमिन्द्र होगा। सर्वार्थसिद्ध से चव कर सुबाहु कुमार का जीव महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा। वहाँ शुद्ध संयम का पालन कर सभी कर्मों को खपा कर शुद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त होगा।

(१२) भद्रनन्दी कुमार की कथा

वृषभपुर नगर के अन्दर धनावह नाम का राजा राज्य करता था। उसके सरस्वती नाम की रानी थी। भद्रनन्दी नामक राजकुमार था। पूर्वभव में वह पुंडरिकिणी नगरी में विजय नाम का राजकुमार था। युगबाहु तीर्थङ्कर को शुद्ध एषणीक आहार वहराया। मनुष्य आयु बाँध कर ऋषभपुर नगर में उत्पन्न हुआ।

शेष सब कथन सुबाहु कुमार जैसा जानना। यावत् महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर मोक्ष जायगा।

(१३) सुजात कुमार की कथा

वीरपुत्र नगर में वीरकृष्ण मित्र राजा राज्य करता था। रानी का नाम श्रीदेवी और पुत्र का नाम सुजात था, जिसके ५०० स्त्रियाँ थीं। सुजात पूर्वभव में इषुकार नगर में ऋषभदत्त नामक गाथापति था। पुष्पदत्त अनगार को शुद्ध आहार का प्रतिलाभ दिया। मनुष्य आयु बाँध कर यहाँ उत्पन्न हुआ। शेष सारा वर्णन सुबाहु कुमार के समान है। महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा।

(१४) सुवासव कुमार की कथा

विजय नगर में वासवदत्त नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम कृष्णा और पुत्र का नाम सुवासव कुमार था। सुवासव कुमार के भद्रा आदि पाँच सौ रानियाँ थीं। वह कुमार पूर्व

भव में कौशाम्बी नगरी का धनपाल नामक राजा था। वैश्रमण भद्र मुनि को शुद्ध आहार पानी का प्रतिलाभ दिया था। फिर यहाँ उत्पन्न हुआ। दीक्षा अङ्गीकार की और महाविदेह में केवलज्ञान, केवल दर्शन उपार्जन कर सुबाहु कुमार की तरह सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त होगा।

(१५) जिनदास कुमार की कथा

सौगन्धिका नगरी में अप्रतिहत राजा राज्य करता था। रानी का नाम सुकन्या और पुत्र का नाम महाचन्द्र था। महाचन्द्र के अरहदत्ता स्त्री और जिनदास पुत्र था। जिनदास पूर्वभव में मध्यमिका नगरी में सुधर्म नामका राजा था। मेघरथ अनगार को शुद्ध आहार पानी का दान दिया, मनुष्य आयु बाँधकर यहाँ उत्पन्न हुआ। तीर्थङ्कर भगवान् के पास धर्म श्रवण कर यथा समय दीक्षा अङ्गीकार की और केवलज्ञान, केवलदर्शन उपार्जन कर मोक्ष प्राप्त किया।

(१६) धनपति (वैश्रमण) कुमार की कथा

कनकपुर नगर में प्रियचन्द्र नाम का राजा और सुभद्रा नाम की रानी थी। पुत्र का नाम वैश्रमण कुमार था। श्रीदेवी आदि पाँच सौ कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ। वैश्रमण कुमार पूर्वभव में मणिपदा नगरी में मित्र नाम का राजा था। सम्भूति विजय अनगार को शुद्ध दान दिया। फिर यहाँ उत्पन्न हुआ। तीर्थङ्कर भगवान् के पास उपदेश सुन कर वैराग्य उत्पन्न हुआ। दीक्षा अङ्गीकार कर मोक्ष में गया।

(१७) महाबल कुमार की कथा

महापुर नगर में बल नाम का राजा राज्य करता था। रानी का नाम सुभद्रा और कुमार का नाम महाबल था। रक्तवती आदि पाँच सौ कन्याओं के साथ विवाह हुआ। महाबल कुमार पूर्वभव

में मणिपुर नगर में नागदत्त नाम का गाथापति था। इन्द्रपुर अनगार को शुद्ध आहार पानी का दान दिया। मनुष्यायु बाँध कर उत्पन्न हुआ। फिर संयम स्वीकार कर मोक्ष प्राप्त किया।

(१८) भद्रनन्दी कुमार की कथा

सुघोष नगर में अर्जुन नाम का राजा राज्य करता था। तत्त्ववती रानी और भद्रनन्दी नाम का कुमार था। श्री देवी आदि पाँच सौ कन्याएं परणाई गई। पूर्वभव में कुमार भद्रनन्दी महा घोष नगर में धर्म घोप नाम का सेठ था। धर्मसिंह अनगार को शुद्ध आहार पानी का दान दिया। फिर यहाँ जन्म लिया है और संयम स्वीकार कर मोक्ष गया।

(१९) महाचन्द्र कुमार की कथा

चम्पा नगरी के राजा का नाम दत्त, रानी का नाम रक्तवती और पुत्र का नाम महाचन्द्र था। श्रीकान्त आदि पाँच सौ कन्याओं के साथ महाचन्द्र का विवाह हुआ। पूर्वभव में महाचन्द्र कुमार तिगिच्छि नगरी में जितशत्रु नाम का राजा था। धर्मवीर अनगार को दान दिया। मनुष्य आयु बाँध कर यहाँ उत्पन्न हुआ। फिर संयम स्वीकार कर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त हुआ।

(२०) वरदत्त कुमार की कथा

साकेतपुर नगर में मित्रनन्दी नाम का राजा राज्य करता था। उसके श्री कान्ता रानी थी। वरदत्त नाम का कुमार था। उसके वीरसेना आदि पाँच सौ रानियाँ थीं। पूर्वभव में वरदत्त कुमार शतद्वार नगर में विमलवाहन नाम का रा[illegible] [illegible]रुचि अनगार को शुद्ध आहार पानी का [illegible] [illegible] दिया। मनुष्य आयु बाँध कर यहाँ उत्प[illegible] [illegible] तरह देव और मनुष्य के भव करके महा[illegible] से मोक्ष प्राप्त करेगा।

इक्कीसवां बोल संग्रह

९११–श्रावक के इक्कीस गुण

नीचे लिखे इक्कीस गुणों को धारण करने वाला देशविरति रूप श्रावक धर्म अङ्गीकार करने के योग्य होता है।

(१) अक्षुद्र–जो तुच्छ स्वभाव वाला न हो अर्थात् गम्भीर हो।

(२) रूपवान्–सम्पूर्ण अङ्गोपाङ्ग वाला होने से जो मनोहर आकार वाला हो।

(३) प्रकृति सौम्य–जो स्वभाव से सौम्य हो अर्थात् जिस की आकृति शान्त और रूप विश्वास उत्पन्न करने वाला हो। ऐसा व्यक्ति प्रायः पाप नहीं करता तथा स्वभाव से श्रद्धा योग्य होता है।

(४) लोक प्रिय–इस लोक और परलोक के विरुद्ध किसी बात को न करने से तथा दान शील आदि गुणों के कारण वह लोक में प्रिय होता है। ऐसे व्यक्ति के कारण सभी लोग धर्म में बहुमान करने लगते हैं।

(५) अक्रूर–क्लेश रहित परिणाम वाला। क्लिष्ट परिणाम वाला सदा दूसरों के छिद्र देखने में लगा रहता है। धार्मिक क्रियाएं करते समय भी क्रूर परिणाम होने से उसे शुभ फल प्राप्त नहीं होता। श्रावक इसके विपरीत होता है।

(६) भीरु–पापों से डरने वाला।

(७) अशठ–कपट या माया युक्त व्यवहार न करने वाला।

(८) सदाक्षिण्य–अपने कार्य को छोड़ कर भी सदा दूसरे का कार्य अर्थात् परोपकार करने की रुचि वाला।

(९) लज्जालु–जो पाप करते हुए शर्माता है और अङ्गी-

कार किये हुए अच्छे आचार को नहीं छोड़ता।

(१०) दयालु–दया वाला। सदा दुखी प्राणियों के उद्धार की कामना करने वाला।

(११) मध्यस्थ–किसी पर राग द्वेष न रखने वाला अर्थात् मध्यस्थ भाव रखने वाला।

(१२) सौम्यदृष्टि–प्रेमपूर्ण दृष्टि वाला। ऐसा व्यक्ति दर्शन मात्र से प्राणियों में प्रेम उत्पन्न कर देता है।

(१३) गुणानुरागी–गम्भीरता, धर्ममें स्थिरता आदि गुणों से अनुराग करने वाला। गुणों का पक्षपाती होने से वह अच्छे गुण वालों को देख कर प्रसन्न होता है और निर्गुणों के प्रति उपेक्षा भाव धारण करता है।

(१४) सत्कथक सुपक्षयुक्त–सदाचारी तथा सदाचार की बातें करने वाले मित्रों वाला अर्थात् जिसके पास रहने वाले सदा धर्म कथा करते हैं। सदा धर्म कथा करने तथा सुनने वाला कुमार्ग में नहीं जा सकता।

कुछ आचार्य सत्कथक (अच्छी अच्छी कथा करने वाला) और सुपक्षयुक्त (न्याय का पक्ष लेने वाला) इन्हें अलग अलग गिनते हैं। उनके मत में मध्यस्थ और सौम्यदृष्टि ये दोनों एक हैं।

(१५) सुदीर्घदर्शी–किसी बात के भले बुरे परिणाम को अच्छी तरह विचार कर कार्य करने वाला।

(१६) विशेषज्ञ–हित अहित को अच्छी तरह जानने वाला।

(१७) वृद्धानुगत–परिपक्व बुद्धि वाले बड़े आदमियों के पीछे पीछे चलने वाला। जो व्यक्ति वृद्ध तथा अनुभवी व्यक्तियों के पीछे पीछे चलता है वह कभी आपत्ति में नहीं फँसता।

(१८) विनीत–बड़ों का विनय करने वाला। विनयवान् को सभी सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं।

(१६) कृतज्ञ– दूसरे द्वारा किए गए छोटे से छोटे उपकार को भी नहीं भूलने वाला। कृतघ्न व्यक्ति सभी जगह निन्दा को प्राप्त होता है।

(२०) परहितार्थकारी–सदा दूसरों का हित करने वाला। सदाक्षिण्य का अर्थ है दूसरे द्वारा प्रार्थना करने पर उसकी सहायता करने वाला। जो व्यक्ति अपने आप स्वभाव से ही दूसरों के हित में लगा रहता है वह परहितार्थकारी है।

(२१) लब्धलक्ष्य–जो श्रावक के धर्म को अच्छी तरह समझता हो। पूर्व जन्म में किए हुए विद्याभ्यास की तरह जिसे सभी धार्मिक क्रियाएं शीघ्र समझ में आ जायँ। पूर्व जन्म में अभ्यास की हुई विद्या जैसे इस जन्म में सुगमता से जल्दी आ जाती है उसी प्रकार श्रावक धार्मिक क्रियाओं को सुगमता के साथ जल्दी समझ लेता है।
(प्रवचनसारोद्धार द्वार २३९ गाथा १३५६–५८) (धर्मसंग्रह अधिकार १ गाथा २० पृ. २८

९१२–पानी (पानकजात) इक्कीस प्रकार का

तिल, चॉवल तथा आटे की कठोती आदि धोने से जो पानी अचित्त बन जाता है वह धोवन कहलाता है। छः काय जीवों के रक्षक साधुओं को ऐसा अचित्त धोवन या गर्म पानी ही लेना कल्पता है। इसके इक्कीस भेद हैं–

(१) उस्सेइम–आटा मलने का वर्तन अर्थात् कठोती आदि का धोया हुआ पानी उस्सेइम कहलाता है।

(२) संसेइम–उबाली हुई भाजी और भाजी के बर्तन (हांडी) आदि को जिस पानी से धोया जाय वह संसेइम कहलाता है। कठोती और हांडी आदि का दो बार धोया हुआ पानी अचित्त होता है। तीसरी और चौथी बार धोने पर वह पानी मिश्र होता है किन्तु कुछ समय बाद अचित्त हो जाता है।

(३) चाउलोदक–चांवलों को धोया हुआ पानी चाउलोदक कहलाता है। ऐसा अचित्त पानी मुनि को लेना कल्पता है।

इसके विषय में टीकाकार ने तीन पक्ष दिये हैं—

अत्र त्रयोऽनादेशाः, तद्यथा बुद्बुद्विगमो वा, भाजनलग्न बिन्दु-शोषो वा, तन्दुलपाको वा। आदेशस्त्वयं—उदकस्वच्छीभावः।

बृहत्कल्प सूत्र भाष्य में उपरोक्त पाठ को इस प्रकार स्पष्ट किया है।

भंडगपासगलग्गा, उत्तेडाबुब्बुया य न समेंती।
जा ताव मिसंग तडुला य रज्झंति जावऽन्ने॥

अर्थात्—जिस वर्तन में चाँवल धोये गये हैं उसमें से चाँवलों को निकाल कर दूसरे वर्तन में लेते समय जो जल की बूंदें उस वर्तन पर गिर पड़ें वे जब तक सूख न जायँ तब तक वह पानी मिश्र है ऐसा कई आचार्य मानते हैं।

कुछ आचार्यों का ऐसा मत है कि जिस वर्तन में चाँवल धोये गये हैं उससे निकाल कर चाँवलों को दूसरे वर्तन में डाल देने पर धोये हुए पानी पर से जब तक बुद्बुदें (बुलबुलें) शान्त न हो जायँ तब तक वह पानी मिश्र होता है।

तीसरे पक्ष वाले आचार्यों का ऐसा मत है कि चाँवलों को धोकर पानी से बाहर निकाल लिये जायँ और चाँवलों का पकाने के लिये चूल्हे पर चढ़ाया जाय जब तक वे पक कर तय्यार नहीं हो जाते तब तक वह चाँवल धोया पानी मिश्र होता है।

उपरोक्त तीनों पक्षों में दूषण बताये जाते हैं—

एए उ अणाएसा, तिण्णिवि कालनियमस्सऽसंभवश्रा।
लुक्खेयर भंडग पवण संभवासंभवाईहिं॥

अर्थात्—उपरोक्त तीनों पक्ष अनादेश हैं, क्योंकि इन में काल का नियम नहीं बतलाया गया है। बिन्दूपगम, बुद्बुदापगम और तन्दुलपाक निष्पत्ति में सदा सर्वत्र एक सरीखा काल नहीं लगता है। इसलिये कभी मिश्र धोवन के ग्रहण करने का और कभी अचित्त धोवन को भी मिश्र की सम्भावना से

ग्रहण न करने का प्रसङ्ग होगा।

प्रतिनियत काल का अनियम बतलाते हुए आचार्य कहते हैं कि यदि बर्तन रूक्ष और नया होगा तो उस पर पड़ी हुई बूंदें शीघ्र सूख जायेंगी। इसी प्रकार यदि तेज हवा चल रही होगी तो पानी पर के बुलबुले शीघ्र शान्त हो जायेंगे और इसी तरह यदि चॉवल पुराने होंगे, खूब अच्छी तरह भीगे हुए होंगे और उन्हें पकाने के लिए पर्याप्त इन्धन जलाया जा रहा होगा तो चॉवल शीघ्र पक जायेंगे।

उपरोक्त दशाओं में परमार्थ से मिश्र होते हुए भी अचित की सम्भावना से उस धोवन को ग्रहण करने का प्रसङ्ग आवेगा।

दूसरी बात यह है कि-यदि बर्तन स्निग्ध (चिकना) और पुराना हो तो उस पर पड़ी हुई बूंदें बहुत देर में सूखेंगी। इसी प्रकार यदि वह बर्तन ऐसी जगह पड़ा हुआ हो जहाँ विशेष रूप से हवा न लगती हो तो बुलबुले बहुत देर तक विद्यमान रहेंगे और इसी तरह चाँवल नये हों, अच्छी तरह भीगे हुए न हों तथा उन्हें पकाने के लिये इन्धन सामग्री पर्याप्त न हो तो चाँवल बहुत देर में पक कर तय्यार होंगे।

उपरोक्त दशाओं में वास्तव में उस धोवन के अचित हो जाने पर भी मिश्र की शङ्का की सम्भावना से उस धोवन को ग्रहण न करने का प्रसङ्ग आवेगा। इसलिए उपरोक्त तीनों पक्ष ठीक नहीं हैं।

अब प्रवचन का अविरोधी आदेश बतलाया जाता है-

जाव न बहुप्पसन्नं, ता मीसं एस इत्थ आएसो।
होइ पमाणमचित्तं, बहुप्पसन्नं तु नायव्वं॥

अर्थात्-चाँवलों को धोने के बाद जब तक पानी अति स्वच्छ न हो तब तक उसे मिश्र समझना चाहिये, किन्तु चांवल धोकर निकाल लेने के बाद जब वह धोवन अति स्वच्छ हो जावे अर्थात् उसका सारा मैल नीचे बैठ जाय और पानी बिल्कुल स्वच्छ दिखने

लगे तथा उसके वर्णादिक पलट गये हों तब उसे अचित्त समझना चाहिये। ऐसे अचित्त हुए पानी को लेने में कोई दोष नहीं है।

(पिण्डनिर्युक्ति गा० १८-२१) (कल्पसूत्र) (बृहत्कल्प)
(आचारांग सूत्र श्रु. २ अ १ उ. ७-८ सू ४१, ४३)

उपरोक्त तीनों प्रकार का पानी यदि अहुणाधोयं (जो तत्काल धोया हुआ हो), अणंबिल (जिसका स्वाद न बदला हो), अव्वुक्कन्तं (जो पूर्ण रूप से व्युत्क्रान्त न हुआ हो अर्थात् जिसका रंग और रूप न बदल गया हो), अपरिणयं (जो अवस्थान्तर में परिणत न हो गया हो), अविद्धत्थं (शस्त्र परिणत होकर जो पूर्णरूप से अचित्त न हो गया हो), अफासुयं (जो प्रासुक यानी अचित्त न हुआ हो) तो साधु को लेना नहीं कल्पता किन्तु चिर काल का धोया हुआ, अन्य स्वाद में परिणत, अन्य रंग रूप में परिवर्तित, अवस्थान्तर में परिणत और प्रासुक धोवन लेना साधु को कल्पता है।

दशवैकालिक सूत्र पांचवें अध्ययन के पहले उद्देशे में कहा—

तहेवुच्चावयं पाणं, अदुवा वारधोअणं।
संसेइमं चाउलोदगं, अहुणा धोअं विवज्जए॥
जं जाणेज्ज चिराधोयं, मईए दंसणेणवा।
पडिपुच्छिऊण सुच्चा वा, जं च निस्संकिअं भवे॥

अर्थात्—उच्च (सुस्वादु, द्राक्षादि का पानी), अवच (दुस्वादु, कांजी आदि का पानी) अथवा घड़े आदि के धोवन का पानी, कठोती के धोवन का पानी, चाँवलों के धोवन का पानी तत्काल का हो तो मुनि ग्रहण न करे।

यदि अपनी बुद्धि से या प्रत्यक्ष देख कर तथा दाता से पूछ कर या सुन कर जाने कि यह जल चिर काल का धोया हुआ है और वह शंका रहित हो तो मुनि को वह धोवन ग्रहण करना कल्पता है।

(दशवैकालिक अध्ययन ५ उद्देशा १ गाथा ७५-७६)

(४) तिलोदग-तिलों को धोकर या अन्य किसी प्रकार से अचित्त किया हुआ पानी तिलोदग कहलाता है।

(५) तुसोदग-तुषों का पानी।

(६) जवोदग-जौ का पानी।

(७) आयाम-चांवल आदि का पानी।

(८) सौवीर-आछ अर्थात् छाछ पर से उतारा हुआ पानी।

(९) सुद्धवियड-गर्म किया हुआ पानी।

उपरोक्त पानी को पहले अच्छी तरह देख लेना चाहिए। इस के बाद उसके स्वामी से पूछना चाहिये कि हे आयुष्मन्! मुझे पानी की जरूरत है, क्या आप मुझे यह पानी देंगे? ऐसा पूछने पर यदि गृहस्थ वह पानी दे तो साधु को लेना कल्पता है। यदि गृहस्थ ऐसा कहे कि भगवन्! आप स्वयं ले लीजिये, तो साधु को वह पानी स्वयं अपने हाथ से लेना भी कल्पता है।

यदि उपरोक्त धोवन सचित्त पृथ्वी पर पड़ा हो अथवा दाता सचित्त पानी या मिट्टी से खरड़े हुए हाथों से देने लगे अथवा अचित्त धोवन में थोड़ा थोड़ा सचित्त पानी मिला कर दे तो ऐसा पानी लेना साधु को नहीं कल्पता है।

(१०) अम्बपाणग-आम का पानी, जिसमें आम धोये हों।

(११) अंबाडगपाणग-अंबाडक (आम्रातक) एक प्रकार का वृक्ष होता है उसके फलों का धोया हुआ पानी।

(१२) कविट्ठपाणग-कविठ का धोया हुआ पानी।

(१३) माउलिंगपाणग-बिजौरे के फलों का धोया हुआ पानी।

(१४) मुद्दियापाणग-दाखों का धोया हुआ पानी।

(१५) दालिमपाणग-अनारों का धोया हुआ पानी।

(१६) खज्जूरपाणग-खजूरों का धोया हुआ पानी।

(१७) नालियेरपाणग-नारियलों का धोया हुआ पानी।

(१८) करीरपाणग–केरों का धोया हुआ पानी।
(१९) कोलपाणग–बेरों का धोया हुआ पानी।
(२०) अमलपाणग–आंवलों का धोया हुआ पानी।
(२१) चिंचापाणग–इमली का पानी।

उपरोक्त प्रकार का पानी तथा इसी प्रकार का और भी अचित्त पानी साधु को लेना कल्पता है।

उपरोक्त पानी के अन्दर कोई सचित्त गुठली, छिलका, बीज आदि पड़े हुए हों और गृहस्थ उसे साधु के निमित्त चलनी या कपड़े से छान कर दे तो साधु को ऐसा पानी लेना नहीं कल्पता।

(आचारांग दूसरा श्रुतस्कन्ध अध्ययन १ उद्देशा ७,८) (पिण्ड निर्युक्ति) गा. १८-२१

९१३ शबल दोष इक्कीस

जिन कार्यों से चारित्र की निर्मलता नष्ट हो जाती है, उसमें मैल लगता है उन्हें शबल दोष कहते हैं। ऐसे कार्यों को सेवन करने वाले साधु भी शबल कहलाते हैं। उत्तर गुणों में अतिक्रमादि चारों दोषों का एवं मूल गुणों में अनाचार के सिवा तीन दोषों का सेवन करने से चारित्र शबल होता है। उनके इक्कीस भेद हैं–

(१) हस्तकर्म करना शबल दोष है। वेद का प्रबल उदय होने पर हस्त मर्दन से वीर्य का नाश करना हस्तकर्म कहा जाता है। इसे स्वयं करने वाला और दूसरों से कराने वाला शबल कहा जाता है।

(२) मैथुन सेवन करना शबल दोष है।

(३) रात्रि भोजन अतिक्रम आदि से सेवन करना शबल दोष है। भोजन के विषय में शास्त्रकारों ने चार भंग बताए हैं–

(१) दिन को ग्रहण किया हुआ तथा दिन को खाया गया (२) दिन को ग्रहण करके रात को खाया गया (३) रात्रि को ग्रहण करके दिन को खाया गया (४) रात्रि को ग्रहण करके रात्रि को खाया गया। इनमें से पहले भंग को छोड़ कर बाकी का सेवन करने

वाला शबल होता है।

(४) आधाकर्म का सेवन करना शबल दोष है। साधु के निमित्त से बनाए गए भोजन को आधाकर्म कहते हैं उसे ग्रहण तथा सेवन करने वाला शबल होता है।

(५) सागारिक पिण्ड (शय्यातर पिण्ड) का सेवन करना शबल दोष है। साधु को ठहरने के लिए स्थान देने वाला सागारिक या शय्यातर कहलाता है। साधु को उसके घर से आहार लेना नहीं कल्पता। जो साधु शय्यातर के घर से आहार लेता है वह शबल होता है।

(६) औद्देशिक (सभी याचकों के लिए बनाये गये) क्रीत (साधु के निमित्त से खरीदे हुए) तथा आहृत्य दीयमान (साधु के स्थान पर लाकर दिये हुए) आहार या अन्य वस्तुओं का सेवन करना शबल दोष है। उपलक्षण से यहां पर प्रामित्य (साधु के लिए उधार लिए हुए) आच्छिन्न (दुर्बल से छीन कर लिये हुए) तथा अनिसृष्ट (दूसरे हिस्सेदार की अनुमति के बिना दिये हुए) आहार या अन्य वस्तुओं का लेना भी शबल दोष है। साधु को ऊपर लिखी वस्तुएं न लेनी चाहिए। दशाश्रुतस्कन्ध की दूसरी दशा में इस जगह क्रीत, प्रामित्य, आच्छिन्न, अनिसृष्ट तथा आहृत्य दीयमान, इन पाँच बातों का पाठ है। समवायांग के मूल पाठ में पहले बताई गई तीन हैं। शेष टीका में दी गई हैं।

(७) बार बार अशन आदि का प्रत्याख्यान करके उन को भोगना शबल दोष है।

(८) छः महीनों के अन्दर एक गण को छोड़ कर दूसरे गण में जाना शबल दोष है।

(९) एक महीने में तीन बार उदक लेप करना शबल दोष है। नाभि प्रमाण जल में प्रवेश करना उदकलेप कहा जाता

है। दशाश्रुतस्कन्ध की टीका में नाभि प्रमाण लिखा है किन्तु आचारांग-सूत्र में जंघा प्रमाण बताया गया है।

(१०) एक महीने में तीन माया स्थान का सेवन करना शबल दोष है। यह अपवाद सूत्र है। माया का सेवन सर्वथा निषिद्ध हैं। यदि कोई भिक्षु भूल से मायास्थानों का सेवन कर बैठे तो भी अधिक वार सेवन करना शबल दोष है।

(११) राजपिण्ड को ग्रहण करना शबल दोष है।

(१२) जान करके प्राणियों की हिंसा करना शबल दोष है।

(१३) जान कर झूठ बोलना शबल दोष है।

(१४) जान कर चोरी करना शबल दोष है।

(१५) जान कर सचित्त पृथ्वी पर बैठना, सोना, कायोत्सर्ग अथवा स्वाध्याय आदि करना शबल दोष है।

(१६) इसी प्रकार स्निग्ध और सचित्त रज वाली पृथ्वी, सचित्त शिला या पत्थर अथवा घुणों वाली लकड़ी पर बैठना, सोना, कायोत्सर्ग आदि क्रियाएं करना शबल दोष है।

(१७) जीवों वाले स्थान पर, प्राण, बीज, हरियाली, कीड़ी नगरा, लीलन फूलन, पानी, कीचड़, मकड़ी के जाले वाले तथा इसी प्रकार के दूसरे स्थान पर बैठना, सोना, कायोत्सर्ग आदि क्रियाएं करना शबल दोष है।

(१८) जान करके मूल, कन्द, छाल, प्रवाल, पुष्प, फूल, बीज, या हरितकाय आदि का भोजन करना शबल दोष है।

(१९) एक वर्ष में दस वार उदकलेप करना शबल दोष है।

(२० एक वर्ष में दस मायास्थानों का सेवन करना शबल दोष है।

(२१) जान कर सचित्त जल वाले हाथ से अशन, पान, खादिम और स्वादिम को ग्रहण करके भोगने से शबल दोष होता है। हाथ, कड़छी या आहार देने के बर्तन आदि में सचित्त

जल लगा रहने पर उससे आहार न लेना चाहिए। ऐसे हाथ आदि से आहार लेना शबल दोष है।

(समवायांग २१ वा समवाय) (दशाश्रुतस्कन्ध दशा २)

६१४-विद्यमान पदार्थ की अनुपलब्धि के इक्कीस कारण

इक्कीस कारणों से विद्यमान सत् पदार्थ का भी ज्ञान नहीं होता। वे नीचे लिखे अनुसार हैं-

(१) बहुत दूर होने से विद्यमान स्वर्ग नरक आदि पदार्थों का ज्ञान नहीं होता।

(२) अति समीप होने से भी पदार्थ दिखाई नहीं देते, जैसे आँख में अंजन, पलक वगैरह।

(३) बहुत सूक्ष्म होने से भी पदार्थों का ज्ञान नहीं होता, जैसे परमाणु आदि।

(४) मन की अस्थिरता से यानी मन के दूसरे विषयों में मग्न रहने से पदार्थों का ज्ञान नहीं होता। जैसे कामादि से अस्थिर चित्त वाला पुरुष प्रकाश में रहे हुए इन्द्रिय सम्बद्ध पदार्थ को भी नहीं देखता और इन्द्रिय के किसी एक विषय में आसक्त पुरुष दूसरे इन्द्रिय विषय को सामने प्रकाश में रहते हुए भी नहीं देखता।

(५) इन्द्रिय की अपटुता से अर्थात् अपने विषयों को ग्रहण करने की शक्ति का अभाव होने से भी पदार्थों का ज्ञान नहीं होता, जैसे अन्धे और बहरे प्राणी विद्यमान रूप एवं शब्दों को ग्रहण नहीं करते।

(६) बुद्धि की मन्दता के कारण भी पदार्थों का ज्ञान नहीं होता, मन्दमति शास्त्रों के सूक्ष्म अर्थ को नहीं समझते हैं।

(७) कई पदार्थ ऐसे हैं जिनका ग्रहण करना इन्द्रियों के लिए

अशक्य है। कान गर्दन का ऊपरी भाग, मस्तक, पीठ आदि अपने अंगों को देखना संभव नहीं है।

(८) आवरण आने से भी विद्यमान पदार्थ नहीं जाने जा सकते। हाथ से आँख ढक देने पर कोई भी पदार्थ दिखाई नहीं देता, दिवाल पर्दे आदि के आवरण से भी पदार्थ नहीं जाने जाते।

(९) कई पदार्थ ऐसे हैं जो दूसरे पदार्थों द्वारा अभिभूत हो जाते हैं, इस लिए वे नहीं देखे जा सकते। सूर्य-किरणों के तेज से दबे हुए तारे आकाश में रहते हुए भी दिन में दिखाई नहीं देते।

(१०) समान जाति होने से भी पदार्थ नहीं जाना जाता जैसे अच्छी तरह से देखे हुए भी उड़द के दानों को उड़द राशि में मिला देने पर उन्हें वापिस पहिचानना सम्भव नहीं है।

(११) उपयोग न होने से भी विद्यमान पदार्थों का ज्ञान नहीं होता। रूप में उपयोग वाले पुरुष को दूसरी इन्द्रियों के विषयों का उपयोग नहीं होता और इसलिये उसे उनका ज्ञान नहीं होता। निन्द्रितावस्था में शय्या के स्पर्श का ज्ञान नहीं होता।

(१२) उचित उपाय के न होने से भी पदार्थों का ज्ञान नहीं होता। जैसे सींगों से गाय भैंस के दूध का परिमाण जानने की इच्छा वाला पुरुष दूध के परिमाण को नहीं जान सकता क्योंकि दूध जानने का उपाय सींग नहीं है। जैसे आकाश का माप नहीं किया जा सकता क्योंकि उसका कोई उपाय नहीं है।

(१३) विस्मरण अर्थात् भूल जाने से भी पहले जाने हुऐ पदार्थों का ज्ञान नहीं होता।

(१४) दुरागम अर्थात् गलत उपदेश से भी पदार्थ का वास्तविक ज्ञान नहीं होता। जिस व्यक्ति को पीतल को सोना बताकर गलत समझा दि... गया है उसे असली सोने का ज्ञान नहीं होता।

(१५) मोह ... भी पदार्थ ... वास्तविक ज्ञान नहीं होता।

मिथ्यादृष्टि को जीवादि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान नहीं होता है।

(१६) देखने की शक्ति न होने से भी वस्तु नहीं मालूम होती जैसे अंधे पुरुष कतई नहीं देख सकते।

(१७) विकार वश (इन्द्रियों में किसी प्रकार की कमी होने के कारण से) भी पयार्थों का ज्ञान नहीं होता। वृद्धावस्था के कारण पुरुष को पदार्थों का पूर्ववत् स्पष्ट ज्ञान नहीं होता।

(१८) क्रिया के अभाव से पदार्थ नहीं जाने जाते। जैसे पृथ्वी को खोदे विना वृक्ष की जड़ों का ज्ञान नहीं होता।

(१९) अनधिगम अर्थात् शास्त्र सुने विना उसके अर्थ का ज्ञान नहीं होता।

(२०) काल के व्यवधान से पदार्थों की उपलब्धि नहीं होती। भगवान् ऋषभदेव एवं पद्मनाभ तीर्थंकर भूत एवं भविष्य काल से व्यवहित हैं इसलिये वे प्रत्यक्ष ज्ञान से नहीं जाने जाते।

(२१) स्वभाव से ही इन्द्रियों के गोचर न होने के कारण भी पदार्थों का ज्ञान नहीं होता। जैसे आकाश पिशाच आदि स्वभाव से ही चक्षु इन्द्रिय के विषय नहीं हैं।

(विशेषावश्यक भाष्य, गाथा १६८३ की टीका)

९१५—पारिणामिकी बुद्धि के इक्कीस दृष्टान्त-

अणुमाणहेउदिट्ठंतसाहिया, वयविवागपरिणामा।
हियणिस्सेयसफलवई, बुद्धि परिणामिया नाम॥

भावार्थ—अनुमान, हेतु और दृष्टान्त से विषय को सिद्ध करने वाली, अवस्था के परिपाक से पुष्ट तथा हित और मोक्ष रूप फल को देने वाली बुद्धि पारिणामिकी है अर्थात् जो स्वार्थानुमान, हेतु और दृष्टान्त से विषय को सिद्ध करती है, लोक हित

तथा लोकोत्तर हित (मोक्ष) को देने वाली है और वयोवृद्ध व्यक्ति को बहुत काल तक संसार के अनुभव से प्राप्त होती है वह पारिणामिकी बुद्धि कहलाती है। इसके इक्कीस दृष्टान्त हैं। वे ये हैं—

अभए सिट्ठि कुमारे, देवी उदिओदए हवइ राया।
साहू य णंदिसेणे, धणदत्त सावग अमच्चे॥
खमए अमच्चपुत्ते, चाणक्के चेव थूल भद्दे य।
णासिकसुंदरिणंदे ,वइरे पारिणामिया बुद्धि॥
चलणाहण आमडे, मणी य सप्पे य खग्गि थूभिंदे।
पारिणामियबुद्धीए एवमाई उदाहरणा॥

भावार्थ (१) अभयकुमार (२) सेठ (३) कुमार (४) देवी (५) उदितोदय राजा (६) मुनि और नंदिषेण कुमार (७) धनदत्त (८) श्रावक (९) अमात्य (१०) श्रमण (११) मन्त्रीपुत्र (१) चाणक्य (१३) स्थूलभद्र (१४) नासिकपुर में सुदरीपति नन्द (१५) वज्रस्वामी (१६) चरणाहत (१७) आमलक (१८) मणि (१९) सर्प (२०) गेंडा (२१) स्तूप—ये इक्कीस पारिणामिकी बुद्धि के दृष्टान्त हैं। अब आगे क्रमशः प्रत्येक की कथा दी जाती है।

(१) अभयकुमार—मालव देश में उज्जयिनी नगरी में चण्डप्रद्योतन राजा राज्य करता था। एक समय उसने राजगृह के राजा श्रेणिक के पास एक दूत भेजा और कहलाया कि यदि राजा श्रेणिक अपनी और अपने राज्य की कुशलता चाहते हैं तो वंकचूड़ हार, सींचानक गंधहस्ती, अभयकुमार और चेलना रानी को मेरे यहाँ भेज दे। राजगृह में जाकर दूत ने राजा श्रेणिक को अपने राजा चण्डप्रद्योतन की आज्ञा कह सुनाई। उसे सुन कर राजा श्रेणिक बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने दूत से कहा—तुम्हारे राजा

से कहना कि अग्नि रथ, अनेलगिरि हाथी, वज्रजंघ दूत और शिवादेवी, इन चारों को मेरे यहाँ भेज दे। दूत ने जाकर राजा श्रेणिक की कही हुई बात राजा चण्डप्रद्योतन को कही। दूत की बात सुन कर राजा चण्डप्रद्योतन अति कुपित हुआ। बड़ी भारी सेना लेकर उसने राजगृह पर चढ़ाई कर दी। राजगृह के बाहर उसने सेना का पड़ाव डाल दिया। जब इस बात का पता राजा श्रेणिक को लगा तो उसने भी अपनी सेना को सज्जित होने का हुक्म दिया। उसी समय अभयकुमार ने आकर निवेदन किया—देव! आप सेना सजाने की तकलीफ क्यों करते हैं। मैं ऐसा उपाय करूँगा कि मासाजी (चण्डप्रद्योतन राजा) कल प्रातःकाल स्वयं वापिस लौट जाएंगे। राजा ने अभयकुमार की बात मान ली।

रात्रि के समय अभयकुमार अपने साथ बहुत सा धन लेकर राजमहल से निकला। उसने चण्डप्रद्योतन राजा के सेनापति तथा १६ बड़े उमरावों के डेरों के पीछे वह धन गडवा दिया। फिर वह राजा चण्डप्रद्योतन के पास आया। प्रणाम करके अभयकुमार ने कहा मासाजी! मेरे लिये तो आप और पिताजी दोनों समान रूप से आदरणीय हैं। अतः मैं आपके हित की बात कहने के लिये आया हूँ क्योंकि किसी के साथ धोखा हो यह मुझे पसन्द नहीं है। राजा चण्डप्रद्योतन बड़ी उत्सुकता से अभयकुमार से पूछने लगा—वत्स! मुझे शीघ्र बतलाओ कि मेरे साथ क्या धोखा होने वाला है? अभयकुमार ने कहा—पिताजी ने आपके सेनापति और बड़े बड़े उमरावों को घूंस (रिश्वत) देकर अपने वश में कर लिया है। वे लोग सुबह आपको पकड़वा देंगे। यदि आपको विश्वास न हो तो मेरे साथ चलिये। उन लोगों के पास आया हुआ धन मैं आपको दिखला

देता हूँ। ऐसा कह कर अभय कुमार राजा चण्डप्रद्योतन को अपने साथ लेकर चला और सेनापति और उमरावों के डेरों के पीछे गड़ा हुआ धन उसे दिखला दिया। राजा चण्डप्रद्योतन को अभय कुमार की बात पर पूर्ण विश्वास हो गया। वह शीघ्रता के साथ अपने डेरे पर आया और अपने घोड़े पर सवार होकर उसी रात को वह वापिस उज्जयिनी लौट गया प्रातःकाल जब सेनापति और उमरावों को यह पता लगा कि राजा भागकर वापिस उज्जयिनी चला गया है तब उन सबको बहुत आश्चर्य हुआ। बिना नायक की सेना क्या कर सकती है ऐसा सोच कर सेना सहित वे सब लोग वापिस उज्जयिनी लौट आये। जब वे राजा से मिलने के लिये गये तो पहले तो उन्हें धोखेबाज समझ कर राजा ने उनसे मिलने के लिये इन्कार कर दिया किन्तु जब उन्होंने बहुत प्रार्थना करवाई तब राजा ने उन्हें मिलने की इजाजत दे दी। राजा से मिलने पर उन्होंने उससे वापिस लौटने का कारण पूछा। राजा ने सारी बात कही। तब उन्होंने कहा देव ! अभयकुमार बहुत बुद्धिमान् है उसने आपको धोखा देकर अपना बचाव कर लिया है। यह सुन कर वह अभयकुमार पर बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने आज्ञा दी कि जो अभयकुमार को पकड़ कर मेरे पास लावेगा उसे बहुत बड़ा इनाम दिया जायगा। एक वेश्या ने राजा की उपरोक्त आज्ञा स्वीकार की। वह श्राविका बन कर राजगृह में आई। कुछ समय पश्चात् उसने अभयकुमार को अपने यहाँ भोजन करने का निमन्त्रण दिया। उसे श्राविका समझ कर अभयकुमार ने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और एक दिन भोजन करने के लिये उसके घर चला गया। वेश्या ने भोजन में कुछ मादक द्रव्यों का मिश्रण कर दिया था इसलिये भोजन करते ही अभयकुमार बेहोश हो गया। उसी समय वेश्या उसे रथ में चढ़ाकर

उज्जयिनी ले आई और राजा की सेवा में उपस्थित कर दिया।

राजा चण्डप्रद्योतन ने कहा— अभयकुमार! तुमने मेरे साथ धोखा किया किन्तु मैंने भी कैसी चतुराई से पकड़वा कर तुझे यहाँ मंगवा लिया। अभयकुमार ने कहा–मासाजी! अभिमान न करिये। इस उज्जयिनी के बाजार के बीच आपके सिर पर जूते मारता हुआ मैं आपको राजगृह ले जाऊँ तब मेरा नाम अभयकुमार समझना। राजा ने अभयकुमार की इस बात को हंसी में टाल दिया।

कुछ समय पश्चात् अभयकुमार ने एक ऐसे आदमी की खोज की जिसकी आवाज राजा चण्डप्रद्योतन सरीखी हो। जब उसे ऐसा आदमी मिल गया तो उसे अपने पास रख कर सारी बात उसे अच्छी तरह समझा दी। एक दिन उसे रथ में बिठाकर उसके सिर पर जूते मारता हुआ अभयकुमार उज्जयिनी के बाजार में होकर निकला। वह आदमी चिल्लाने लगा–अभयकुमार मुझे जूतों से मार रहा है, मुझे छुड़ाओ, मुझे छुड़ाओ। राजा चण्ड-प्रद्योतन सरीखी आवाज सुनकर लोग उसे छुड़ाने के लिये दौड़ कर आये। लोगों के आते ही वह आदमी और अभयकुमार दोनों खिलखिला कर हँसने लग गये। लोगों ने समझा–अभयकुमार बालक है, बालक्रीड़ा करता है। अतः वे सब वापिस अपने अपने स्थान चले गये। अभयकुमार लगातार पाँच सात दिन इसी तरह करता रहा। अब कोई भी आदमी उसे छुड़ाने नहीं आता था क्योंकि सब लोगों को यह पूर्ण विश्वास होगया था कि यह तो अभयकुमार की बालक्रीड़ा है। एक दिन उचित अवसर देख कर अभयकुमार ने राजा चण्डप्रद्योतन को बाँधकर अपने रथ में डाल लिया और उज्जयिनी के बाजार के बीच उसके सिर पर जूते मारता हुआ निकला। चण्डप्रद्योतन चिल्लाने लगा–दौड़ो, दौड़ो, अभयकुमार

मुझे जूतों से मारते हुए ले जा रहा है, मुझे छुड़ाओ, मुझे छुड़ाओ। लोगों ने सदा की तरह आज भी इसे अभयकुमार की बाल क्रीड़ा ही समझा। इसलिये कोई भी आदमी उसे छुड़ाने के लिये नहीं आया। अभयकुमार राजा चण्डप्रद्योतन को राजगृह ले आया। राजा अपने मन में बहुत लज्जित हुआ। राजा श्रेणिक के पैरों पड़कर उसने अपने अपराध के लिये क्षमा मांगी। राजा श्रेणिक ने उसे छोड़ दिया। उज्जयिनी में आकर वह राज्य करने लगा।

राजा चण्ड प्रद्योतन को पकड़ कर इस तरह ले आना अभयकुमार की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(२) सेठ—एक नगर में काल नाम का एक सेठ रहता था। एक समय अपनी स्त्री के दुश्चरित्र को देखकर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। गुरु के पास जाकर उसने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। मुनि बनकर वह शुद्ध संयम का पालन करने लगा।

उधर परपुरुष के समागम से उस स्त्री के गर्भ रह गया। जब राजपुरुषों को इस बात का पता लगा तो वे उस स्त्री को पकड़ कर राजदरबार में ले जाने लगे। संयोगवश विहार करते हुए वे ही मुनि उधर से निकले। मुनि को लक्ष्य कर वह स्त्री कहने लगी—हे मुने! यह तुम्हारा गर्भ है। तुम इसे छोड़कर कहाँ जा रहे हो? इसका क्या होगा?

स्त्री के वचन सुनकर मुनि ने विचार किया कि मैं तो निष्कलंक हूँ। इसलिए मेरे चित्त में तो किसी प्रकार का खेद नहीं है किन्तु इसके कथन से जैन शासन की और श्रेष्ठ साधुओं की अपकीर्ति होगी। ऐसा सोचकर मुनि ने कहा—यदि यह गर्भ मेरा हो तो इसका सुखपूर्वक प्रसव हो। यदि यह गर्भ मेरा न हो तो गर्भ-समय पूर्ण हो जाने पर भी इसका प्रसव न हो किन्तु माता का पेट चीर कर इसे निकालने की परिस्थिति बने।

आखिरकार जब गर्भ के नौ मास पूरे हो गये तब भी बालक का जन्म नहीं हुआ। इससे माता को बहुत कष्ट होने लगा। संयोगवश विहार करते हुए वे ही मुनि उन दिनों वहाँ पधार गये। राजपुरुषों के सामने उस स्त्री ने मुनिराज से प्रार्थना की—महाराज! यह गर्भ आपका नहीं है। मैंने आपके सिर पर झूठा कलङ्क लगाया था। मेरे अपराध के लिये मैं आपसे बार बार क्षमा मांगती हूँ। अब आगे फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूँगी।

इस प्रकार अपने अपराध की क्षमा माँगने तथा मुनि पर से कलङ्क उतर जाने के कारण गर्भ का सुखपूर्वक प्रसव हो गया। इस प्रकार धर्म का मान और उस स्त्री के प्राण दोनों बच गये। यह मुनि की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(३) कुमार– एक राजकुमार था। उसका विवाह अनेक रूपवती राजकन्याओं के साथ हुआ था। उनके साथ क्रीड़ा करते हुए उसका समय सुख पूर्वक व्यतीत हो रहा था। राजकुमार का मोदक (लड्डू) खाने का बहुत शौक था। एक समय उसने सुगन्धी पदार्थों से युक्त बहुत लड्डू खा लिये। अधिक खा लेने से उसे अजीर्ण हो गया। मुँह से दुर्गन्ध निकलने लगी। इससे राजकुमार को बड़ी घृणा उत्पन्न हुई। वह सोचने लगा– यह शरीर कैसा अशुचि रूप है। इसका संयोग पाकर सुन्दर और मनोहर पदार्थ भी अशुचिरूप बन जाते हैं। यह शरीर अशुचि पदार्थों से बना है और स्वयं अशुचि का भण्डार है। लोग इसी अशुचि शरीर के लिये अनेक पाप करते हैं। यह तो घृणित है, धिक्कारने योग्य है।

इस प्रकार अशुचि भावना भाने से तथा अध्यवसायों की शुद्धता के कारण उस राजकुमार को उसी समय केवलज्ञान उत्पन्न हो

गया। कई वर्षों तक केवल पर्याय का पालन कर वे मोक्ष में पधारे। यह राजकुमार की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(नन्दी सूत्र)

(४) देवी—प्राचीन समय में पुष्पभद्र नाम का एक नगर था। वहाँ पुष्पकेतु राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम पुष्पवती था। उनके दो सन्तान थीं। एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्र का नाम पुष्पचूल था और पुत्री का नाम पुष्पचूला। भाई बहिन में परस्पर बहुत प्रेम था। जब ये यौवन वय को प्राप्त हुए तब इनकी माता काल धर्म को प्राप्त होगई। यहाँ की आयुष्य पूर्ण कर वह देवलोक में गई और पुष्पवती नाम की देवी हुई।

एक समय पुष्पवती देवी ने यह विचार किया कि मेरी पुत्री पुष्पचूला कहीं आत्म कल्याण के मार्ग को भूलकर संसार में ही फंसी न रह जाय। इसलिये उसे प्रतिबोध देने के लिये मुझे कुछ उपाय करना चाहिये। ऐसा सोचकर पुष्पवती देवी ने पुष्पचूला को स्वप्न में नरक और स्वर्ग दिखाये। उन्हें देखकर पुष्पचूला को प्रतिबोध हो गया। संसार के झंझटों को छोड़कर उसने दीक्षा ले ली। तपस्या और धर्म ध्यान के साथ साथ वह दूसरी साध्वियों की वैयावच्च करने में भी बहुत तल्लीन रहने लगी। थोड़े ही समय में घाती कर्मों का क्षय कर उसने केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर लिये। कई वर्षों तक केवली पर्याय का पालन कर महासती पुष्पचूला ने आयु पूरी होने पर मोक्ष प्राप्त किया।

पुष्पचूला को प्रतिबोध देने रूप पुष्पवती देवी की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(नन्दी सूत्र)

नोट—सोलह सतियों में पुष्पचूला चौदहवीं सती है। इसका वर्णन इसी ग्रन्थ के पाँचवें भाग के बोल नं० ८७५ में दिया गया है।

(५) उदितोदय- पुरिमताल नगर में उदितोदय राजा राज्य करता था। वह श्रावक था। उसकी रानी का नाम श्रीकान्ता था। उसकी धर्म पर विशेष रुचि थी। उसने श्राविका के व्रत अङ्गीकार कर रखे थे। दोनों आनन्द पूर्वक अपना समय व्यतीत करते थे।

एक समय वहाँ एक परिव्राजिका आई। वह अन्तःपुर में रानी के पास गई और अपने शुचि धर्म का उपदेश देने लगी। किन्तु रानी ने उसका किसी प्रकार का आदर सत्कार नहीं किया। इससे वह परिव्राजिका कुपित हो गई। उसने रानी से बदला लेने का उपाय सोचा। वहाँ से निकल कर वह बनारसी नगरी के राजा धर्मरुचि के पास आई। परिव्राजिका ने उसके सामने श्रीकान्ता रानी के रूप लावण्य की बहुत प्रशंसा की। परिव्राजिका की बात सुनकर राजा धर्मरुचि श्रीकान्ता रानी को प्राप्त करने के लिये बहुत व्याकुल हो उठा। शीघ्र ही अपनी सेना को लेकर उसने पुरिमताल पर चढ़ाई करदी। उसने पुरिमताल नगर को घेर लिया और उसके चारों तरफ अपनी सेना का पड़ाव डाल दिया।

उदितोदय राजा विचार में पड़ गया। वह सोचने लगा—यह यकायक मेरे पर चढ़ाई करके चला आया है। यदि मैं इसके साथ युद्ध करने के लिये तैयार होता हूँ तो निष्कारण हजारों सैनिकों का विनाश होगा। मुझे अब आत्मरक्षा कैसे करनी चाहिए? बहुत सोच विचार कर राजा ने अट्ठम तप (तेला) किया और वैश्रमण देव की आराधना की। तप के प्रभाव से वैश्रमण देव उपस्थित हुआ। राजा ने उसके सामने अपनी इच्छा प्रकट की। उसे सुनकर देव ने उस पुरिमताल नगर को संहरण कर, दूसरे स्थान पर रख दिया। प्रातःकाल धर्मरुचि राजा ने देखा कि पुरिमताल नगर का कहीं पता ही नहीं है। सामने खाली मैदान पड़ा हुआ है। विवश होकर धर्मरुचि ने अपनी सेना वहाँ से हटा ली और वापिस

बनारस चला गया।

राजा उदितोदय ने निष्कारण जनसंहार न होने दिया और बुद्धिमत्ता पूर्वक अपनी और प्रजाजनों की रक्षा कर ली। यह राजा की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(नन्दी सूत्र)

(६) साधु और नन्दीषेण—राजगृह के स्वामी श्रेणिक राजा के एक पुत्र का नाम नन्दीषेण था। यौवन वय को प्राप्त होने पर राजा ने कुमार नन्दीषेण का विवाह अनेक राजकन्याओं के साथ कर दिया। उनका रूप लावण्य अनुपम था। उनके सौन्दर्य को देख कर अप्सराएं भी लज्जित होती थीं। कुमार नन्दीषेण उनके साथ आनन्द पूर्वक समय बिताने लगा।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह पधारे। राजा श्रेणिक भगवान् को वन्दना करने गया। कुमार नन्दीषेण भी अपने अन्तःपुर के साथ भगवान् को वन्दना नमस्कार करने गया। भगवान् ने धर्मोपदेश फरमाया। उसे सुन कर कुमार नन्दीषेण को वैराग्य उत्पन्न हो गया। राजा श्रेणिक को पूछ कर कुमार नन्दीषेण ने भगवान् के पास दीक्षा अङ्गीकार कर ली। उसकी बुद्धि अति तीक्ष्ण थी। थोड़े ही समय में उसने बहुत सा ज्ञान उपार्जन कर लिया। फिर कई भव्यात्माओं ने उसके पास दीक्षा अङ्गीकार की। इसके पश्चात् भगवान् की आज्ञा लेकर वह अपने शिष्यों सहित अलग विचरने लगा।

एक समय उसके शिष्य वर्ग में से किसी एक शिष्य के चित्त में चञ्चलता पैदा हो गई। वह साधुव्रत को छोड़ देना चाहता था। शिष्य के चित्त की चञ्चलता को जान कर नन्दीषेण मुनि ने विचार किया कि किसी उपाय से इसे पुनः संयम में स्थिर करना चाहिए। ऐसा सोच कर वह अपने शिष्यवृन्द सहित राजगृह आया।

मुनियों का आगमन सुन कर राजा श्रेणिक उन्हें वन्दना नमस्कार करने गया, साथ में उसका अन्तःपुर तथा कुमार नन्दीषेण का अन्तःपुर भी था। रानियों के अनुपम रूप सौन्दर्य को देख कर उस मुनि के मन में विचार उत्पन्न हुआ —'धन्य है मेरे गुरु महाराज को, जो अप्सरा सरीखी सुन्दर रानियों को तथा इस वैभव को छोड़ कर शुद्ध भाव से संयम का पालन कर रहे हैं। मुझ पापात्मा को धिक्कार है जो संयम व्रत लेकर भी ऐसा नीच विचार कर रहा है। इन विचारों को हृदय से निकाल कर मुझे दृढ़तापूर्वक संयम का पालन करना चाहिए।' ऐसा विचार कर वह साधु विशेष रूप से संयम में स्थिर हो गया।

मुनि नन्दीषेण ने अपनी बुद्धि से मुनि को संयम में स्थिर किया यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

नन्दीसूत्र टीका)

(७) धनदत्त—राजगृह नगर में धनदत्त नाम का एक सार्थवाह रहता था। उसकी स्त्री का नाम भद्रा था। उसके पाँच पुत्र और सुंसुमा नाम की एक लड़की थी।

एक समय चिलात चोर सेनापति ने पाँच सौ चोरों के साथ धनदत्त सेठ के घर डाका डाला। बहुत सा धन और सुंसुमा बालिका को लेकर वे भाग गये। अपने पांचों पुत्रों को साथ लेकर धनदत्त सार्थवाह ने चोरों का पीछा किया। इससे चोरों ने धन को डाल दिया किन्तु चिलात चोर सेनापति सुंसुमा को लेकर भागता ही गया। उन्होंने तेजी से उसका पीछा किया। दौड़ते दौड़ते चिलात थक गया और सुंसुमा को लेकर भागने में असमर्थ हो गया। उसी समय उसने तलवार से सुंसुमा का सिर काट दिया और धड़ को वहीं फेंक दिया। सिर को लेकर वह भाग गया।

सुंसुमा के कटे हुए धड़ को देखकर धनदत्त और उसके पुत्र

निराश होकर शोक करने लगे। दौड़ते दौड़ते वे थक गये थे। भूख प्यास से वे व्याकुल थे। धनदत्त ने अन्य कोई उपाय न देखकर, उस मृत कलेवर से अपनी भूख प्यास बुझाने के लिये अपने पुत्रों को कहा। पुत्रों ने उसकी बात को स्वीकार किया और वैसा ही करके सुखपूर्वक राजगृह नगर में पहुंच गये।

उपरोक्त रीति से धनदत्त ने अपने और अपने पुत्रों के प्राण बचाये, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

यह कथा ज्ञातासूत्र के अठारहवें अध्ययन में आई है, जो इसी ग्रन्थ के पाँचवें भाग के बोल नं० ६०० में विस्तार पूर्वक दी गई है।

(८) श्रावक भार्या-एक समय एक श्रावक ने दूसरे श्रावक की रूपवती भार्या को देखा। उसे देख कर वह उस पर मोहित हो गया। लज्जा के कारण उसने अपनी इच्छा किसी के सामने प्रकट नहीं की। इच्छा के बहुत प्रबल होने के कारण वह दिन प्रतिदिन दुर्बल होने लगा। जब उसकी स्त्री ने बहुत आग्रह पूर्वक दुर्बलता का कारण पूछा तो श्रावक ने सच्ची सच्ची बात कह दी।

श्रावक की बात सुनकर उसकी स्त्री ने विचार किया कि ये श्रावक हैं। स्वादार संतोष का व्रत ले रखा है। फिर भी मोह कर्म के उदय से इन्हें ऐसे कुविचार उत्पन्न हुए हैं। यदि इन कुविचारों में इनकी मृत्यु हो गई तो ये दुर्गति में चले जायेंगे। इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे इनके ये कुविचार भी हट जायं और इनका व्रत भी खण्डित न हो। कुछ सोचकर उसने कहा—स्वामिन्! आप चिन्ता न करिये। इसमें कठिनता की क्या बात है? वह मेरी सखी है। मेरे कहने से वह आज ही आ जायगी। ऐसा कहकर वह अपनी सखी के पास गई और वे ही कपड़े मांग लाई जिन्हें पहने हुए उसे श्रावक ने देखा था। रात्रि के समय श्रावक की स्त्री

ने उन्हीं कपड़ों को पहन लिया और वैसा ही शृङ्गार कर लिया। इसके बाद प्रतीक्षा में बैठे हुए अपने पति के पास चली गई।

दूसरे दिन श्रावक को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसने सोचा मैंने अपना लिया हुआ व्रत खण्डित कर दिया। मैंने बहुत बुरा किया। इस प्रकार पश्चात्ताप करने से श्रावक फिर दुर्बल होने लगा। उसकी स्त्री ने इस बात को जानकर सच्ची सच्ची बात कह दी। इसे सुनकर श्रावक बहुत प्रसन्न हुआ। गुरु के पास जाकर मानसिक कुविचार और परस्त्री के संकल्प से विषय सेवन के लिये प्रायश्चित्त लेकर वह शुद्ध हुआ।

उस श्रावक पत्नी ने अपने पति का व्रत और प्राण दोनों की रक्षा कर ली। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

(नन्दी सूत्र)

(६) अमात्य (मन्त्री)—कम्पिलपुर में ब्रह्म नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चुलनी था। एक समय सुखशय्या पर सोती हुई रानी ने चक्रवर्ती के जन्म सूचक चौदह महास्वप्न देखे। जिनके परिणाम स्वरूप उसने एक परम प्रतापी पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम ब्रह्मदत्त रखा गया। जब वह बालक था उसी समय ब्रह्म राजा का देहान्त हो गया। ब्रह्मदत्त कुमार छोटा था इसलिये राज्य का कार्य ब्रह्मराजा के मित्र दीर्घ-पृष्ठ को सौंपा गया। दीर्घपृष्ठ बड़ी योग्यता पूर्वक राज्य का कार्य सम्भालने लगा। वह निःशंक होकर अन्तःपुर में आता जाता था। कुछ समय पश्चात् रानी चुलनी के साथ उसका प्रेम हो गया। वे दोनों विषय सुख का भोग करते हुए आनन्द पूर्वक समय बिताने लगे।

ब्रह्म राजा के मन्त्री का नाम धनु था। वह राजा का परम हितैषी था। राजा की मृत्यु के पश्चात् वह हर प्रकार से ब्रह्मदत्त

की रक्षा करता था। मन्त्री के पुत्र का नाम वरधनु था। ब्रह्मदत्त और वरधनु दोनों मित्र थे।

राजा दीर्घपृष्ठ और रानी चुलनी के अनुचित सम्बन्ध का पता मन्त्री को लग गया। उसने ब्रह्मदत्त को इस बात की सूचना की तथा अपने पुत्र वरधनु को सदा राजकुमार की रक्षा करने के लिये आदेश दिया। माता के दुश्चरित्र को सुन कर कुमार ब्रह्मदत्त को बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। यह बात उसके लिये असह्य हो गई। उसने किसी उपाय से उन्हें समझाने के लिये सोचा। एक दिन वह एक कौआ और एक कोयल को पकड़ कर लाया। अन्तःपुर में जाकर उसने उच्च स्वर में कहा--इन पक्षियों की तरह जो वर्ण-शंकरपना करेंगे, उन्हें मैं अवश्य दण्ड दूँगा।

कुमार की बात सुन कर दीर्घपृष्ठ ने रानी से कहा---कुमार यह बात अपने को लक्षित करके कह रहा है। मुझे कौआ और तुझे कोयल बनाया है। यह अपने को अवश्य दण्ड देगा। रानी ने कहा--आप इसकी चिन्ता न करें। यह बालक है। बाल क्रीड़ा करता है।

एक समय श्रेष्ठ जाति की हथिनी के साथ तुच्छ जाति के हाथी को देख कर कुमार ने उन्हें मृत्यु सूचक शब्द कहे। इसी प्रकार एक समय कुमार एक हंसनी और एक बगुले को पकड़ कर लाया और अन्तःपुर में जाकर उच्च स्वर से कहने लगा--इस हंसनी और बगुले के समान जो रमण करेंगे उन्हें मैं मृत्यु दण्ड दूँगा।

कुमार के वचनों को सुन कर दीर्घपृष्ठ ने रानी से कहा--इस बालक के वचन साभिप्राय हैं। बड़ा होने पर यह हमारे लिये अवश्य विघ्नकर्ता होगा। विष वृक्ष को उगते ही उखाड़ देना ठीक है। रानी ने कहा--आपका कहना ठीक है। इसके लिये कोई ऐसा उपाय सोचिये जिससे अपना कार्य भी पूरा हो जाय और लोकनिन्दा

भी न हो। दीर्घपृष्ठ ने कहा—इसका एक उपाय है और वह यह है कि कुमार का विवाह शीघ्र कर दिया जाय। कुमार के निवास के लिए एक लाक्षागृह (लाख का घर) बनवाया जाय। जब कुमार उसमें सोने के लिये जाय तो रात्रि में उस महल को आग लगा दी जाय। जिससे वधू सहित कुमार जल कर समाप्त हो जायगा।

कामान्ध बनी हुई रानी ने दीर्घपृष्ठ की बात स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् उसने एक लाक्षागृह तय्यार करवाया। फिर पुष्पचूल राजा की कन्या के साथ कुमार ब्रह्मदत्त का विवाह करवाया।

जब धनु मन्त्री को दीर्घपृष्ठ और चुलनी के षड्यंत्र का पता चला तो उसने दीर्घपृष्ठ से आकर निवेदन किया—स्वामिन्! अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। ईश्वर भजन कर शेष जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। मेरा पुत्र वरधनु अब सब तरह से योग्य हो गया है, वह आपकी सेवा करेगा। इस प्रकार निवेदन कर धनु मन्त्री गंगा नदी के किनारे पर आया। वहाँ एक बड़ी दानशाला खोल कर दान देने लगा। दान देने के बहाने उसने अपने विश्वसनीय पुरुषों द्वारा उस लाक्षागृह में एक सुरंग बनवाई। इसके पश्चात् उसने राजा पुष्पचूल को भी इस सारी बात की सूचना कर दी। इससे उसने अपनी पुत्री को न भेज कर एक दासी को भेज दिया।

रात्रि को सोने के लिये ब्रह्मदत्त को उस लाक्षागृह में भेजा। ब्रह्मदत्त अपने साथ वरधनु मन्त्रीपुत्र को भी ले गया। अर्ध रात्रि के समय दीर्घपृष्ठ और चुलनी द्वारा भेजे हुए पुरुष ने उस लाक्षागृह में आग लगा दी आग चारों तरफ फैलने लगी। ब्रह्मदत्त ने मन्त्रीपुत्र से पूछा कि यह क्या बात है ? तब उसने दीर्घपृष्ठ और चुलनी द्वारा किये गये षड्यन्त्र का सारा भेद बताया और कहा कि आप घबराइए नहीं। मेरे पिता ने इस महल में एक सुरङ्ग

खुदवाई है जो गंगा नदी के किनारे जाकर निकलती है। इसके पश्चात् वे उस सुरंग द्वारा गंगा नदी के किनारे जाकर निकले। वहाँ पर धनु मंत्री ने दो घोड़े तय्यार रखे थे, उन पर सवार होकर वे वहाँ से बहुत दूर निकल गये।

इसके पश्चात् वरधनु के साथ ब्रह्मदत्त अनेक नगर एवं देशों में गया। वहाँ अनेक राजकन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ। चक्रवर्ती के चौदह रत्न प्रकट हुए। छःखण्ड पृथ्वी को जीत कर वह चक्रवर्ती बना।

धनु मन्त्री ने सुरङ्ग खुदवा कर अपने स्वामिपुत्र ब्रह्मदत्त की रक्षा कर ली। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

(आव. ह. गा. ९४९) (नदी सू. २७ गा. ७२) (त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्रपर्व ९)

(१०) क्षपक—किसी समय एक तपस्वी साधु पारणे के दिन भिक्षा के लिये गया। वापिस लौटते समय रास्ते में उसके पैर से दब कर एक मेंढक मर गया। शिष्य ने उसे शुद्ध होने के लिये कहा किन्तु उसने शिष्य की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। शाम को प्रतिक्रमण के समय शिष्य ने उसको फिर याद दिलाई। शिष्य के वचनों को सुन कर उसे क्रोध आगया। वह उसे मारने के लिये उठा, किन्तु अन्धेरे में एक स्तम्भ से सिर टकरा जाने से उसकी उसी समय मृत्यु हो गई। मरकर वह ज्योतिषी देवों में उत्पन्न हुआ। वहाँ से चव कर वह दृष्टिविष सर्प हुआ। उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। वह अपने पूर्वभव को देख कर पश्चात्ताप करने लगा। 'मेरी दृष्टि से किसी जीव की हिंसा न हो जाय' ऐसा सोच कर वह प्रायः अपने बिल में ही रहा करता था। बाहर बहुत कम निकलता था।

एक समय किसी सर्प ने वहाँ के राजा के पुत्र को काट खाया। जिससे राजकुमार की मृत्यु हो गई। इस कारण राजा को सर्पों

पर बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ। सर्प पकड़ने वाले गारुड़ियों को बुलाकर राज्य के सब सर्पों को मार देने की आज्ञा दी। सर्पों को मारते हुए वे लोग उस दृष्टिविष सर्प के बिल के पास पहुंचे। उन्होंने उसके बिल पर औषधि डाली। औषधि के प्रभाव से वह सर्प बिल से बाहर खींचा जाने लगा। 'मेरी दृष्टि से मुझे मारने वाले पुरुषों का विनाश न हो जाय' ऐसा सोचकर वह पूंछ की तरफ से बाहर निकलने लगा। वह ज्यों ज्यों बाहर निकलता गया त्यों त्यों वे लोग उसके टुकड़े करते गये किन्तु उसने समभाव रखा। उन लोगों पर लेश मात्र भी क्रोध नहीं किया। परिणामों की सरलता के कारण वहाँ से मर कर वह उसी राजा के घर पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ। उसका नाम नागदत्त रखा गया। बाल्यावस्था में उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया जिससे उसने दीक्षा ले ली।

विनय, सरलता, समभाव आदि अनेक असाधारण गुणों के कारण वह देवों का वन्दनीय हो गया। उसे वन्दना करने के लिये देव भक्ति पूर्वक आते थे। पूर्व भव में तिर्यञ्च होने के कारण उसे भूख बहुत लगती थी। विशेष तप उससे नहीं होता था।

उसी गच्छ में चार एक एक से बढ़ कर तपस्वी साधु थे। नागदत्त उन तपस्वी मुनियों की खूब विनय वैयावृत्य किया करता था। एक बार उसे वन्दना करने के लिए देवता आये। यह देख कर उन तपस्वी मुनियों के हृदय में ईर्षा उत्पन्न हो गई।

एक दिन नागदत्त मुनि अपने लिए गोचरी लेकर आया। उसने विनयपूर्वक उन मुनियों को आहार दिखलाया। ईर्षावश उन्होंने उसमें थूक दिया।

उपरोक्त घटना को देखकर भी नागदत्त मुनि शान्त बना रहा। उसके हृदय में किसी प्रकार का क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ।

वह अपनी निन्दा एवं तपस्वी मुनियों की प्रशंसा करने लगा। उपशान्त चित्तवृत्ति के कारण तथा परिणामों की विशुद्धता से उसको उसी समय केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। देवता लोग केवलज्ञान का उत्सव मनाने के लिये आने लगे। यह देखकर उन तपस्वी मुनियों को भी अपने कार्य के लिए पश्चात्ताप होने लगा। परिणामों की विशुद्धता के कारण उनको भी उसी समय केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

नागदत्त मुनि ने प्रतिकूल संयोग में भी समभाव रखा जिसके परिणाम स्वरूप उसको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

(नन्दी सूत्र)

(११) अमात्यपुत्र--कम्पिलपुर के राजा ब्रह्म के मन्त्री का नाम धनु था। राजा के पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त और मन्त्री के पुत्र का नाम वरधनु था। राजा की मृत्यु के पश्चात् दीर्घपृष्ठ राज्य संभालता था। रानी चुलनी का उसके साथ प्रेम हो गया। दोनों ने कुमार को प्रेम में बाधक समझ कर उसे मार डालने के लिये षड्यन्त्र किया। तदनुसार रानी ने एक लाक्षागृह तैयार कराया, कुमार का विवाह किया और दम्पति को सोने के लिए लाक्षागृह में भेजा। कुमार के साथ वरधनु भी लाक्षागृह में गया। अर्द्ध रात्रि के समय दीर्घपृष्ठ और रानी के सेवकों ने लाक्षागृह में आग लगा दी। उस समय मन्त्री द्वारा बनवाई हुई गुप्त सुरङ्ग से ब्रह्मदत्त कुमार और मन्त्रीपुत्र वरधनु बाहर निकल कर भाग गये। भागते हुए जब वे एक घने जंगल में पहुंचे तो ब्रह्मदत्त को बड़े जोर से प्यास लगी। उसे एक वट वृक्ष के नीचे बिठाकर वरधनु पानी लाने के लिये गया।

इधर दीर्घपृष्ठ को जब मालूम हुआ कि कुमार ब्रह्मदत्त लाक्षागृह

से जीवित निकल कर भाग गया है तो उसने चारों तरफ अपने आदमियों को दौड़ाया और आदेश दिया कि जहाँ भी ब्रह्मदत्त और वरधनु मिलें उन्हें पकड़ कर मेरे पास लाओ।

इन दोनों की खोज करते हुए राजपुरुष उसी वन में पहुंच गये। जब वरधनु पानी लेने के लिये एक सरोवर के पास पहुँचा तो राजपुरुषों ने उसे देख लिया और उसे पकड़ लिया। उसने उसी समय उच्च स्वर से संकेत किया जिससे ब्रह्मदत्त समझ गया और वहाँ से उठ कर एक दम भाग गया।

राजपुरुषों ने वरधनु से राजकुमार के बारे में पूछा किन्तु उसने कुछ नहीं बताया। तब वे उसे मारने पीटने लगे। वह जमीन पर गिर पड़ा और श्वास रोक कर निश्चेष्ट बन गया। 'यह मर गया है' ऐसा समझ कर राजपुरुष उसे छोड़कर चले गये।

राजपुरुषों के चले जाने के पश्चात् वह उठा और राजकुमार को ढूंढने लगा किन्तु उसका कहीं पता नहीं लगा। तब वह अपने कुटुम्बियों की खबर लेने के लिये कम्पिलपुर की ओर चला। मार्ग में उसे संजीवन और निर्जीवन नाम की दो गुटिकाएं (औषधियाँ) प्राप्त हुई। आगे चलने पर कम्पिलपुर के पास उसे एक चाण्डाल मिला। उसने वरधनु को सारा वृत्तान्त कहा और बतलाया कि तुम्हारे सब कुटुम्बियों को राजा ने कैद कर लिया है। तब वरधनु ने कुछ लालच देकर उस चाण्डाल को अपने वश में करके उसे निर्जीवन गुटिका दी और सारी बात समझा दी।

चाण्डाल ने जाकर वह गुटिका प्रधान को दी। उसने अपने सब कुटुम्बी जनों की आँखों में उसका अंजन किया जिससे वे तत्काल निर्जीव सरीखे हो गये। उन सबको मरे हुए जानकर दीर्घपृष्ठ राजा ने उन्हें श्मशान में ले जाने के लिये उस चाण्डाल को आज्ञा दी। वरधनु ने जो जगह बताई थी उसी जगह पर वह चाण्डाल

उन सब को रख आया। इसके पश्चात् वरधनु ने आकर उन सब की आँखों में संजीवन गुटिका का अंजन किया जिससे वे सब स्वस्थ हो गये। सामने वरधनु को देखकर वे आश्चर्य करने लगे। वरधनु ने उनसे सारी हकीकत कह सुनाई। तत्पश्चात् वरधनु ने उन सबको अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ रख दिया और वह स्वयं ब्रह्मदत्त को ढूंढने के लिये निकल गया। बहुत दूर किसी वन में उसे ब्रह्मदत्त मिल गया। फिर वे अनेक नगरों एवं देशों को जीतते हुए आगे बढ़ते गये। अनेक राजकन्याओं के साथ ब्रह्मदत्त का विवाह हुआ। छः खण्ड पृथ्वी को विजय करके वापिस कम्पिलपुर लौटे। दीर्घपृष्ठ राजा को मार कर ब्रह्मदत्त ने वहाँ का राज्य प्राप्त किया। चक्रवर्ती की ऋद्धि का उपभोग करते हुए सुख पूर्वक समय व्यतीत करने लगे।

मन्त्रीपुत्र वरधनु ने राजकुमार ब्रह्मदत्त की तथा अपने सब कुटुम्बियों की रक्षा कर ली, यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

(उत्तराध्यन अ० १३ टीका)

मन्त्रीपुत्र विषयक दृष्टान्त दूसरे प्रकार से भी दिया जाता है।

एक राजकुमार और मन्त्रीपुत्र दोनों संन्यासी का वेष बनाकर अपने राज्य से निकल गये। चलते हुए एक नदी के किनारे पहुंचे। सूर्य अस्त हो जाने से रात्रि व्यतीत करने के लिये वे वहाँ ठहर गये। वहाँ एक नैमित्तिक पहले से ठहरा हुआ था। रात्रि को शृगाली चिल्लाने लगी। राजकुमार ने नैमित्तिक से पूछा—यह शृगाली क्या कह रही है? नैमित्तिक ने जवाब दिया—यह शृगाली कह रही है कि नदी में एक मुर्दा जा रहा है। उसके कमर में सौ मोहरें बंधी हुई हैं। यह सुन कर राजकुमार ने नदी में कूद कर उस मुर्दे को निकाल लिया। उसकी कमर में बंधी हुई सौ मोहरें उसने ले लीं और मृतकलेवर को शृगाली

की तरफ फेंक दिया। राजकुमार अपने स्थान पर आकर सो गया। शृगाली फिर चिल्लाने लगी। राजकुमार ने नैमित्तिक से इसका कारण पूछा। उसने कहा—यह अपनी कृतज्ञता प्रकाश करती हुई कहती है—हे राजकुमार! तुमने बहुत अच्छा किया। नैमित्तिक का वचन सुन कर राजकुमार बहुत खुश हुआ।

मन्त्रीपुत्र इस सारी बातचीत को चुपचाप सुन रहा था। उसने विचार किया कि राजकुमार ने सौ मोहरें कृपणभाव से ग्रहण की हैं या वीरता से ग्रहण की हैं। यदि उसने कृपणभाव से ग्रहण की हैं तो यह समझना चाहिए कि इसमें राजा के योग्य उदारता और वीरता आदि गुण नहीं हैं। इसे राज्य प्राप्त नहीं होगा। फिर इसके साथ फिर कर व्यर्थ कष्ट उठाने से क्या फायदा? यदि राजकुमार ने ये मोहरें अपनी वीरता बतलाने के लिये ग्रहण की हैं तो इसे राज्य अवश्य मिलेगा।

ऐसा सोचकर प्रातःकाल होने पर मन्त्रीपुत्र ने राजकुमार से कहा—मेरा पेट बहुत दुखता है। मैं आपके साथ नहीं चल सकूंगा। इसलिए आप मुझे यहाँ छोड़कर जा सकते हैं। राजकुमार ने कहा— मित्र! ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं तुम्हें छोड़ कर नहीं जा सकता। तुम सामने दिखाई देने वाले गांव तक चलो। वहाँ किसी वैद्य से तुम्हारा इलाज करवायेंगे। मन्त्रीपुत्र वहाँ तक गया। राजकुमार ने वैद्य को बुलाकर उसे दिखाया और कहा—ऐसी बढ़िया दवा दो जिससे इसके पेट का दर्द तत्काल दूर हो जाय। यह कह कर राजकुमार ने दवा के मूल्य के रूप में वैद्य को वे सौ ही मोहरें दे दीं।

राजकुमार की उदारता को देखकर मन्त्रीपुत्र को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि इसे अवश्य राज्य प्राप्त होगा। थोड़े दिनों में ही राजकुमार को राज्य प्राप्त हो गया।

राजकुमार की उदारता को देखकर उसे राज्य प्राप्त होने की बात को सोच लेना मन्त्रीपुत्र की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(आवश्यक मलयगिरि टीका)

(१२) चाणक्य—चाणक्य की बुद्धि के बहुत से उदाहरण हैं उनमें से यहाँ पर एक उदाहरण दिया जाता है।

एक समय पाटलिपुत्र के राजा नन्द ने चाणक्य नाम के ब्राह्मण को अपने नगर से निकल जाने की आज्ञा दी। वहाँ से निकल कर चाणक्य ने संन्यासी का वेष बना लिया और घूमता हुआ वह मोर्यग्राम में पहुंचा। वहां एक गर्भवती क्षत्रियाणी को चन्द्र पीने का दोहला उत्पन्न हुआ। उसका पति बहुत असमञ्जस में पड़ा कि इस दोहले को कैसे पूरा किया जाय। दोहला पूर्ण न होने से वह स्त्री प्रतिदिन दुर्बल होने लगी। संन्यासी के वेश में गांव में घूमते हुए चाणक्य को उस राजपूत ने इस विषय में पूछा। उसने कहा—मैं इस दोहले को अच्छी तरह पूर्ण करवा दूंगा। चाणक्य ने गांव के बाहर एक मण्डप बनवाया। उसके ऊपर कपड़ा तान दिया गया। चाणक्य ने कपड़े में चन्द्रमा के आकार का एक गोल छिद्र करवा दिया। पूर्णिमा को रात के समय उस छेद के नीचे एक थाली में पेय द्रव्य रख दिया और उस दिन क्षत्रियाणी को भी वहाँ बुला लिया। जब चन्द्रमा बराबर उस छेद के ऊपर आया और उसका प्रतिबिम्ब उस थाली में पड़ने लगा तो चाणक्य ने उससे कहा—लो, यह चन्द्र है, इसे पी जाओ। हर्षित होती हुई क्षत्रियाणी नें उसे पी लिया। ज्यों ही वह पी चुकी त्यों ही चाणक्य ने उस छेद के ऊपर दूसरा कपड़ा डालकर उसे बंद करवा दिया। चन्द्रमा का प्रकाश पड़ना बन्द हो गया तो क्षत्रियाणी ने समझा कि मैं सचमुच चन्द्रमा को पी गई हूँ। अपने दोहले को पूर्ण हुआ जानकर क्षत्रियाणी को बहुत हर्ष

हुआ। वह पूर्ववत् स्वस्थ हो गई और सुखपूर्वक अपने गर्भ का पालन करने लगी। गर्भ समय पूर्ण होने पर एक परम तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। गर्भ के समय माता को चन्द्र पीने का दोहला उत्पन्न हुआ था इसलिये उसका नाम चन्द्रगुप्त रखा गया। जब चन्द्रगुप्त युवक हुआ तब चाणक्य की सहायता से पाटलिपुत्र का राजा बना।

चन्द्र पीने के दोहले को पूरा करने की चाणक्य की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(आवश्यक मलयगिरि टीका)

(१३) स्थूलभद्र—पाटलिपुत्र में नन्द नाम का राजा राज्य करता था। इसके मन्त्री का नाम सकडाल था। उसके स्थूलभद्र और सिरियक नाम के दो पुत्र थे। यक्षा, यक्षदत्ता, भूता, भूतदत्ता, सेणा, वेणा और रेणा नाम की सात पुत्रियाँ थीं। उनकी स्मरण शक्ति बहुत तेज थी। यक्षा की स्मरण शक्ति इतनी तेज थी कि जिस बात को वह एक बार सुन लेती वह ज्यों की त्यों उसे याद हो जाती थी। इसी प्रकार यक्षदत्ता को दो बार, भूता को तीन बार, भूतदत्ता को चार बार, सेणा को पाँच बार, वेणा को छः बार और रेणा को सात बार सुनने से याद हो जाती थी।

पाटलिपुत्र में वररुचि नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह बहुत विद्वान् था। प्रतिदिन वह एक सौ आठ नये श्लोक बनाकर राजसभा में लाता और राजा नन्द की स्तुति करता। श्लोकों को सुनकर राजा मन्त्री की तरफ देखता किन्तु मन्त्री इस विषय में कुछ न कहकर चुपचाप बैठा रहता। मन्त्री को मौन बैठा देखकर राजा वररुचि को कुछ भी इनाम न देता। इस प्रकार वररुचि को रोजाना खाली हाथ घर लौटना पड़ता। वररुचि की स्त्री उससे कहती कि तुम कमाकर कुछ भी नहीं लाते, घर का खर्च

किस तरह चलेगा? इस प्रकार स्त्री के बार बार कहने से वररुचि तंग आगया। उसने सोचा—'जब तक सकडाल मन्त्री राजा से कुछ न कहेगा, राजा मुझे इनाम नहीं देगा।' यह सोचकर वह सकडाल के घर गया और सकडाल की स्त्री की बहुत प्रशंसा करने लगा। उसने पूछा—पण्डितराज! आज आपके आने का क्या प्रयोजन है? वररुचि ने उसके आगे सारी बात कह दी। उसने कहा—ठीक है, आज इस विषय में मैं उनसे कह दूंगी। वररुचि वहाँ से चला आया।

शाम को सकडाल की स्त्री ने उससे कहा—स्वामिन्! वररुचि रोजाना एक सौ आठ श्लोक नये बना कर लाता है और राजा की स्तुति करता है। क्या वे श्लोक आपको पसन्द नहीं आते? सकडाल ने कहा—श्लोक पसन्द आते हैं।

उसकी स्त्री ने कहा—तो फिर आप उसकी प्रशंसा क्यों नहीं करते? मन्त्री ने कहा—वह मिथ्यात्वी है। इसलिये मैं उसकी प्रशंसा नहीं करता। स्त्री ने कहा स्वामिन्! आपका कहना ठीक है किन्तु आपके कहने मात्र से ही किसी गरीब का भला हो जाय तो इसमें आपका क्या बिगड़ता है। सकडाल ने कहा—अच्छा, कल देखा जायगा।

दूसरे दिन राजसभा में आकर रोजाना की तरह वररुचि ने एक सौ आठ श्लोकों द्वारा राजा की स्तुति की। राजा ने मन्त्री की तरफ देखा। मन्त्री ने कहा—सुभाषित है। राजा ने वररुचि को एक सौ आठ मोहरें इनाम में दे दीं। वररुचि हर्षित होता हुआ अपने घर चला आया। उसके चले जाने पर सकडाल ने राजा से कहा—आपने वररुचि को मोहरें इनाम क्यों दीं? राजा ने कहा—वह नित्य नये एक सौ आठ श्लोक बना कर लाता है और आज तुमने उसकी प्रशंसा की, इस लिये मैंने उसे इनाम दिया। सकडाल

ने कहा—वह तो लोक में प्रचलित पुराने श्लोक ही सुनाता है। राजा ने कहा—तुम ऐसा कैसे कहते हो ? मन्त्री ने कहा—मैं ठीक कहता हूँ। जो श्लोक वररुचि सुनाता है वे तो मेरी लड़कियों को भी याद हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो कल ही मैं अपनी लड़कियों से वररुचि द्वारा कहे हुए श्लोकों को ज्यों के त्यों कहलवा सकता हूँ। राजा ने मन्त्री की बात मान ली।

दूसरे दिन अपनी लड़कियों को लेकर मन्त्री राजसभा में आया और पर्दे के पीछे उन्हें बिठा दिया। इसके पश्चात् वररुचि राजसभा में आया और उसने एक सौ आठ श्लोक सुनाये। जब वह सुना चुका तो सकडाल की बड़ी लड़की यक्षा उठकर सामने आई और उसने वे सारे श्लोक ज्यों के त्यों सुना दिये क्योंकि वह उन्हें एक बार सुन चुकी थी। इसके बाद क्रमशः दूसरी, तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं लड़की ने भी वे श्लोक सुना दिये। यह देखकर राजा वररुचि पर बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने अपमान पूर्वक वररुचि को राजसभा में से निकलवा दिया।

वररुचि बहुत खिन्न हुआ। उसने सकडाल को अपमानित करने का निश्चय किया। लकड़ी का एक लम्बा पाटिया लेकर वह गंगा किनारे आया। उसने पाटिये का एक हिस्सा जल में रख दिया और दूसरा बाहर रहने दिया। एक थैली में उसने एक सौ आठ मोहरें रखीं और रात्रि में गंगा के किनारे जाकर उस पाटिये के जल निमग्न हिस्से पर उसने उस थैली को रख दिया। प्रातःकाल वह पाटिये के बाहर के हिस्से पर बैठकर गंगा की स्तुति करने लगा। जब स्तुति समाप्त हुई तो उसने पाटिये को दबाया जिससे वह मोहरों की थैली ऊपर आगई। थैली दिखाते हुए उसने लोगों से कहा—राजा मुझे इनाम नहीं देता तो क्या हुआ; मुझे गंगा प्रसन्न होकर इनाम देती है। इसके बाद वह थैली

लेकर घर चला आया। वररुचि के कार्य को देखकर लोग आश्चर्य करने लगे। जब यह बात सकडाल को मालूम हुई तो उसने खोज करके उसके रहस्य को मालूम कर लिया।

लोग वररुचि के कार्य की बहुत तारीफ करने लगे। धीरे धीरे यह बात राजा के पास पहुँची। राजा ने सकडाल से कहा। सकडाल ने कहा—देव! यह सब उसका ढोंग है। वह ढोंग करके लोगों को आश्चर्य में डालता है। आपने लोगों से सुना है। सुनी हुई बात पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। राजा ने कहा—ठीक है। कल प्रातःकाल गंगा के किनारे चलकर हमें सारी घटना अपनी आँखों से देखनी चाहिये। मन्त्री ने राजा की बात को स्वीकार किया।

घर आकर मन्त्री ने अपने एक विश्वस्त नौकर को बुलाकर कहा–जाओ। आज रात भर तुम गंगा किनारे छिपकर बैठे रहो। रात्रि में जब वररुचि आकर मोहरों की थैली पानी में रखकर चला जाये तब तुम वह थैली उठा ले आना। नौकर ने वैसा ही किया। वह गंगा के किनारे छिपकर बैठ गया। आधी रात के समय वररुचि आया और मोहरों की थैली पानी में रखकर चला गया। पीछे से नौकर उठा और पानी में से थैली निकाल कर ले आया। उसने थैली लाकर सकडाल मन्त्री को सौंप दी।

प्रातःकाल वररुचि आया और सदा की तरह पाटिये पर बैठकर गंगा की स्तुति करने लगा। इतने में राजा भी अपने मन्त्री सकडाल को साथ में लेकर गंगा के किनारे आया। जब वररुचि प्रार्थना कर चुका तो उसने पाटिये को दबाया किन्तु थैली बाहर न आई। इतने में सकडाल ने कहा–पण्डितराज! वहाँ क्या देखते हो? आपकी रखी हुई थैली तो यह रही। ऐसा कहकर मन्त्री ने वह थैली सब लोगों को दिखाई और उसका सारा रहस्य प्रकट कर

दिया। मायी, कपटी, धोखेबाज कहकर लोग वररुचि की निन्दा करने लगे। वररुचि बहुत लज्जित हुआ। उसने इसका बदला लेने का निश्चय किया और सकडाल का छिद्रान्वेषण करने लगा।

कुछ समय पश्चात् सकडाल मन्त्री के पुत्र सिरीयक के विवाह की तैयारी होने लगी। वहाँ पर राजा को भेंट करने के लिये बहुत से शस्त्र बनवाये जा रहे थे। वररुचि को इस बात का पता लगा। उसने बदला लेने के लिये यह अवसर ठीक समझा। उसने अपने शिष्यों को निम्नलिखित श्लोक कण्ठस्थ करवा दिया—

तं न विजाणेइ लोओ, जं सकडालो करेसइ।
नन्दराउं मारेवि करि, सिरियउं रज्जे ठवेसइ॥

अर्थात्—सकडाल मन्त्री क्या षड्यन्त्र रच रहा है इस बात का पता लोगों को नहीं है। वह नन्दराजा को मारकर अपने पुत्र सिरीयक को राजा बनाना चाहता है।

शिष्यों को यह श्लोक कण्ठस्थ करवा कर वररुचि ने उनसे कहा कि शहर की प्रत्येक गली में इस श्लोक को बोलते फिरो। उसके शिष्य ऐसा ही करने लगे। एक समय राजा ने यह श्लोक सुन लिया। उसने सोचा, मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं है कि सकडाल मेरे विरुद्ध ऐसा षड्यन्त्र रच रहा है।

दूसरे दिन प्रातःकाल सकडाल मन्त्री ने आकर सदा की भांति राजा को प्रणाम किया। मन्त्री को देखते ही राजा ने मुँह फेर लिया। यह देखकर मन्त्री बहुत भयभीत हुआ। घर आकर उसने सारी बात सिरीयक को कही। उसने कहा—पुत्र! राजकोप बड़ा भयंकर होता है। कुपित हुआ राजा वंश का समूल नाश कर सकता है। इसलिये हे पुत्र! मेरी ऐसी राय है कि कल प्रातःकाल मैं राजा को नमस्कार करने जाऊं और यदि मुझे देखकर राजा मुँह फेर ले तो उसी समय तलवार द्वारा तू मेरी गर्दन उड़ा देना। पुत्र

ने कहा—पिताजी! मैं ऐसा महापापकारी और लोक निन्दनीय कार्य कैसे कर सकता हूं। सकडाल ने कहा—पुत्र! मैं उसी समय अपने मुँह में जहर रख लूंगा। इसलिये मेरी मृत्यु तो जहर के कारण होगी। किन्तु उस समय मेरी गरदन पर तलवार लगाने से तुम पर से राजा का कोप दूर हो जायगा। इस प्रकार अपने वंश की रक्षा हो जायगी। वंश की रक्षा के निमित्त सिरीयक ने अपने पिता की बात मान ली।

दूसरे दिन सिरीयक को साथ लेकर सकडाल मन्त्री राजा को प्रणाम करने के लिये गया। उसे देखते ही राजा ने मुँह फेर लिया। ज्यों ही वह प्रणाम करने के लिये नीचे झुका, त्यों ही सिरीयक ने उसकी गरदन पर तलवार मार दी। यह देख कर राजा ने कहा—हे सिरीयक! तुमने यह क्या कर दिया? सिरीयक ने कहा—देव! जो व्यक्ति आपको इष्ट न हो वह हमें इष्ट कैसे हो सकता है? सिरीयक के उत्तर से राजा का कोप शान्त हो गया। उसने कहा—सिरीयक! अब तुम मन्त्री पद स्वीकार करो। सिरीयक ने कहा—देव! मैं मन्त्री पद नहीं ले सकता हूँ क्योंकि मेरे से एक बड़ा भाई और है, उसका नाम स्थूलभद्र है। बारह वर्ष हो गये वह कोशा नाम की वेश्या के घर रहता है।

सिरीयक की बात सुनकर राजा ने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि तुम कोशा वेश्या के घर जाओ और सम्मान पूर्वक स्थूलभद्र को यहाँ ले आओ, उसे मन्त्री पद दिया जायगा।

राजपुरुष कोशा वेश्या के घर पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने स्थूलभद्र से सारी हकीकत कही। पिता की मृत्यु के समाचार सुनकर स्थूलभद्र को बहुत खेद हुआ। फिर राजपुरुषों ने विनय पूर्वक स्थूलभद्र से प्रार्थना की—हे महाभाग! आप राजसभा में पधारिये, राजा आपको बुलाता है। उनकी बात सुनकर स्थूलभद्र

राजसभा में आया। राजा ने सम्मानपूर्वक उसे आसन पर बिठाया और कहा—तुम्हारे पिता की मृत्यु हो चुकी है इसलिए अब तुम मन्त्रीपद स्वीकार करो। राजा की बात सुनकर स्थूलभद्र विचार करने लगा—जो मन्त्रीपद मेरे पिता की मृत्यु का कारण हुआ वह मेरे लिये श्रेयस्कर कैसे हो सकता है? संसार में माया दुःखों का कारण है, आपत्तियों का घर है। कहा भी है—

मुद्रेयं खलु पारवश्यजननी, सौख्यच्छिदे देहिनां।
नित्यं कर्कशकर्मबन्धनकरी, धर्मान्तरायावहा॥
राजार्थैकपरैव सम्प्रति पुनः, स्वार्थप्रजार्थापहृत्।
तद्ब्रूमः किमतः परं मतिमतां, लोकद्वयापायकृत्॥

अर्थात्—स्वतन्त्रता का अपहरण कर परतन्त्र बनाने वाली, मनुष्यों के सुख को नष्ट करने वाली, कठोर कर्मों का बंध कराने वाली, धर्म कार्यों में अन्तराय करने वाली यह मुद्रा (माया, परिग्रह) मनुष्यों को सुख देने वाली कैसे हो सकती है? धन के लोभी राजा लोग प्रजा को अनेक प्रकार का कष्ट देकर उसका धन हरण कर लेते हैं। विशेष क्या कहा जाय यह माया इस लोक और परलोक दोनों में दुःख देने वाली है।

इस प्रकार गहरा चिन्तन करते हुए स्थूलभद्र को वैराग्य उत्पन्न होगया। वे राजसभा से निकल कर आर्यसम्भूति मुनि के पास आये और दीक्षा अङ्गीकार कर ली।

स्थूलभद्र के दीक्षा ले लेने पर राजा ने सिरीयक को मन्त्री पद पर बिठाया। सिरीयक बड़ी योग्यता और होशियारी के साथ राज्य का कार्य चलाने लगा।

स्थूलभद्र मुनि दीक्षा लेकर ज्ञान ध्यान में रत रहने लगे। ग्रामानुग्राम विहार करते हुए स्थूलभद्र मुनि अपने गुरु के साथ पाटलिपुत्र पधारे। चातुर्मास का समय नजदीक आ जाने से गुरु

ने वहीं पर चातुर्मास कर दिया। तब गुरु के समक्ष आकर चार मुनियों ने अलग अलग चातुर्मास करने की आज्ञा मांगी। एक मुनि ने सिंह की गुफा में, दूसरे ने सर्प के बिल पर, तीसरे ने कुए के किनारे पर, और स्थूलभद्र मुनि ने कोशा वेश्या के घर चातुर्मास करने की आज्ञा मांगी। गुरु ने उन चारों मुनियों को आज्ञा दे दी। सब अपने अपने इष्ट स्थान पर चले गये। जब स्थूलभद्र मुनि कोशा वेश्या के घर गये तो वह बहुत हर्षित हुई। वह सोचने लगी—बहुत समय का बिछुड़ा मेरा प्रेमी वापिस मेरे घर आगया। मुनि ने वहाँ ठहरने के लिये वेश्या की आज्ञा मांगी। उसने मुनि को अपनी चित्रशाला में ठहरने की आज्ञा दे दी। इसके पश्चात् शृङ्गार आदि करके वह बहुत हावभाव कर मुनि को चलित करने की कोशिश करने लगी, किन्तु स्थूलभद्र अब पहले वाले स्थूलभद्र न थे। भोगों को किंपाकफल के समान दुखदायी समझ कर वे उन्हें ठुकरा चुके थे। उनके रग रग में वैराग्य घर कर चुका था। इसलिये काया से चलित होना तो दूर वे मन से भी चलित नहीं हुए। मुनि की निर्विकार मुखमुद्रा को देखकर वेश्या शान्त हो गई। तब मुनि ने उसे हृदयस्पर्शी शब्दों में उपदेश दिया जिससे उसे प्रतिबोध हो गया। भोगों को दुःख की खान समझ उसने भोगों को सर्वथा त्याग दिया और वह श्राविका बन गई।

चातुर्मास समाप्त होने पर सिंहगुफा, सर्पद्वार और कुए पर चातुर्मास करने वाले मुनियों ने आकर गुरु को वन्दना नमस्कार किया। तब गुरु ने 'कृत दुष्कारा:' कहा, अर्थात् हे मुनियों! तुमने दुष्कार कार्य किया। जब स्थूलभद्र मुनि आये तो एकदम गुरु महाराज खड़े हो गये और 'कृत दुष्करदुष्कर:' कहा, अर्थात् हे मुने! तुमने महान् दुष्कर कार्य किया है।

गुरु की बात सुनकर उन तीनों मुनियों को ईर्षाभाव उत्पन्न

हुआ। जब दूसरा चातुर्मास आया तब सिंह की गुफा में चातुर्मास करने वाले मुनि ने कोशा वेश्या के घर चातुर्मास करने की आज्ञा मांगी। गुरु ने आज्ञा नहीं दी फिर भी वह वहाँ चातुर्मास करने के लिये चला गया। वेश्या के रूप लावण्य को देखकर उसका चित्त चलित हो गया। वह वेश्या से प्रार्थना करने लगा। वेश्या ने कहा—मुझे लाख मोहरें दो। मुनि ने कहा—हम तो भिक्षुक हैं। हमारे पास धन कहाँ? वेश्या ने कहा—नैपाल का राजा हर एक साधु को एक रत्नकम्बल देता है। उसका मूल्य एक लाख मोहर है। इसलिये तुम वहाँ जाओ और एक रत्नकम्बल लाकर मुझे दो। वेश्या की बात सुनकर वह मुनि नैपाल गया। वहाँ के राजा से रत्नकम्बल लेकर वापिस लौटा। मार्ग में जंगल के अन्दर उसे कुछ चोर मिले। उन्होंने उसकी रत्नकम्बल छीन ली। वह बहुत निराश हुआ। आखिर वह वापिस नैपाल गया। अपनी सारी हकीकत कहकर उसने राजा से दूसरी कम्बल की याचना की। अब की बार उसने रत्नकम्बल को बांस की लकड़ी में डाल कर छिपा लिया। जंगल में उसे फिर चोर मिले। उसने कहा—मैं तो भिक्षुक हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है। उसके ऐसा कहने से चोर चले गये। मार्ग में भूख प्यास के अनेक कष्टों को सहन करते हुए उस मुनि ने बड़ी सावधानी के साथ रत्नकम्बल को लाकर उस वेश्या को दी। रत्नकम्बल को लेकर वेश्या ने उसे अशुचि में फेंक दिया। जिससे वह खराब हो गई। यह देखकर मुनि ने कहा—तुमने यह क्या किया, इसको यहाँ लाने में मुझे अनेक कष्ट उठाने पड़े हैं। वेश्या ने कहा—मुनि! मैंने यह सब कार्य तुम्हें समझाने के लिये किया है। जिस प्रकार अशुचि में पड़ने से यह रत्नकम्बल खराब हो गई है उसी प्रकार कामभोग रूपी कीचड़ में फंस कर तुम्हारी आत्मा भी मलिन हो जायगी,

पतित हो जायगी। हे मुने! जरा विचार करो। इन विषयभोगों को किंपाकफल के समान दुखदायी समझ कर तुम ने इनको ठुकरा दिया था। अब वमन किये हुए काम भोगों को तुम फिर से स्वीकार करना चाहते हो। वमन किये हुए की वांछा तो कौए और कुत्ते करते हैं। मुने! जरा समझो और अपनी आत्मा को सम्भालो।

वेश्या के मार्मिक उपदेश को सुनकर मुनि की गिरती हुई आत्मा पुनः संयम में स्थिर हो गई। उन्होंने उसी समय अपने पाप कार्य के लिये 'मिच्छामि दुक्कडं' दिया और कहा—

स्थूलभद्रः स्थूलभद्रः, स एकोऽखिलसाधुषु।
युक्तं दुष्करदुष्करकारको गुरुणा जगे॥

अर्थात्—सब साधुओं में एक स्थूलभद्र मुनि ही महान् दुष्कर क्रिया के करने वाले हैं। जिस वेश्या के यहाँ बारह वर्ष रहे उसीकी चित्रशाला में चातुर्मास किया। उसने बहुत हाव भाव पूर्वक भोगों के लिये मुनि से प्रार्थना की किन्तु वे किञ्चित् मात्र भी चलित न हुए ऐसे मुनि के लिये गुरु महाराज ने 'दुष्करदुष्कर' शब्द का प्रयोग किया था, वह युक्त था।

इसके पश्चात् वे मुनि गुरु महाराज के पास चले आये और अपने पाप कर्म की आलोचना कर शुद्ध हुए।

स्थूलभद्र मुनि के विषय में किसी कवि ने कहा है—

गिरौ गुहायां विजने वनान्ते, वासं श्रयन्तो वशिनःसहस्रशः।
हर्म्येऽतिरम्ये युवतीजनान्तिके, वशी स एकः शकटालनन्दनः।
वेश्या रागवती सदा तदनुगा, षड्भी रसैर्भोजनं।
शुभ्रं धाम मनोहरं वपुरहो, नव्यो वयःसङ्गमः॥
कालोऽयं जलदाविलस्तदपि यः कामं जिगायादरात्।
तं वन्दे युवतिप्रबोधकुशलं, श्रीस्थूलभद्रं मुनिम्॥

अर्थात्—पर्वत पर, पर्वत की गुफा में, श्मशान में, वन में रह

कर अपनी आत्मा को वश में रखने वाले तो हजारों मुनि हैं किन्तु सुन्दर स्त्रियों के समीप रमणीय महल के अन्दर रहकर यदि आत्मा को वश में रखने वाला मुनि है तो एक स्थूलभद्र मुनि है।

प्रेम करने वाली तथा उसमें अनुरक्त रहने वाली वेश्या, षट्रस भोजन, मनोहर महल, सुन्दर शरीर, तरुण अवस्था, वर्षा ऋतु का समय, इन सब सुविधाओं के होते हुए भी जिसने कामदेव को जीत लिया ऐसे, वेश्या को प्रबोध देकर धर्म मार्ग में प्रवृत्त करने वाले स्थूलभद्र मुनि को मैं नमस्कार करता हूँ।

राजा नन्द ने स्थूलभद्र को मन्त्रीपद लेने के लिये बहुत कुछ कहा किन्तु भोग भावना को नाश का कारण और संसार के सम्बन्ध को दुःख का हेतु जानकर उन्होंने मन्त्रीपद को ठुकरा दिया और संयम स्वीकार कर आत्म कल्याण में लग गये। यह स्थूलभद्र की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(१४) नासिकपुर का सुन्दरीनन्द–नासिकपुर नाम का एक नगर था। वहाँ नन्द नाम का एक सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम सुन्दरी था। सुन्दरी नाम के अनुसार ही रूप लावण्य से सुन्दरी थी। नन्द का उसके साथ बहुत प्रेम था। वह उसे बहुत वल्लभ एवं प्रिय थी। वह उसमें इतना अनुरक्त था कि वह उससे एक क्षण भर के लिये भी दूर रहना नहीं चाहता था। इसलिए लोग उसे सुन्दरीनन्द कहने लग गये। वह उसी में बहुत आसक्त रहने लगा।

सुन्दरीनन्द के एक छोटे भाई थे। वे मुनि हो गये थे। जब मुनि को यह बात मालूम हुई कि बड़ा भाई सुन्दरी में अत्यन्त आसक्त है तो उसे प्रतिबोध देने के लिये वे नासिकपुर में आये।

वहाँ आकर मुनि उद्यान में ठहर गये। उन्होंने धर्मोपदेश फरमाया। नगर की जनता धर्मोपदेश सुनने के लिये गई किन्तु

सुन्दरीनन्द नहीं गया। धर्मोपदेश के पश्चात् गोचरी के लिये मुनि शहर में पधारे। अनुक्रम से गोचरी करते हुए वे अपने भाई सुन्दरी-नन्द के घर गये। अपने भाई की स्थिति को देखकर मुनि को बड़ा विचार उत्पन्न हुआ। उन्होंने सोचा कि यह सुन्दरी में अत्यन्त आसक्त है। सुन्दरी में इसका उत्कृष्ट राग है। इसलिए जब तक इसको इससे अधिक का प्रलोभन न दिया जायगा तब तक इसका राग कम नहीं हो सकता। ऐसा सोचकर उन्होंने वैक्रिय लब्धि द्वारा एक सुन्दर वानरी बनाई और भाई से पूछा—क्या यह सुन्दरी सरीखी सुन्दर है ? उसने कहा—यह सुन्दरी से आधी सुन्दर है। फिर एक विद्याधरी बनाकर मुनि ने पहले की तरह भाई से पूछा। उत्तर में सुन्दरीनन्द ने कहा—यह सुन्दरी सरीखी सुन्दर है। इसके बाद मुनि ने एक देवी बनाई और पूछा—यह कैसी है ? उसे देखकर भाई ने कहा—यह तो सुन्दरी से भी सुन्दर है। मुनि ने कहा—थोड़ा सा धर्म का आचरण करने से तुम भी ऐसी अनेक देवियाँ प्राप्त कर सकते हो।

इस प्रकार मुनि के प्रबोध से सुन्दरीनन्द का सुन्दरी में राग कम हो गया। कुछ समय पश्चात् उसने दीक्षा ले ली।

अपने भाई को प्रतिबोध देने के लिये मुनि ने जो कार्य किया वह उनकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

(आवश्यक मलयगिरि टीका)

(१५) वज्रस्वामी—अवन्ती देश में तुम्बवन नाम का सन्निवेश था। वहाँ एक इभ्य (धनवान्) सेठ रहता था। उसके पुत्र का नाम धनगिरि था। उसका विवाह धनपाल सेठ की पुत्री सुनन्दा के साथ हुआ। विवाह के कुछ ही दिनों पश्चात् धनगिरि दीक्षा लेने के-लिये तय्यार हुआ किन्तु उस समय उसकी स्त्री ने उसे रोक दिया।

कुछ समय पश्चात् देवों में से चवकर एक पुण्यवान् जीव

सुनन्दा की कुक्षि में आया। धनगिरि ने सुनन्दा से कहा—यह भावी पुत्र तुम्हारे लिये आधार होगा, अब मुझे दीक्षा की आज्ञा दे दो। धनगिरि को उत्कृष्ट वैराग्य हुआ जानकर सुनन्दा ने उसे आज्ञा दे दी। दीक्षा के लिये आज्ञा हो जाने पर धनगिरि ने सिंहगिरि नामक आचार्य के पास दीक्षा ले ली। सुनन्दा के भाई आर्यसमित ने भी इन्हीं आचार्य के पास पहले दीक्षा ले रखी थी।

नौ मास पूर्ण होने पर सुनन्दा की कुक्षि से एक महान् पुण्यशाली पुत्र का जन्म हुआ। जब उसका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था उस समय किसी स्त्री ने कहा—'यदि इस बालक के पिता ने दीक्षा न ली होती तो अच्छा होता।' बालक बहुत बुद्धिमान् था। स्त्री के उपरोक्त वचनों को सुनकर वह विचारने लगा कि मेरे पिता ने दीक्षा ले ली है, अब मुझे क्या करना चाहिए ? इस विषय पर चिन्तन करते हुए बालक को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने विचार किया कि ऐसा कोई उपाय करना चाहिये जिससे मैं इन सांसारिक बन्धनों से छूट जाऊं तथा माता को भी वैराग्य उत्पन्न हो और वह भी इन बन्धनों से छूट जाय। ऐसा सोचकर उसने रात दिन रोना शुरू किया। अनेक प्रकार के खिलौने देकर माता उसे शान्त करने का प्रयत्न करती थी किन्तु बालक ने रोना बंद नहीं किया। इससे माता खिन्न होने लगी।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आचार्य सिंहगिरि पुनः तुम्बवन में पधारे। गुरु की आज्ञा लेकर धनगिरि और आर्यसमित भिक्षा के लिये शहर में जाने लगे। उस समय होने वाले शुभ शकुन को देखकर गुरु ने उनसे कहा—आज तुम्हें कोई महान् लाभ होने वाला है इसलिये सचित्त या अचित्त जो भी भिक्षा मिले उसे ले आना। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके वे मुनि शहर में गये।

सुनन्दा उस समय अपनी सखियों के साथ बैठी हुई थी और

रोते हुए बालक को शान्त करने का प्रयत्न कर रही थी। उसी समय वे मुनि उधर से निकले। उन्हें देखकर सुनन्दा ने धनगिरि मुनि से कहा—इतने दिन इस बालक की रक्षा मैंने की, अब इसे आप ले जाइये और इसकी रक्षा कीजिये। यह सुनकर धनगिरि उसके सामने अपना पात्र खोलकर खड़े रहे। सुनन्दा ने उस बालक को उनके पात्र में रख दिया। श्रावक और श्राविकाओं की साक्षी से मुनि ने उस बालक को ग्रहण कर लिया। उसी समय बालक ने रोना बन्द कर दिया। उसे लेकर वे गुरु के पास आये। आते हुए उन्हें गुरु ने दूर से देखा। उनकी झोली को अति भारयुक्त देखकर गुरु ने दूर से ही कहा—यह वज्र सरीखा भारी पदार्थ क्या ले आये हो? नजदीक आकर मुनि ने अपनी झोली खोलकर गुरु को दिखलाई। अत्यन्त तेजस्वी और प्रतिभाशाली बालक को देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और कहा—यह बालक शासन के लिये आधारभूत होगा। उसका नाम वज्र रखा गया।

इसके पश्चात् वह बालक संघ को सौंप दिया गया। मुनि वहाँ से विहार कर अन्यत्र विचरने लगे। अब बालक सुखपूर्वक बढ़ने लगा। कुछ दिनों पश्चात् उसकी माता सुनन्दा अपना पुत्र वापिस लेने के लिये आई। किन्तु 'यह दूसरों की धरोहर है' ऐसा कहकर संघ ने उस बालक को देने से इन्कार कर दिया।

एक समय आचार्य सिंहगिरि धनगिरि आदि साधु समुदाय के साथ वहाँ पधारे। यह सुनकर सुनन्दा उनके पास आकर अपना पुत्र माँगने लगी। जब साधुओं ने उसे देने से इन्कार कर दिया तो सुनन्दा ने राजा के पास जाकर पुकार की। राजा ने कहा—एक तरफ बालक की माता बैठ जाय और दूसरी तरफ उसका पिता; बुलाने पर बालक जिसके पास चला जायगा, वह उसीका होगा।

दूसरे दिन सब एक जगह एकत्रित हुए। एक तरफ बहुत

से नगर-निवासियों के साथ बालक की माता सुनन्दा बैठी हुई थी। उसके पास बहुत से खाने के पदार्थ और खिलौने आदि थे। दूसरी तरफ संघ के साथ आचार्य तथा धनगिरि आदि साधु बैठे हुए थे। राजा ने कहा—पहले बालक का पिता इसे अपनी तरफ बुलावे। उसी समय नगर निवासियों ने कहा—देव! बालक की माता दया करने योग्य है, इसलिये पहले इसे बुलाने की आज्ञा दीजिये। उन लोगों की बात को स्वीकार कर राजा ने पहले माता को आज्ञा दी। इस पर माता ने बहुत सी खाने की चीजें और खिलौने आदि दिखाकर बालक को अपनी तरफ बुलाने की बहुत कोशिश की।

बालक ने सोचा—यदि मैं दृढ़ रहा तो माता का मोह दूर हो जायगा। वह भी व्रत अङ्गीकार कर लेगी, जिससे दोनों का कल्याण होगा। ऐसा सोचकर बालक अपने स्थान से जरा भी नहीं हिला। इसके पश्चात् राजा ने उसके पिता से बालक को अपनी तरफ बुलाने के लिये कहा। पिता ने कहा—

जइसि कयज्झवसाओ, धम्मज्झयमूसिअं इमं वइर।
गिराह लहुं रयहरणं, कम्मरयपमज्जणं धीर॥

अर्थात्—हे वज्र! यदि तुमने निश्चय कर लिया है तो धर्माचरण के चिह्नभूत तथा कर्मरज को पूंजने वाले इस रजोहरण को स्वीकार करो।

उपरोक्त वचन सुनते ही बालक मुनियों की तरफ गया और उसने रजोहरण उठा लिया। राजा ने बालक साधुओं को सौंप दिया। राजा और संघ की अनुमति से गुरु ने उसी समय उसे दीक्षा दे दी।

मेरे भाई, पति और पुत्र सभी ने दीक्षा ले ली है अब मुझे किसी से क्या मतलब है? यह सोचकर सुनन्दा ने भी दीक्षा ले ली।

कुछ साधुओं के साथ बाल मुनि को वहीं छोड़कर आचार्य

दूसरी जगह विहार कर गये। कुछ समय के पश्चात् वज्रमुनि भी आचार्य के पास आये और उनके साथ विहार करने लगे। दूसरे मुनियों को अध्ययन करते हुए सुनकर वज्र मुनि को ग्यारह अङ्गों का ज्ञान स्थिर हो गया। इसी प्रकार सुनकर ही उन्होंने पूर्वों का बहुत सा ज्ञान भी प्राप्त कर लिया।

एक समय आचार्य शौच निवृत्ति के लिये बाहर गये हुए थे और दूसरे साधु गोचरी के लिये गये हुए थे। पीछे वज्रमुनि उपाश्रय में अकेले थे। उन्होंने साधुओं के उपकरणों को (पातरे, चादर आदि को) एक जगह इकट्ठे किये और उन्हें पंक्ति रूप में स्थापित कर आप स्वयं उनके बीच में बैठ गये। उपकरणों में शिष्यों की कल्पना करके सूत्रों की वाचना देने लगे। इतने में आचार्य लौटकर आ गये उपाश्रय में से आने वाली आवाज उन्हें दूर से सुनाई पड़ी। आचार्य विचारने लगे---क्या शिष्य इतने जल्दी वापिस लौट आये हैं? कुछ नजदीक आने पर उन्हें वज्रमुनि की आवाज सुनाई पड़ी। आचार्य कुछ पीछे हटकर थोड़ी देर खड़े रह कर वज्रमुनि का वाचना देने का ढंग देखने लगे। उनका ढंग देखकर आचार्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके पश्चात् वज्रमुनि को सावधान करने के लिये उन्होंने ऊंचे स्वर से नैषेधिकी का उच्चारण किया। वज्रमुनि ने तत्काल उन उपकरणों को यथा-स्थान रख दिया और उठकर विनयपूर्वक गुरु के पैरों को पोंछा।

वज्रमुनि श्रुतधर हैं किन्तु इसे छोटा समझकर दूसरे इसकी अवज्ञा न कर दें ऐसा सोचकर आचार्य ने पांच छः दिनों के लिये दूसरी जगह विहार कर दिया। साधुओं को वाचना देने का कार्य वज्रमुनि को सौंपा गया। सभी साधु भक्ति पूर्वक वज्रमुनि से वाचना लेने लगे।

वज्रमुनि शास्त्रों का सूक्ष्म रहस्य भी इस प्रकार समझाने लगे।

कि मन्दबुद्धि शिष्य भी बड़ी आसानी के साथ उन तत्त्वों को समझ लेते। पहले पढ़े हुए श्रुतज्ञान में से भी साधुओं ने बहुत सी शंकाएं कीं, उनका खुलासा भी वज्रमुनि ने अच्छी तरह से कर दिया। साधु वज्रमुनि को बहुत मानने लगे। कुछ समय के पश्चात् आचार्य वापिस लौट आये। उन्होंने साधुओं से वाचना के विषय में पूछा। उन्होंने कहा—हमारा वाचना का कार्य बहुत अच्छा चल रहा है। कृपा कर अब सदा के लिये हमारी वाचना का कार्य वज्रमुनि को सौंप दीजिये। गुरु ने कहा—तुम्हारा कहना ठीक है। वज्रमुनि के प्रति तुम्हारा विनय और सद्भाव अच्छा है। तुम लोगों को वज्रमुनि का माहात्म्य बतलाने के लिये मैंने वाचना देने का कार्य वज्रमुनि को सौंपा था। वज्रमुनि ने यह सारा ज्ञान सुनकर ही प्राप्त किया है किन्तु गुरुमुख से ग्रहण नहीं किया है। गुरुमुख से ज्ञान ग्रहण किये बिना कोई वाचना गुरु नहीं हो सकता। इसके बाद गुरु ने अपना सारा ज्ञान वज्रमुनि को सिखा दिया।

एक समय विहार करते हुए आचार्य दशपुर नगर में पधारे। उस समय अवन्ती नगरी में भद्रगुप्त आचार्य वृद्धावस्था के कारण स्थिरवास रह रहे थे। आचार्य ने दो साधुओं के साथ वज्रमुनि को उनके पास भेजा। उनके पास रहकर वज्रमुनि ने विनयपूर्वक दस पूर्व का ज्ञान पढ़ा। आचार्य सिंहगिरि ने अपने पाट पर वज्रमुनि को बिठाया। इसके पश्चात् आचार्य अनशन कर स्वर्ग सिधार गये।

ग्रामानुग्राम विहार कर धर्मोपदेश द्वारा वज्रमुनि जनता का कल्याण करने लगे। अनेक भव्यात्माओं ने उनके पास दीक्षा ली। सुन्दर रूप, शास्त्रों का ज्ञान तथा विविध लब्धियों के कारण वज्रमुनि का प्रभाव दूर दूर तक फैल गया।

बहुत समय तक संयम पालकर वज्रमुनि देवलोक में पधारे। वज्रमुनि का जन्म विक्रम संवत् २६ में हुआ था और स्वर्गवास

विक्रम संवत् ११४ में हुआ था। वज्रमुनि की आयु ८८ वर्ष की थी।

वज्रस्वामी ने बचपन में भी माता के प्रेम की उपेक्षा कर संघ का बहुमान किया अर्थात् माता द्वारा दिये जाने वाले खिलौने आदि न लेकर संयम के चिन्ह भूत रजोहरण को लिया। ऐसा करने से माता का मोह भी दूर हो गया जिससे उसने दीक्षा ली और आपने भी दीक्षा लेकर शासन के प्रभाव को दूर दूर तक फैलाया यह उनकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

(आवश्यक कथा)

(१६) चरणाहत—एक राजा था। वह तरुण था। एक समय कुछ तरुण सेवकों ने मिलकर राजा से निवेदन किया—देव! आप नवयुवक हैं। इसलिए आपको चाहिये कि नवयुवकों को ही आप अपनी सेवा में रखें। वे आपके सभी कार्य बड़ी योग्यता पूर्वक सम्पादित करेंगे। बूढ़े आदमियों के केश पककर सफेद हो जाते हैं, उनका शरीर जीर्ण हो जाता है। वे लोग आपकी सेवा में रहते हुए शोभा नहीं देते।

नवयुवकों की बात सुनकर उनकी बुद्धि की परीक्षा करने के लिये राजा ने उनसे पूछा—यदि कोई मेरे सिर पर पांव का प्रहार करे तो उसे क्या दण्ड देना चाहिये? नवयुवकों ने कहा—महाराज! तिल जितने छोटे छोटे टुकड़े करके उसको मरवा देना चाहिये। राजा ने यही प्रश्न वृद्ध पुरुषों से किया।

वृद्ध पुरुषों ने कहा—स्वामिन्! हम विचार कर जवाब देंगे। फिर वे सभी एक जगह इकट्ठे हुए और विचार करने लगे—सिवाय रानी के दूसरा कौन पुरुष राजा के सिर पर पांव का प्रहार कर सकता है। रानी तो विशेष सन्मान करने के लायक होती है। इस प्रकार सोचकर वृद्ध पुरुष राजा की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने कहा स्वामिन्! उसका विशेष सत्कार

करना चाहिये। उनका जवाब सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और सदा वृद्ध पुरुषों को ही अपने पास रखने लगा प्रत्येक विषय में उनकी सलाह लेकर कार्य किया करता था इसलिये थोड़े ही दिनों में उसका यश चारों तरफ फैल गया।

यह राजा और वृद्ध पुरुषों की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(नन्दी सूत्र टीका)

(१७) आमंडे (आंवला)—किसी कुम्हार ने एक आदमी को एक बनावटी आंवला दिया। वह रंग, रूप और आकार में बिलकुल आंवले सरीखा था। उसे लेकर उस आदमी ने सोचा—यह रंग, रूप में तो आंवले सरीखा दिखता है किन्तु इसका स्पर्श कठोर मालूम होता है तथा यह आंवले फलने की ऋतु भी नहीं है। ऐसा सोचकर उस आदमी ने यह समझ लिया कि यह आंवला असली नहीं किन्तु बनावटी है।

यह उस पुरुष की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(आव. ह. ग. ९५१) (नन्दी सूत्र टीका)

(१८) मणि—एक जंगल में एक सर्प रहता था। उसके मस्तक पर मणि थी। वह रात्रि में वृक्षों पर चढ़कर पक्षियों के बच्चों को खाया करता था। एक दिन वह अपने भारी शरीर को न सम्भाल सका और वृक्ष से नीचे गिर पड़ा। उसके मस्तक की मणि वहीं पर रह गई। वृक्ष के नीचे एक कुआ था। मणि की प्रभा के कारण उसका सारा जल लाल दिखाई देने लगा। प्रातःकाल कुए के पास खेलते हुए किसी बालक ने यह आश्चर्य की बात देखी। वह दौड़ा हुआ अपने वृद्ध पिता के पास आया और उससे सारी बात कही। बालक की बात सुनकर वृद्ध कुए के पास आया। उसने अच्छी तरह देखा और कारण का पता लगा कर मणि को प्राप्त कर लिया।

यह वृद्ध पुरुष की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(नन्दी सूत्र टीका)

(१६) सर्प (चण्डकौशिक)—दीक्षा लेकर भगवान् महावीर ने पहला चातुर्मास अस्थिक ग्राम में किया। चातुर्मास की समाप्ति के बाद विहार कर भगवान् श्वेताम्बिका नगरी की तरफ पधारने लगे। थोड़ी दूर जाने पर कुछ ग्वाल बालकों ने भगवान् से प्रार्थना की—भगवन्! श्वेताम्बिका जाने के लिए यह मार्ग नजदीक का एवं सीधा है किन्तु बीच में एक दृष्टिविष सर्प रहता है इसलिए आप दूसरे मार्ग से श्वेताम्बिका पधारिये। बालकों की प्रार्थना सुनकर भगवान् ने विचार किया—'वह सर्प बोध पाने योग्य है' ऐसा सोचकर भगवान् उसी मार्ग से पधारने लगे। चलते चलते भगवान् उस सर्प के बिल के पास पहुँचे। वहाँ जाकर बिल के पास ही कायोत्सर्ग कर वे खड़े हो गये। थोड़ी देर बाद वह सर्प बिल से बाहर निकला। अपने बिल के पास ध्यानस्थ भगवान् को देखकर उसने सोचा 'यह कौन व्यक्ति है जो यहाँ आकर खड़ा है। इसे मेरा जरा भी भय नहीं है।' ऐसा सोचकर उसने अपनी विष भरी दृष्टि भगवान् पर डाली किन्तु इससे भगवान् का कुछ नहीं बिगड़ा। अपने प्रयत्न को निष्फल देखकर सर्प का क्रोध बहुत बढ़ गया। एक बार सूर्य की तरफ देखकर उसने फिर भगवान् पर विष भरी दृष्टि फेंकी किन्तु इससे भी उसे सफलता न मिली। तब कुपित होकर वह भगवान् के समीप आया और उसने भगवान् के अंगूठे को अपने दांतों से डस लिया। इतना होने पर भी भगवान् अपने ध्यान से चलित न हुए। भगवान् के अंगूठे के रक्त का स्वाद चण्डकौशिक को विलक्षण लगा। रक्त का विशिष्ट आस्वाद देख वह सोचने लगा—यह कोई सामान्य पुरुष नहीं है। कोई अलौकिक पुरुष मालूम होता

है। ऐसा विचार करते हुए उसका क्रोध शान्त हो गया। वह शान्त दृष्टि से भगवान् के सौम्य मुख की ओर देखने लगा।

उपदेश के लिये यह समय उपयुक्त समझ कर भगवान् ने फरमाया—हे चण्डकौशिक! प्रतिबोध को प्राप्त करो, अपने पूर्वभव को याद करो।

हे चण्डकौशिक! तुमने पूर्वभव में दीक्षा ली थी। तुम एक तपस्वी साधु थे। पारणे के दिन गोचरी लेकर वापिस लौटते हुए तुम्हारे पैर के नीचे दबकर एक मेंढक मर गया। उसी समय तुम्हारे एक शिष्य ने उस पाप की आलोचना करने के लिये तुम्हें कहा किन्तु तुमने उसके कथन पर कोई ध्यान नहीं दिया। 'गुरु महाराज महान् तपस्वी हैं। अभी नहीं तो शाम को आलोचना कर लेंगे' ऐसा सोचकर शिष्य मौन रहा।

शाम को प्रतिक्रमण करके तुम बैठ गये, पर तुमने उस पाप की आलोचना नहीं की। 'संभव है गुरु महाराज आलोचना करना भूल गये हों' ऐसा सोचकर तुम्हारे शिष्य ने सरल बुद्धि से तुम्हें फिर वह पाप याद दिलाया। शिष्य के वचन सुनते ही तुम्हें क्रोध आगया। क्रोध करके तुम शिष्य को मारने के लिये उसकी तरफ दौड़े। बीच में स्तम्भ से तुम्हारा सिर टकरा गया जिससे तुम्हारी मृत्यु हो गई।

हे चण्डकौशिक! तुम वही हो। क्रोध में मृत्यु होने से तुम्हें यह योनि प्राप्त हुई है। अब फिर क्रोध करके तुम अपने जन्म को क्यों बिगाड़ रहे हो। समझो! समझो!! प्रतिबोध को प्राप्त करो!!!

भगवान् के उपरोक्त वचनों को सुनकर ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से उसी समय चण्डकौशिक को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। वह अपने पूर्वभव को देखने लगा। भगवान् को पहचान कर उसने विनय पूर्वक वन्दना नमस्कार किया और

वह अपने अपराध के लिये बारबार पश्चात्ताप करने लगा।

जिस क्रोध के कारण सर्प की योनि प्राप्त हुई उस क्रोध पर विजय प्राप्त करने के लिये और इस दृष्टि से फिर कहीं किसी प्राणी को कष्ट न हो, इसलिए चण्डकौशिक ने भगवान् के समक्ष ही अनशन कर लिया। उसने अपना मुँह बिल में डाल दिया और शरीर को बिल के बाहर ही रहने दिया। जब ग्वालों के लड़कों ने भगवान् को सकुशल देखा तो वे भी वहाँ आये। सर्प की यह अवस्था देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। वे पत्थर और ढेले मार कर तथा लकड़ी आदि से सांप को छेड़ने लगे किन्तु सर्प ने उसे समभाव से सहन किया तथा निश्चल रहा। तब उन लड़कों ने जाकर लोगों से यह बात कही। बहुत से स्त्री पुरुष आकर सर्प को देखने लगे। बहुत सी ग्वालिनें घी दूध आदि से उसकी पूजा करने लगीं। उन की सुगन्ध के कारण सर्प के शरीर में चींटियाँ लग गईं। चींटियों ने काट काट कर सर्प के शरीर को चलनी बना दिया। इस असह्य वेदना को भी सर्प समभाव पूर्वक सहन करता रहा और विचारता रहा कि मेरे पापों की तुलना में यह कष्ट तो कुछ नहीं है। मेरे भारी शरीर से दबकर कोई चींटी न मर जाय ऐसा सोचकर उसने अपने शरीर को किञ्चिन्मात्र भी नहीं हिलाया। सब कष्टों को समभाव पूर्वक सहन करता हुआ शान्त चित्त बना रहा। पन्द्रह दिन का अनशन कर, इस शरीर को छोड़कर वह आठवें सहस्रार देवलोक में महर्द्धिक देव हुआ।

भगवान् महावीर का विशिष्ट एवं अलौकिक रक्त का आस्वाद पाकर चण्डकौशिक ने विचार किया एवं ज्ञान प्राप्त कर अपना जन्म सुधार लिया। यह चण्डकौशिक की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र १० पर्व)

(२०) खड्ग (गेंडा, एक जंगली पशु विशेष)—एक श्रावक था।

युवावस्था में ही उसकी मृत्यु हो गई। मरण के समय उसने अपने व्रतों की आलोचना नहीं की जिससे वह जंगल में खड्ग (गेंडा, एक जंगली हिंसक जानवर जिसके चलते समय दोनों तरफ चमड़ा लटकता रहता है) हो गया। वह बहुत पापी एवं क्रूर था। उस जंगल में आने वाले मनुष्य को खा जाता था।

एक समय उस जंगल में होकर कुछ साधु आ रहे थे। उन्हें देखकर उसने उन पर आक्रमण करना चाहा किन्तु वह अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो सका। मुनियों के शान्त चेहरे को देख कर उसका क्रोध भी शान्त हो गया। इस पर विचार करते करते उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसने अपना पूर्वभव को जाना। इस भव को सुधारने के लिये उसने उसी समय अनशन कर लिया। आयुष्य पूरी कर वह देवलोक में गया।

यह उसकी पारिणामिकी बुद्धि थी।

(नन्दी सूत्र २७ टीका गा. ७४)

(२१) स्तूप—राजगृह नगर में श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसके चेलना, नन्दा आदि रानियाँ थीं। उसके नन्दा रानी से अभयकुमार नाम का पुत्र था। वह राजनीति में बड़ा चतुर था। इसलिये राजा ने उसे अपना प्रधान मन्त्री बना रखा था।

एक समय चेलना रानी ने एक सिंह का स्वप्न देखा। उसने अपना स्वप्न राजा को सुनाया। राजा ने कहा—प्रिये! तुम्हारी कुक्षि से एक राज्य धुरन्धर, सिंह के समान पराक्रमी पुत्र का जन्म होगा। यह सुनकर रानी बहुत हर्षित हुई और सुखपूर्वक अपने गर्भ का पालन करने लगी। जब गर्भ के तीन महीने पूर्ण हुए तब गर्भस्थ बालक के प्रभाव से रानी को राजा के कलेजे का मांस खाने का दोहला उत्पन्न हुआ। अभयकुमार ने अपनी बुद्धिमत्ता से उस दोहले को पूर्ण किया। गर्भ में किसी पापी जीव को

आया हुआ जानकर रानी ने उसको गिराने के लिये बहुत प्रयत्न किये किन्तु गर्भ न गिरा।

गर्भ समय पूरा होने पर रानी की कुक्षि से एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ। रानी ने विचार किया-गर्भस्थ भी इस बालक ने अपने पिता के कलेजे का मांस खाने की इच्छा की तो न जाने बड़ा होने पर यह क्या करेगा। ऐसा सोचकर रानी ने एक दासी को बुलाकर कहा—इस बालक को ले जाओ और किसी एकान्त स्थान में उकरड़ी पर डाल आओ। रानी के आदेशानुसार दासी ने उस बालक को अशोकवाटिका में ले जाकर उकरड़ी पर डाल दिया। जब यह बात श्रेणिक राजा को मालूम हुई तब वह स्वयं अशोकवाटिका में गया। बालक को उकरड़ी पर पड़ा हुआ देख कर वह बहुत कुपित हुआ। बालक को उठाकर वह चेलना रानी के पास आया और ऊँच नीच शब्दों में उसे उलाहना देते हुए कहा—तुमने इस बालक को उकरड़ी पर क्यों डलवा दिया? लो, अब इसका अच्छी तरह पालण पोषण करो।

श्रेणिक राजा के उपरोक्त कथन को सुनकर रानी बहुत लज्जित हुई। उसने राजा के कथन को स्वीकार किया और उस बालक का पालण पोषण करने लगी।

उकरड़ी पर उस बालक की अंगुली को किसी कूकड़े ने काट लिया था। अंगुली से खून और पीव निकलता था। उसकी वेदना से वह बालक बहुत जोर से रोता था। बालक का रुदन सुनकर राजा बालक के पास आता और उसकी अंगुली को अपने मुँह में लेकर खून और पीव को चूस कर बाहर डाल देता था। इससे बालक को शान्ति मिलती थी और वह रोना बन्द कर देता था। इस प्रकार जब जब बालक इस वेदना से रोता था तब तब राजा श्रेणिक इसी प्रकार उसे शान्त किया करता। था तीसरे दिन बालक

को चन्द्र सूर्य के दर्शन कराये और बारहवें दिन उसका गुण-निष्पन्न कोणिक नाम रखा। सुख पूर्वक बढ़ता हुआ बालक क्रमशः यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ। आठ सुन्दर राजकन्याओं के साथ उसका विवाह किया गया।

एक समय कोणिक ने अपनी सौतेली माता के जन्मे हुए काल सुकाल आदि दस भाइयों को बुलाया और कहा — राजा श्रेणिक अब बूढ़ा हो गया है फिर भी राज्य करने की लिप्सा ज्यों की त्यों बनी हुई है। वह अब भी राज्यलक्ष्मी हमें नहीं सौंपता, इसलिये हमारे लिये यही उचित है कि राजा श्रेणिक को पकड़ कर बन्धन में डाल दें और हम लोग राज्य के ग्यारह विभाग कर आनन्द पूर्वक राज्य करें। कोणिक की बात सब भाइयों ने स्वीकार की।

एक समय मौका देखकर कोणिक ने राजा श्रेणिक को पकड़ कर बन्धन में डलवा दिया और उसके बाद उसने स्वयं अपना राज्याभिषेक करवाया। राजा बनकर वह माता को प्रणाम करने के लिये आया। माता को उदास एवं चिन्ताग्रस्त देखकर उसने कहा—मातेश्वरी! आज तुम्हारा पुत्र राजा बना है। तुम राजमाता बनी हो। आज तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए किन्तु तुम तो उदास प्रतीत हो रही हो। इसका क्या कारण है? माता ने कहा—पुत्र! तुमने अपने पूज्य पिता को बन्धन में डाल रखा है। वे तुम से बहुत प्रेम करते हैं। बचपन में उन्होंने किस तरह तुम्हारी रक्षा की थी? इन सब बातों को तुम भूल गये हो। ऐसा कहकर माता ने उसे जन्म के समय की सारी घटना कह सुनाई।

माता के कथन को सुनकर कोणिक कहने लगा—माता! वास्तव में मैंने बड़ा दुष्ट कार्य किया है। राजा श्रेणिक मेरे लिये देव गुरु के समान पूजनीय हैं। अतः अभी जाकर मैं उनके बन्धन काट देता हूँ। ऐसा कह कर हाथ में फरसा (कुल्हाड़ी) लेकर वह

राजा श्रेणिक की तरफ आने लगा। राजा श्रेणिक ने कोणिक को आते हुए देखा। उसके हाथ में फरसा देखकर श्रेणिक ने विचार किया—न जाने यह मुझे किस कुमृत्यु से मारे, अच्छा हो कि मैं स्वयं मर जाऊं। यह सोचकर उसने तालपुट विष खा लिया जिससे उसकी तत्क्षण मृत्यु हो गई।

नजदीक आने पर कोणिक को मालूम हुआ कि विष खाने से राजा श्रेणिक की मृत्यु हो गई है। वह तत्क्षण मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। कुछ समय पश्चात् उसे चेत हुआ। वह बार बार पश्चाताप करता हुआ कहने लगा—'मैं अधन्य हूं, मैं अकृत पुण्य हूं, मैं महादुष्ट कर्म करने वाला हूं। मेरे ही कारण से राजा श्रेणिक की मृत्यु हुई है'। इसके पश्चात् उसने श्रेणिक का दाह संस्कार किया।

कुछ समय बाद कोणिक चिन्ता, शोक रहित हुआ। वह राजगृह को छोड़कर चम्पा नगरी में चला गया और उसी को अपनी राजधानी बनाकर वहीं रहने लगा। उसने काल सुकाल आदि दस ही भाइयों को उनके हिस्से का राज्य बाँट कर दे दिया।

श्रेणिक राजा के छोटे पुत्र का नाम विहल्लकुमार था। श्रेणिक राजा ने अपने जीवन काल में ही उसे एक सेचानक गन्धहस्ती और अठारह सरा वंकचूड़ हार दे दिया था। विहल्लकुमार अन्तःपुर सहित हाथी पर सवार होकर गंगा नदी के किनारे जाता और वहाँ अनेक प्रकार की क्रिड़ाएं करता। हाथी उसकी रानियों को अपनी सूँड में उठाता, पीठ पर बिठाता तथा और भी क्रीड़ाओं द्वारा उनका मनोरंजन करता हुआ उन्हें गंगा में स्नान करवाता। इस प्रकार उसकी क्रीड़ाओं को देखकर लोग कहने लगे कि राज्यश्री का उपभोग तो वास्तव में विहल्लकुमार करता है। जब यह बात कोणिक की रानी पद्मावती ने सुनी तो उसके हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। वह

सोचने लगी—यदि हमारे पास सेचानक गन्धहस्ती नहीं है तो यह राज्य हमारे किस काम का ? इसलिये विहल्लकुमार से सेचानक गन्धहस्ती अपने यहाँ मंगा लेने के लिये मैं राजा कोणिक से प्रार्थना करूँगी। तदनुसार उसने अपनी इच्छा राजा कोणिक के सामने प्रकट की। रानी की बात सुनकर पहले तो राजा ने उसकी बात को टाल दिया। किन्तु उसके बार बार कहने पर राजा के हृदय में भी यह बात जंच गई। उसने विहल्लकुमार से हार और हाथी मांगे। विहल्लकुमार ने कहा यदि आप हार और हाथी लेना चाहते हैं तो मेरे हिस्से का राज्य मुझे दे दीजिये। विहल्लकुमार की न्यायसंगत बात पर कोणिक ने कोई ध्यान नहीं दिया। उसने हार और हाथी जबरदस्ती छीन लेने का विचार किया। इस बात का पता जब विहल्लकुमार को लगा तो हार और हाथी को लेकर अन्तःपुर सहित वह विशाला नगरी में अपने नाना चेड़ा राजा की शरण में चला गया। तत्पश्चात् राजा कोणिक ने अपने नाना चेड़ा राजा के पास यह संदेश देकर एक दूत भेजा कि विहल्लकुमार मुझे बिना पूछे बंकचूड़ हार और सेचानक गन्धहस्ती लेकर आपके पास चला आया है इसलिये उसे मेरे पास शीघ्र वापिस भेज दीजिये।

विशाला नगरी में जाकर दूत चेड़ा राजा की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने राजा कोणिक का संदेश कह सुनाया। चेड़ा राजा ने कहा—तुम कोणिक से कहना कि जिस प्रकार तुम श्रेणिक के पुत्र चेलना के अंगजात मेरे दोहिते हो उसी प्रकार विहल्लकुमार भी श्रेणिक का पुत्र चेलना का अंगजात मेरा दोहिता है। श्रेणिक राजा जब जीवित थे तब उन्होंने यह हार और हाथी विहल्लकुमार को दिये थे। यदि अब तुम उन्हें लेना चाहते हो तो विहल्लकुमार को राज्य का आधा हिस्सा दे दो।

दूत ने यह बात जाकर कोणिक राजा को कही। इसे सुनते ही कोणिक राजा अतिकुपित हुआ। उसने कहा—राज्य में उत्पन्न हुई सब श्रेष्ठ वस्तुओं का स्वामी राजा होता है। हार और हाथी भी मेरे राज्य में उत्पन्न हुए हैं इसलिये उन पर मेरा अधिकार है। वे मेरे ही भोग में आने चाहिये। ऐसा सोचकर उसने चेड़ा राजा के पास दूसरा दूत भेजकर कहलवाया—या तो आप हार हाथी सहित विहल्लकुमार को मेरे पास भेज दीजिये अन्यथा युद्ध के लिये तय्यार हो जाइये।

चेड़ा राजा के पास पहुँच कर दूत ने कोणिक राजा का सन्देश कह सुनाया। चेड़ा राजा ने कहा—यदि कोणिक अनीति पूर्वक युद्ध करने को तय्यार हो गया है तो नीति की रक्षा के निमित्त मैं भी युद्ध करने को तय्यार हूँ।

दूत ने जाकर कोणिक राजा को उपरोक्त बात कह सुनाई। तत्पश्चात् काल, सुकाल आदि दस भाइयों को बुलाकर कोणिक ने उनसे कहा—तुम लोग अपने राज्य में जाकर अपनी सेना लेकर शीघ्र आओ। कोणिक राजा की आज्ञा को सुनकर दसों भाई अपने राज्य में गये और सेना लेकर कोणिक की सेवा में उपस्थित हुए। कोणिक भी अपनी सेना को सज्जित कर तय्यार हुआ। फिर वे सभी विशाला नगरी पर चढ़ाई करने के लिये रवाना हुए। उनकी सेना में तेतीस हजार हाथी, तेतीस हजार घोड़े, तेतीस हजार रथ और तेतीस कोटि पदाति (पैदल सैनिक) थे।

इधर चेड़ा राजा ने अपने धर्म मित्र काशी देश के नव मल्लि वंश के राजाओं को और कौशल देश के नव लच्छिवंश के राजाओं को एक जगह बुलाया और विहल्लकुमार विषयक सारी हकीकत कही। चेड़ा राजा ने कहा—भूपतियो! कोणिक राजा मेरी न्याय संगत बात की अवहेलना करके अपनी चतुरंगिणी सेना को लेकर

युद्ध करने के लिये यहाँ आ रहा है। अब आप लोगों की क्या सम्मति है? क्या विहल्लकुमार को वापिस भेज दिया जाय या युद्ध किया जाय? सब राजाओं ने एकमत होकर जवाब दिया-मित्र! हम क्षत्रिय हैं। शरणागत की रक्षा करना हमारा परम कर्तव्य है। विहल्लकुमार का पक्ष न्याय संगत है और वह हमारी शरण में आ चुका है। इसलिए हम इसे कोणिक के पास नहीं भेज सकते।

उनका कथन सुनकर चेड़ा राजा ने कहा-जब आप लोगों का यही निश्चय है तो आप लोग अपनी अपनी सेना लेकर वापिस शीघ्र पधारिये। तत्पश्चात् वे अपने अपने राज्य में गये और सेना लेकर वापिस चेड़ा राजा के पास आये। चेड़ा राजा भी तय्यार हो गया। उन उन्नीसों राजाओं की सेना में सत्तावन हजार हाथी, सत्तावन हजार घोड़े, सत्तावन हजार रथ और सत्तावन कोटि पदाति थे।

दोनों ओर की सेनाएं युद्ध में आ डटीं। घोर संग्राम होने लगा। काल, सुकाल आदि दसों भाई दस दिनों में मारे गये। तब कोणिक ने तेले का तप कर अपने पूर्वभव के मित्र देवों का स्मरण किया। जिससे शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र उसकी सहायता करने के लिये आये। पहले महाशिला संग्राम हुआ जिसमें चौरासी लाख आदमी मारे गये। दूसरा रथमूसल संग्राम हुआ उसमें छयानवे लाख मनुष्य मारे गये। उनमें से वरुण नाग नत्तुआ और उसका मित्र क्रमशः देव और मनुष्य गति में गये। (भगवती श० ७ उ० ६) बाकी सब जीव नरक और तिर्यञ्च गति में गये।

देव शक्ति के आगे चेड़ा राजा की महान् शक्ति भी काम न आई। वे परास्त होकर विशाला नगरी में घुस गये और नगरी के दरवाजे बन्द करवा दिये। कोणिक राजा ने नगरी के कोट को गिराने की बहुत कोशिश की किन्तु वह उसे न गिरा सका।

तब इस तरह की आकाशवाणी हुई—

समणे जदि कूलबालए, मागधिअं गणिअं गमिस्सए।
राया य असोगचंदए, वेसालिं नगरीं गहिस्सए॥

अर्थात्—यदि कूलबालक नामक साधु चारित्र से पतित होकर मागधिका वेश्या से गमन करे तो कोणिक राजा कोट को गिरा कर विशाला नगरी को ले सकता है। यह सुनकर कोणिक राजा ने राजगृह से मागधिका वेश्या को बुलाकर उसे सारी बात समझा दी मागधिका ने कूलबालक को कोणिक के पास लाना स्वीकार किया।

किसी आचार्य के पास एक साधु था। आचार्य जब उसे कोई भी हित की बात कहते तो वह अविनीत होने के कारण सदा विपरीत अर्थ लेता और आचार्य पर क्रोध करता। एक समय आचार्य विहार करके जा रहे थे। वह शिष्य भी साथ में था। जब आचार्य एक छोटी पहाड़ी पर से उतर रहे थे तो उन्हें मार देने के विचार से उस शिष्य ने एक बड़ा पत्थर पीछे से लुढका दिया। ज्यों ही पत्थर लुढ़क कर नजदीक आया तो आचार्य को मालूम हो गया जिससे उन्होंने अपने दोनों पैरों को फैला दिया और वह पत्थर उनके पैरों के बीच होकर निकल गया। आचार्य को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—अरे अविनीत शिष्य! तू इतने बुरे विचार रखता है! जा, किसी स्त्री के संयोग से तू पतित हो जायगा। शिष्य ने विचार किया—मैं गुरु के इन वचनों को झूठा सिद्ध करूँगा। मैं ऐसे निर्जन स्थान में जाकर रहूँगा जहाँ स्त्रियों का आवागमन ही न हो फिर उनके संयोग से पतित होने की कल्पना ही कैसे हो सकती है। ऐसा विचार कर वह एक नदी के किनारे जाकर ध्यान करने लगा। वर्षाऋतु में नदी का प्रवाह बड़े वेग से आया किन्तु उसके तप के प्रभाव से नदी दूसरी तरफ बहने लग गई। इसलिये उसका नाम कूलबालक हो गया। वह गोचरी के

लिये नगर में नहीं जाता किन्तु उधर से निकलने वाले मुसाफिरों से महीने, पन्द्रह दिन में आहार ले लिया करता था। इस प्रकार वह कठोर तपस्या करता था।

मागधिका वेश्या कपट-श्राविका बनकर साधुओं की सेवा भक्ति करने लगी। धीरे धीरे उसने कूलवालक साधु का पता लगा लिया। वह उसी नदी के किनारे जाकर रहने लगी और कूलवालक की सेवा भक्ति करने लगी। उसकी भक्ति और आग्रह के वश होकर एक दिन वह वेश्या के यहाँ गोचरी को गया। उसने विरेचक औषधि मिश्रित लड्डू वहराये जिससे उसे अतिसार हो गया। तब वह वेश्या उसके शरीर की सेवा शुश्रूषा करने लगी। उसके स्पर्श आदि से मुनि का चित्त विचलित हो गया। वह उसमें आसक्त हो गया। उसे पूर्णरूप से अपने वश में करके वह वेश्या उसे कोणिक के पास ले आई।

कोणिक ने कूलवालक से पूछा—विशाला नगरी का कोट किस प्रकार गिराया जा सकता है और विशाला नगरी किस प्रकार जीती जा सकती है? इसका उपाय बतलाओ। कूलवालक ने कोणिक को उसका उपाय बतला दिया और कहा—मैं विशाला में जाता हूँ। जब मैं आपको सफेद वस्त्र द्वारा संकेत करूं तब आप अपनी सेना को लेकर कुछ पीछे हट जाना। इस प्रकार कोणिक को समझा कर वह नैमित्तिक का रूप बनाकर विशाला नगरी में चला आया।

उसे नैमित्तिक समझ कर विशाला के लोग पूछने लगे—कोणिक हमारी नगरी के चौतरफ घेरा डालकर पड़ा हुआ है। यह उपद्रव कब दूर होगा? नैमित्तिक ने कहा—तुम्हारी नगरी के मध्य में श्री मुनिसुव्रत स्वामी का पादुकास्तूप (स्मृति चिह्न विशेष) है। उसके कारण यह उपद्रव बना हुआ है। यदि उसे उखाड़

कर फेंक दिया जाय तो यह उपद्रव तत्काल दूर हो सकता है।

नैमित्तिक के वचन पर विश्वास करके लोग उस स्तूप को खोदने लगे। उसी समय उसने सफेद वस्त्र को ऊँचा करके कोणिक को इशारा किया जिससे वह अपनी सेना को लेकर पीछे हटने लगा। उसे पीछे हटते देखकर लोगों को नैमित्तिक के वचन पर पूरा विश्वास हो गया। उन्होंने स्तूप को उखाड़ कर फेंक दिया। अब नगरी प्रभाव रहित हो गई। कूलवालक के संकेत के अनुसार कोणिक ने आकर नगरी पर आक्रमण कर दिया। उसके कोट को गिरा दिया और नगरी को नष्ट भ्रष्ट कर दिया।

श्रीमुनिसुव्रत स्वामी के स्तूप को उखड़वा देने से वैशाली नगरी का कोट गिराया जा सकता है ऐसा जानना कूलवालक की पारिणामिकी बुद्धि थी। इसी प्रकार कूलवालक साधु को अपने वश में करने की मागधिका वेश्या की पारिणामिकी बुद्धि थी।

(निरयावलिका अ. १ सूत्र) (उत्तराध्ययन १ अध्ययन कूलवालक की कथा गा. ३ टी.)
(नन्दीसूत्र भाषान्तर पूज्य हस्तीमलजी महाराज एवं अमोलख ऋषिजी कृत)
(नन्दी सूत्र २७ सटीक गा. ७१-७४) (हरिभद्रीयावश्यक गाथा ९४८ से ९५१)

९१६—'सभिक्खु' अध्ययन की २१ गाथाएं

दशवैकालिक सूत्र के दसवें अध्ययन का नाम 'सभिक्खु' अध्ययन है। उसमें इक्कीस गाथाएं हैं, जिनमें साधु का स्वरूप बताया गया है। गाथाओं का भावार्थ नीचे लिखे अनुसार है।

(१) भगवान् की आज्ञानुसार दीक्षा लेकर जो सदा उनके वचनों में दत्तचित्त रहता है। स्त्रियों के वश में नहीं होता तथा छोड़े हुए विषयों का फिर से सेवन नहीं करता वह सच्चा साधु है।

(२) जो महात्मा पृथ्वी को न स्वयं खोदता है न दूसरे से खुदवाता है, सचित्त जल न स्वयं पीता है न दूसरे को पिलाता है,

तीक्ष्ण शस्त्र के समान अग्नि को न स्वयं जलाता है न दूसरे से जलवाता है वही सच्चा भिक्षु है।

(३) जो पंखे आदि से हवा न स्वयं करता है न दूसरे से करवाता है, वनस्पतिकाय का छेदन न स्वयं करता है न दूसरों से करवाता है तथा जो बीज आदि सचित्त वस्तुओं का आहार नहीं करता है वही सच्चा साधु है।

(४) आग जलाते समय पृथ्वी, तृण और काष्ठ आदि में रहे हुए त्रस तथा स्थावर जीवों की हिंसा होती है। इसीलिए साधु औद्देशिक (साधु विशेष के निमित्त से बनाया हुआ आहार) तथा अन्य भी सावद्य आहार का सेवन नहीं करता। जो महात्मा भोजन को न स्वयं बनाता है न दूसरों से बनवाता है वही सच्चा भिक्षु है।

(५) ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर के वचनों पर श्रद्धा करके जो महात्मा छह काय के जीवों को अपनी आत्मा के समान मानता है। पाँच महाव्रतों का पालन करता है तथा पाँच आस्रवों का निरोध करता है वही सच्चा भिक्षु है।

(६) चार कषायों को छोड़कर जो सर्वज्ञ के वचनों में दृढ़ विश्वास रखता है, परिग्रह रहित होता हुआ सोना, चाँदी आदि को त्याग देता है तथा गृहस्थों के साथ अधिक संसर्ग नहीं रखता वही सच्चा साधु है।

(७) जो सम्यग्दृष्टि है, समझदार है, ज्ञान, तप और संयम पर विश्वास रखता है, तपस्या द्वारा पुराने पापों की निर्जरा करता है तथा मन, वचन और काया को वश में रखता है वही सच्चा साधु है।

(८) जो महात्मा विविध प्रकार के अशन, पान, खादिम और स्वादिम को प्राप्त कर उन्हें दूसरे या तीसरे दिन के लिये बासी न स्वयं रखता है न दूसरे से रखवाता है वही सच्चा साधु है।

(९) जो साधु विविध प्रकार के अशन, पान, खादिम और

स्वादिम रूप चारों प्रकार का आहार मिलने पर साधर्मी साधुओं को निमन्त्रित करके स्वयं आहार करता है, फिर स्वाध्याय कार्य में लग जाता है वही सच्चा साधु है।

(१०) जो महात्मा क्लेश उत्पन्न करने वाली बातें नहीं करता, किसी पर क्रोध नहीं करता, इन्द्रियों को चञ्चल नहीं होने देता, सदा प्रशान्त रहता है, मन, वचन, और काया को दृढ़ता पूर्वक संयम में स्थिर रखता है, कष्टों को शान्ति से सहता है, उचित कार्य का अनादर नहीं करता वही सच्चा साधु है।

(११) जो महापुरुष इन्द्रियों को कण्टक के समान दुःख देने वाले आक्रोश, प्रहार तथा तर्जना आदि को शान्ति से सहता है। भय, भयङ्कर शब्द तथा प्रहास आदि के उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहता है वही सच्चा भिक्षु है।

(१२) श्मशान में प्रतिमा अङ्गीकार करके जो भूत पिशाच आदि के भयङ्कर दृश्यों को देखकर भी विचलित नहीं होता। विविध प्रकार के तप करता हुआ जो अपने शरीर की भी परवाह नहीं करता वही सच्चा भिक्षु है।

(१३) जो मुनि अपने शरीर का ममत्व छोड़ देता है बार बार धमकाये जाने पर, मारे जाने पर या घायल होने पर भी शान्त रहता है। निदान (भविष्य में स्वर्गादि फल की कामना) या किसी प्रकार का कुतूहल न रखते हुए जो पृथ्वी के समान सभी कष्टों को समभाव पूर्वक सहता है वही सच्चा भिक्षु है।

(१४) अपने शरीर से परीषहों को जीत कर जो अपनी आत्मा को जन्म मरण के चक्र से निकालता है, जन्म मरण को महाभय समझ कर तप और संयम में लीन रहता है वही सच्चा भिक्षु है।

(१५) जो साधु अपने हाथ, पैर, वचन और इन्द्रियों पर पूर्ण संयम रखता है। सदा आत्मचिन्तन करता हुआ समाधि में लीन

रहता है तथा सूत्रार्थ को अच्छी तरह जानता है वही सच्चा भिक्षु है।

(१६) जो साधु भण्डोपकरण आदि उपधि में किसी प्रकार की मूर्छा या गृद्धि नहीं रखता है, अज्ञात कुल की गोचरी करता है, चारित्र का घात करने वाले दोषों से अलग रहता है। खरीदने बेचने और संनिधि (वासी रखने) से विरक्त रहता है और सभी प्रकार के संगों से अलग रहता है वही सच्चा भिक्षु है।

(१७) जो साधु चञ्चलता रहित होता है तथा रसों में गृद्ध नहीं होता, अज्ञात कुलों से भिक्षा लेता है, जीवित रहने की भी अभिलाषा नहीं करता, ज्ञानादि गुणों में आत्मा को स्थिर करके छल रहित होता हुआ ऋद्धि, सत्कार, पूजा आदि की इच्छा नहीं करता है वही सच्चा भिक्षु है।

(१८) जो दूसरे को कुशील (दुश्चरित्र) नहीं कहता, ऐसी कोई बात नहीं कहता जिससे दूसरे को क्रोध हो, पुण्य और पाप के स्वरूप को जानकर जो अपने को बड़ा नहीं मानता वही सच्चा भिक्षु है।

(१९) जो जाति, रूप, लाभ तथा श्रुत का मद नहीं करता। सभी मद छोड़कर धर्मध्यान में लीन रहता है वही सच्चा भिक्षु है।

(२०) जो महामुनि धर्म का शुद्ध उपदेश देता है, स्वयं धर्म में स्थिर रहकर दूसरे को स्थिर करता है। प्रव्रज्या लेकर कुशील के कार्य आरम्भ आदि को छोड़ देता है, निन्दनीय परिहास तथा कुचेष्टाएं नहीं करता वही सच्चा भिक्षु है।

(२१) उपरोक्त गुणों वाला साधु अपवित्र और नश्वर देहवास को छोड़कर शाश्वत मोक्ष रूपी हित में अपने को स्थित करके जन्म मरण के बन्धन को तोड़ देता है और ऐसी गति में जाता है जहाँ से वापिस आना नहीं होता अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

(दशवैकालिक १० वाँ अध्ययन)

६१७–उत्तराध्ययन सूत्र के चरणविहि नामक ३१ वें अध्ययन की २१ गाथाएं

प्रत्येक संसारी आत्मा के साथ शरीर का सम्बन्ध लगा हुआ है। खाना, पीना, हिलना, चलना, उठना, बैठना आदि प्रत्येक शारीरिक क्रिया के साथ पुण्य पाप लगा हुआ है, इसलिए इन क्रियाओं को करते समय प्रत्येक प्राणी को शुद्ध और स्थिर उपयोग रखना चाहिये। उपयोग की शुद्धता के लिये उत्तराध्ययन सूत्र के इकतीसवें अध्ययन में चारित्र विधि का कथन किया गया है। उसमें इक्कीस गाथाएं हैं–उनका भावार्थ नीचे दिया जाता है।

(१) भगवान् फरमाने लगे– भव्यो! जीव के लिये कल्याण कारी तथा उसे सुख देने वाली और संसार सागर से पार उतारने वाली अर्थात् जिसका आचरण करके अनेक जीव इस भवसागर को तिर कर पार हो चुके हैं ऐसी चारित्रविधि का मैं कथन करता हूँ। तुम उसे ध्यान पूर्वक सुनो।

(२) मुमुक्षु को चाहिये कि वह एक तरफ से निवृत्ति करे और दूसरे मार्ग में प्रवृत्ति करे। इसी बात को स्पष्ट करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि हिंसादि रूप असंयम से तथा प्रमत्त योग से निवृत्ति करें और संयम तथा अप्रमत्त योग में प्रवृत्ति करे।

(३) पाप कर्म में प्रवृत्ति कराने वाले दो पाप हैं। एक राग और दूसरा द्वेष। जो साधु इन दोनों को रोकता है अर्थात् इनका उदय ही नहीं होने देता अथवा उदय में आये हुए को विफल कर देता है वह चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(४) जो साधु तीन दण्ड, तीन गारव और तीन शल्य छोड़ देता है वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(५) जो साधु देव मनुष्य और पशुओं द्वारा किये गये अनुकूल

और प्रतिकूल उपसर्गों को समभाव से सहन करता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(६) जो साधु चार विकथा, चार कषाय, चार संज्ञा तथा दो ध्यान अर्थात् आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को छोड़ देता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(७) पांच महाव्रत, पांच इन्द्रियों के विषयों का त्याग, पांच समिति, पांच पाप क्रियाओं का त्याग इन बातों में जो साधु निरन्तर उपयोग रखता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(८) छः लेश्या, छः काया और आहार के छः कारणों में जो साधु हमेशा उपयोग रखता है वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(९) सात प्रकार की पिण्डैषणाओं और सात प्रकार के भय स्थानों में जो साधु सदा उपयोग रखता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(१०) जातिमद आदि आठ प्रकार के मद स्थानों में, नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य्य गुप्ति में और दस प्रकार के यति धर्म में जो साधु सदा उपयोग रखता है वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(११) जो साधु श्रावक की ग्यारह पडिमाओं का यथावत् ज्ञान करके उपदेश देता है और बारह भिक्खुपडिमाओं में सदा उपयोग रखता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(१२) जो साधु तेरह प्रकार के क्रिया स्थानों को छोड़ देता है, एकेन्द्रियादि चौदह प्रकार के प्राणी समूह (भूतग्राम) की रक्षा करता है तथा पन्द्रह प्रकार के परमाधार्मिक देवों का ज्ञान रखता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(१३) जो साधु सूयगडांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययनों का ज्ञान रखता है, सतरह प्रकार के असंयम को छोड़ कर पृथ्वीकायादि की रक्षा रूप सतरह प्रकार के संयम का

पालन करता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(१४) अठारह प्रकार के ब्रह्मचर्य को जो साधु सम्यक् प्रकार से पालता है, ज्ञातासूत्र के उन्नीस अध्ययनों का अध्ययन करता है तथा बीस असमाधिस्थानों का त्याग कर समाधिस्थानों में प्रवृत्ति करता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(१५) जो साधु इक्कीस प्रकार के शबल दोषों का सेवन नहीं करता, तथा बाईस परीषहों को समभाव से सहन करता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(१६) जो साधु सूयगडाग सूत्र के तेईस अध्ययन अर्थात् प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह और दूसरे श्रुतस्कन्ध के सात, इस प्रकार कुल तेईस अध्ययनों का भली प्रकार अध्ययन करके प्ररूपणा करता है और चौबीस प्रकार के देवों (दस भवनपति, आठ वाणव्यन्तर, पांच ज्योतिषी और वैमानिक) का स्वरूप जानकर उपदेश देता है अथवा भगवान् ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थङ्करों का गुणानुवाद करता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(१७) जो साधु सदा पांच महाव्रतों की पचीस भावनाओं में उपयोग रखता है और छब्बीस उद्देशों (दशाश्रुतस्कन्ध के दस, बृहत्कल्प के छः और व्यवहार सूत्र के दस कुल मिलाकर छब्बीस) का सम्यक् अध्ययन करके प्ररूपणा करता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(१८) जो साधु सत्ताईस प्रकार के अनगार गुणों को धारण करता है और अट्ठाईस प्रकार के आचार प्रकल्पों में सदा उपयोग रखता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

नोट—जिसमें साधु के आचार का कथन किया गया हो उसे प्रकल्प कहते हैं। यहाँ आचारप्रकल्प शब्द से आचाराङ्ग के सत्थपरिण्णा, लोगविजय आदि अट्ठाईस अध्ययन लिये जाते हैं

क्योंकि उन्हीं में मुख्यतः साधु के आचार का कथन किया गया है।

(१९) जो साधु उनतीस प्रकार के पाप सूत्रों का कथन नहीं करता तथा तीस प्रकार के मोहनीय कर्म बांधने के स्थानों का त्याग करता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(२०) जो साधु इकतीस प्रकार के सिद्ध भगवान् के गुणों का कथन करता है, बत्तीस प्रकार के योगसंग्रहों को सम्यक् प्रकार से पालन करता है और तेतीस आशातनाओं का त्याग करता है वह इस संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

(२१) उपरोक्त सभी स्थानों में जो निरन्तर उपयोग रखता है वह पण्डित साधु शीघ्र ही इस संसार से मुक्त हो जाता है।

(उत्तराध्ययन अध्ययन ३१)

नोट—इस अध्ययन में एक से लेकर तेतीस संख्या तक के भिन्न भिन्न बोलों का कथन किया गया है। उनमें से कुछ ग्राह्य हैं और कुछ त्याज्य हैं। उनका ज्ञान होने पर ही यथायोग्य ग्रहण और त्याग हो सकता है। इसलिये मुमुक्षु को इनका स्वरूप अवश्य जानना चाहिये। इनमें से एक से पांच तक के पदार्थों का स्वरूप इसी ग्रन्थ के प्रथम भाग में दिया गया है। छः और सात के बोलों का स्वरूप दूसरे भाग में, आठ से दस तक के बोलों का स्वरूप तीसरे में, ग्यारह से तेरह तक के बोलों का स्वरूप चौथे भाग में और चौदह से उन्नीस तक के बोलों का स्वरूप पांचवें भाग में दिया गया है। आगे के बोलों का स्वरूप अगले भागों में दिया जायगा।

९१८—इक्कीस प्रश्नोत्तर

(१) प्रश्न—ॐकार का अर्थ पञ्च परमेष्ठी किया जाता है यह कैसे?

उत्तर-अ अ आ उ और म् ये पांच अक्षर हैं और इनकी सन्धि होकर ॐ बना है। ये अक्षर पांच परमेष्ठी के आद्य अक्षर हैं। प्रथम

अ अरिहंत का एवं दूसरा अ अशरीर अर्थात् सिद्ध का पहला अक्षर है। आ आचार्य का एवं उ उपाध्याय का प्रथम अक्षर है। म् मुनि अर्थात् साधु का पहला अक्षर है। इस प्रकार उक्त पांचों अक्षरों के संयोग से बना हुआ यह ॐकार शब्द पंच परमेष्ठी का द्योतक है।

अरिहंता असरीरा आयरिय उवज्झाय मुणिणो य।
पढमक्खर णिप्पएणो ॐकारो पंचपरमेट्ठी ।

(द्रव्य संग्रह)

(२) प्रश्न–संघ तीर्थ है या तीर्थङ्कर तीर्थ है?

उत्तर–भगवती सूत्र के २० वें शतक आठवें उद्देशे सू० ६८१ में यही प्रश्न गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा है। वह इस प्रकार है–तित्थं भंते! तित्थं, तित्थगरे तित्थं? गोयमा! अरहा ताव नियमं तित्थकरे, तित्थं पुण चाउवएणाइएणे समणसंघो तंजहा–समणा, समणीओ, सावया, साविया ओ य।

भावार्थ–भगवन्! तीर्थ (संघ) तीर्थ है या तीर्थङ्कर तीर्थ है? उत्तर-हे गौतम! अरिहन्त-तीर्थङ्कर नियम पूर्वक तीर्थ के प्रवर्त्तक हैं (किन्तु तीर्थ नहीं हैं)। चार वर्ण वाला श्रमण प्रधान संघ ही तीर्थ है जैसे कि साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप उक्त संघ ज्ञान दर्शन चारित्र का आधार है, आत्मा को अज्ञान और मिथ्यात्व से तिरा देता है एवं संसार के पार पहुँचाता है इसीलिये इसे तीर्थ कहा है। यह भावतीर्थ है। द्रव्य-तीर्थ का आश्रय लेने से तृषा की शान्ति होती है, दाह का उपशम होता है, एवं मल का नाश होता है। भावतीर्थ की शरण लेने वाले को भी तृष्णा का नाश, क्रोधाग्नि की शान्ति एवं कर्म मल का नाश–इन तीन गुणों की प्राप्ति होती है।

(विशेषावश्यक भाष्य गाथा १०३३ से १०४७)

(३) प्रश्न-सिद्ध शिला और अलोक के बीच कितना अन्तर है?

उत्तर-भगवती सूत्र चौदहवें शतक आठवें उद्देशे में बतलाया है कि सिद्ध शिला और अलोक के बीच देशोन (कुछ कम) एक योजन का अन्तर है। टीकाकार ने व्याख्या करते हुए कहा है कि यहाँ जो योजन कहा गया है वह उत्सेधांगुल के माप से जानना चाहिये। क्योंकि योजन के ऊपर के कोश के छठे हिस्से में ३३३ $\frac{1}{3}$ धनुष प्रमाण सिद्धों की अवगाहना कही गई है, इसका सामंजस्य उत्सेधांगुल के माप का योजन मानने से ही होता है। आवश्यकसूत्र में एक योजन का जो अन्तर बतलाया है उसमें थोड़ी सी न्यूनता की विवक्षा नहीं की गई है। वैसे दोनों में कोई विरोध नहीं है।

(भगवती सूत्र शतक १४ उद्देशा ८ टीका सू. ५२७)

(४) प्रश्न-जहाँ तीर्थङ्कर भगवान् विचरते हैं वहाँ उनके अतिशय से पचीस योजन तक रोग, वैर, मारी आदि शान्त हो जाते हैं तो पुरिमतालनगर में महाबल राजा ने विविध प्रकार की व्यथाओं से दुःख पहुंचा कर अभग्नसेन का कैसे वध किया?

उत्तर-विपाक सूत्र के तीसरे अध्ययन की टीका में अभग्नसेन चोर के विषय में टीकाकार ने यही शंका उठाकर उसका समाधान दिया है। वह इस प्रकार है। शंका-जहाँ तीर्थङ्कर विचरते हैं वहाँ उनके अतिशय से पचीस योजन एवं मतान्तर से बारह योजन तक वैर आदि अनर्थ नहीं होते हैं। कहा भी है-

पुव्वुप्पण्णा रोगा पसमंति य ईइ वेर मारीओ।
अइवुट्ठिअणावुट्ठि, न होइ दुब्भिक्ख डमरं च॥

भावार्थ-(तीर्थङ्कर के अतिशय से) पूर्वोत्पन्न रोग, ईति, वैर और मारी शांत हो जाते हैं तथा अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और अन्य उपद्रव नहीं होते। फिर भगवान् महावीर के पुरिमताल

नगर में विराजते हुए अभग्नसेन विषयक, यह घटना कैसे हुई ?
समाधान—ये सभी अनर्थ प्राणियों के स्वीकृत कर्मों के फल स्वरूप होते हैं। कर्म दो प्रकार के हैं—सोपक्रम और निरुपक्रम। जो वैर वगैरह सोपक्रम कर्म के उदय से प्राप्त होते हैं वे तीर्थङ्कर के अतिशय से शान्त हो जाते हैं जैसे साध्य रोग औषध से मिट जाता है। किन्तु जो वैरादि निरुपक्रम कर्म के फलरूप हैं उन्हें अवश्य ही भोगना पड़ता है, असाध्य व्याधि की तरह उन पर उपक्रम का असर नहीं होता। यही कारण है कि सर्वातिशय-सम्पन्न तीर्थङ्करों को भी अनुपशान्त-वैर वाले गोशाला आदि ने उपसर्ग दिये थे।

(विपाक सूत्र अध्ययन ३ टीका)

(५) प्रश्न—जब सभी भव्य जीव सिद्ध होजायँगे तो क्या यह लोक भव्यात्माओं से शून्य हो जायगा ?

उत्तर—जयन्ती श्राविका ने यही प्रश्न भगवान् महावीर से पूछा था। प्रश्नोत्तर भगवती शतक १२ उद्देशा २ सू. ४४३ में है। उत्तर इस प्रकार है—भव्यत्व आत्मा का पारिणामिक भाव है। भविष्य में जो सिद्ध होने वाले हैं वे भव्य हैं। ये सभी भव्य जीव सिद्ध होंगे। यदि ऐसा न माना जाय तो वे भव्य ही न रहें। परन्तु यह सम्भव नहीं है कि सभी भव्य सिद्ध हो जायँगे और लोक भव्य जीवों से खाली हो जायगा। यह तभी हो सकता है जब कि सारा ही भविष्य काल वर्तमान रूप में परिणत हो जाय एवं लोक भविष्य काल से शून्य हो जाय। जब भविष्य काल का कोई अन्त नहीं है तो भव्य जीवों से लोक कैसे खाली हो सकता है ?

इसी के समाधान में सूत्रकार ने आकाश श्रेणी का उदाहरण दिया है जैसे अनादि अनन्त दोनों ओर से परिमित एवं दूसरी श्रेणियों से घिरी हुई सर्व आकाश श्रेणी में से प्रति-समय परमाणु पुद्गल परिमाण खंड निकाले जायँ एवं निकालते

निकालते अनन्त उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी बीत जायँ फिर भी वह श्रेणी खाली नहीं होती। इसी प्रकार यह कहा जाता है कि सभी भव्य जीव सिद्ध होंगे किन्तु लोक उनसे खाली न होगा।

जब सभी भव्य जीव सिद्ध न होंगे फिर उनमें और अभव्यों में क्या अन्तर है? इसके उत्तर में टीकाकार ने वृक्ष का दृष्टान्त दिया है। गोशीर्षचन्दन आदि वृक्षों से मूर्तियाँ बनाई जाती हैं एवं एरण्ड आदि कई वृक्ष मूर्ति निर्माण के सर्वथा अयोग्य हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सभी योग्य वृक्षों से मूर्तियाँ बनाई ही जायं। किन्तु इसका यह भी अर्थ नहीं होता है कि मूर्ति के काम न आने से सर्वथा मूर्ति के अयोग्य हो गये। योग्य वृक्ष कहने का यही आशय है कि मूर्ति जब भी बनेगी तो उन्हीं से बनेगी। यही बात भव्यात्माओं के सम्बन्ध में भी है। इसका यह आशय नहीं है कि सभी भव्य जीव सिद्ध हो जायेंगे और लोक उन से खाली हो जायगा। परन्तु इसका यह अर्थ है कि जो भी जीव मोक्ष जायेंगे, वे इन्हीं में से जायेंगे।

इस प्रश्न का समाधान काल की अपेक्षा से भी किया गया है। भूत एवं भविष्य दोनों काल बराबर माने गये हैं। न भूत काल की कहीं आदि है, न भविष्य काल का कहीं अन्त ही है। भूत काल में भव्यजीवों का अनन्तवां भाग सिद्ध हुआ है और इसी प्रकार भविष्य में भी अनन्तवां भाग सिद्ध होगा। भूत और भविष्य दोनों अनन्तभाग के, सिद्ध हुए एवं सिद्ध होने वाले भव्यात्मा सभी भव्यों के अनन्तवें भाग हैं और इसलिए भव्यों से यह संसार कभी भी शून्य नहीं होगा।

(भगवती शतक १२ उद्देशा २ टीका)

(६) प्रश्न—परमाणु से लेकर सभी रूपी द्रव्यों का ग्रहण करना अवधि ज्ञान का विषय है और उसके असंख्य भेद हैं, फिर मनःपर्ययज्ञान

अलग क्यों कहा गया जबकि उसके विषय भूत मनोद्रव्य अवधि से ही जाने जा सकते हैं ?

उत्तर—भगवती सूत्र प्रथम शतक के तीसरे उद्देशे के सू० ३७ की टीका में यही शंका उठाई गई है एवं उसका समाधान इस प्रकार किया गया है। यद्यपि अवधिज्ञान का विषय मन है तो भी मनः पर्यय-ज्ञान का उसमें समावेश नहीं होता क्योंकि उसका स्वभाव ही जुदा है। मनःपर्ययज्ञान केवल मनोद्रव्य को ही ग्रहण करता है एवं उसके पहले दर्शन नहीं होता। अवधिज्ञान में कोई तो मन से भिन्न रूपी द्रव्यों को विषय करता है और कोई दोनों-मनोद्रव्य और दूसरे रूपी द्रव्यों को जानता है। अवधिज्ञान के पहले दर्शन अवश्य होता है एवं केवल मनोद्रव्यों को ग्रहण करना अवधिज्ञान का विषय नहीं है इसलिए अवधिज्ञान से भिन्न मनःपर्ययज्ञान है।

तत्त्वार्थ सूत्रकार आचार्य उमास्वाति ने अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान का भेद बताते हुए कहा है—'विशुद्धि क्षेत्र स्वामि विषयेभ्योऽवधिमनःपर्ययोः।' उक्त सूत्र का भाष्य करते हुए उमास्वाति कहते हैं—अवधिज्ञान से मनःपर्ययज्ञान अधिक स्पष्ट होता है। अवधिज्ञान का विषय भूत क्षेत्र अङ्गुल के असंख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोक है किन्तु मनःपर्ययज्ञान का क्षेत्र तिर्यक्लोक में मानुषोत्तर पर्वत पर्यन्त है। अवधिज्ञान चारों गतियों के जीवों को होता है जब कि मनःपर्ययज्ञान केवल चारित्र-धारी महर्षि को ही होता है। अवधिज्ञान का विषय संपूर्ण रूपी द्रव्य है परन्तु मनःपर्ययज्ञान का विषय उसका अनन्तवां भाग अर्थात् केवल मनोद्रव्य है।

(तत्वार्थ सू. अ. १ सू. २६) (भगवती शतक १ उद्देशा ३ सू. ३७ टीका)

(७) प्रश्न—शास्त्रों में कहा है कि सभी जीवों के अक्षर का अनन्तवाँ भाग सदा अनावृत्त (आवरणरहित) रहता है। यहाँ

'अक्षर' का क्या अर्थ है ?

उत्तर–बृहत्कल्प भाष्य की पीठिका में अक्षर का अर्थ ज्ञान किया है और बतलाया है कि इसका अनन्तवां भाग सभी जीवों के सदा अनावृत्त रहता है। यदि ज्ञान का यह अंश भी आवृत्त हो जाय तो जीव अजीव ही हो जाय। दोनों में कोई भेद न रहे। घने बादलों में भी जिस प्रकार सूर्य चन्द्र की कुछ न कुछ प्रभा रहती ही है इसी प्रकार जीवों में भी अक्षर के अनन्तवें भाग परिमाण ज्ञान तो रहता ही है। पृथ्वी आदि में ज्ञान की यह मात्रा सुप्त मूर्छितावस्था की तरह अव्यक्त रहती है।

अब यह प्रश्न होता है कि ज्ञान पाँच प्रकार के हैं उन में से अक्षर का वाच्य कौन सा ज्ञान समझा जाय ? इसके उत्तर में भाष्यकार ने कहा है कि अक्षर का अर्थ केवलज्ञान और श्रुत ज्ञान समझना चाहिये।

नंदीसूत्र की टीका में भी यही बात मिलती है। टीकाकार कहते हैं कि सभी वस्तु समुदाय का प्रकाशित करना जीव का स्वभाव है। यही केवलज्ञान है। यद्यपि यह सर्वघाती केवल-ज्ञानावरण कर्म से आच्छादित रहता है तो भी उसका अनन्तवाँ भाग तो सदा खुला ही रहता है। श्रुतज्ञान के अधिकार में कहा है कि यद्यपि सभी ज्ञान सामान्य रूप से अक्षर कहा जाता है तो भी श्रुत ज्ञान का प्रकरण होने से यहाँ श्रुतज्ञान समझना। चूंकि श्रुतज्ञान मतिज्ञान के बिना नहीं होता इसलिये 'अक्षर' से मतिज्ञान भी लिया जाता है। (नन्दी सू. ४३ टी. पृ. २०१)

(नन्दी सू. १ टी. पृ. ६८) (बृहत्कल्प भाष्य पीठिका गा. ७२-७५)

(८) प्रश्न–उत्तराध्ययन में सातावेदनीय की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की कही है और प्रज्ञापना सूत्र में बारह मुहूर्त की, यह कैसे ?

उत्तर-उत्तराध्ययन सूत्र अ० ३३ गा० १६-२० में ज्ञानावरणीय,

दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय इन चार कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त दी गई है। प्रज्ञापना सूत्र के तेईसवें कर्मप्रकृति पद सूत्र २९४ वें में सातावेदनीय की ईर्यापथिक बंध की अपेक्षा अजघन्य उत्कृष्ट दो समय की एवं संपराय बंध की अपेक्षा जघन्य बारह मुहूर्त की स्थिति कही है। उत्तराध्ययन में चार कर्मों की जघन्य स्थिति एक साथ कहने से अन्तर्मुहूर्त कही है। दो समय से लेकर मुहूर्त में एक समय कम हो तब तक का काल अन्तर्मुहूर्त कहलाता है। उक्त अन्तर्मुहूर्त का अर्थ, जघन्य अन्तर्मुहूर्त अर्थात् दो समय करने से प्रज्ञापना सूत्र के पाठ के साथ उत्तराध्ययन सूत्र के पाठ की संगति हो जाती है।

(९) प्रश्न—कल्पवृक्ष सचित्त हैं या अचित्त ? यदि सचित्त हैं तो क्या ये वनस्पति रूप हैं अथवा पृथ्वी रूप? ये स्वभाव से ही विविध परिणाम वाले हैं या देव अधिष्ठित होकर विविध फल देते हैं ?

उत्तर—कल्पवृक्ष सचित्त हैं। आचारांग द्वितीय श्रुतस्कन्ध की पीठिका में सचित्त के द्विपद, चतुष्पद और अपद, ये तीन भेद बताये हैं और 'अपदेषु कल्पवृक्षः' कहा है अर्थात्, अपद सचित्त वस्तुओं में कल्पवृक्ष है। ये कल्पवृक्ष वनस्पति रूप एवं स्वाभाविक परिणाम वाले हैं। जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति में एकोरुक द्वीप का वर्णन करते हुए दस कल्पवृक्षों का वर्णन किया है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के दूसरे वक्षस्कार में यही वर्णन उद्धृत किया गया है। मत्तंग कल्पवृक्ष के विषय में टीका में लिखा है कि ये वृक्ष हैं एवं प्रभूत मद्य प्रकारों से सहित हैं। इनकी यह परिणति विशिष्ट क्षेत्रादि की सामग्री द्वारा स्वभाव से होती है किन्तु देवों की शक्ति इसमें काम नहीं करती। इनके फल मद्य रस से भरे होते हैं। पकने पर ये फट जाते हैं और इनमें से मद्य चूता है। यही बात प्रवचन सारोद्धार १७१ द्वार की टीका में कही है। योगशास्त्र

के चौथे प्रकाश में धर्म का माहात्म्य बताते हुए हेमचन्द्राचार्य कहते हैं—'धर्म प्रभावतः कल्पद्रुमाद्याः ददतीप्सितम्' अर्थात् धर्म के प्रभाव से कल्पवृक्ष आदि इष्ट फल देते हैं। इसकी टीका में बतलाया है कि कल्पवृक्ष वनस्पति रूप हैं और चिन्तामणि पृथ्वी रूप है।

इस प्रकार कल्पवृक्ष वनस्पति रूप हैं और इसलिये सचित्त हैं। वे स्वभाव से ही विशिष्ट क्षेत्रादि की सामग्री पाकर मद्य, वस्त्र, आभरण आदि रूप फल देते हैं परन्तु ये देवाधिष्ठित नहीं हैं।

(१०) प्रश्न—स्त्री के गर्भ में जीव उत्कृष्ट कितने काल तक रहता है?

उत्तर—भगवती सूत्र शतक २ उद्देशे ५ सू० १०१ में कहा है कि जीव स्त्री के गर्भ में जघन्य अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट बारह वर्ष तक रहता है। कोई जीव गर्भ में बारह वर्ष तक रहकर मर जाय एवं पुनः उसी अपने शरीर में दूसरी बार उत्पन्न होकर बारह वर्ष और रहे—इस प्रकार कायस्थिति की अपेक्षा जीव स्त्री के गर्भ में चौवीस वर्ष तक रह सकता है यह एक मत है। जीव बारह वर्ष तक गर्भ में रह कर फिर दूसरे वीर्य से वहाँ पर उसी शरीर में दूसरी बार उत्पन्न होकर और बारह वर्ष तक रहता है। इस प्रकार भी दूसरे मत से उत्कृष्ट चौवीस वर्ष की कायस्थिति का स्पष्टीकरण किया गया है।

प्रवचनसारोद्धार के २४१—२४२ द्वारों में मनुष्य की गर्भस्थिति इस प्रकार बतलाई है—

गब्भट्ठिइ मणुस्सीणुक्किट्ठा होई वरिस बारसगं।
गब्भस्स य कायट्ठिई नराण चउव्वीस वरिसाइं॥ १३६०॥

इसकी व्याख्या करते हुए टीकाकार लिखते हैं कि प्रचुर पाप के फल स्वरूप कोई जीव वात पित्त से दूषित अथवा देवादि से स्तम्भन किये हुए गर्भ में अधिक से अधिक लगातार बारह वर्ष तक रहता है। यह तो भवस्थिति कही। मनुष्य गर्भ की काय

स्थिति चौवीस वर्ष की है। तात्पर्य यह है कि कोई जीव बारह वर्ष गर्भ में रहकर मर जाता है। पुनः तथाविध कर्मवश गर्भ-स्थित उसी कलेवर में उत्पन्न होकर और बारह वर्ष तक रहता है। इस प्रकार जीव उत्कृष्ट चौवीस वर्ष तक एक ही गर्भ में रहता है।

(११) प्रश्न—क्या आत्मकल्याण चाहने वाले मुनि का एकल-विहार शास्त्र सम्मत है ?

उत्तर—साधु दो प्रकार के होते हैं—गीतार्थ और अगीतार्थ। गीत अर्थात् निशीथ आदि सूत्र और अर्थ दोनों को जानने वाले मुनि गीतार्थ कहलाते हैं। निशीथ अध्ययन को जानने वाले जघन्य गीतार्थ और चतुर्दश पूर्वधारी उत्कृष्ट गीतार्थ कहलाते हैं। शेष कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध आदि जानने वाले मध्यम गीतार्थ हैं। गीतार्थ के सिवाय शेष साधु अगीतार्थ कहलाते हैं। विहार भी दो प्रकार का है—गीतार्थ का स्वतन्त्र विहार एवं गीतार्थ की निश्रा में विहार। पर इससे यह न समझना चाहिये कि सभी गीतार्थ स्वतन्त्र विहार कर सकते हैं। स्थानांग ८ वें ठाणे में एकल विहार प्रतिमाधारी के श्रद्धालु, सत्यवादी, मेधावी बहुश्रुत, शक्तिमान्, अल्पाधिकरण, धैर्यशील एवं वीर्य सम्पन्न—ये आठ विशेषण कहे हैं जो इसी ग्रन्थ के तीसरे भाग के बोल नं० ५८६ में दिये गये हैं। उक्त गुणों के धारक गीतार्थ मुनि अकेले विहार कर सकते हैं। बृहत्कल्प भाष्य में पाँच गीतार्थ मुनियों को एकल विहार की आज्ञा है और शेष सभी को गीतार्थ की निश्रा में विहार करने के लिये कहा है—

जिणकप्पिओ गीयत्थो, परिहारविसुद्धियो वि गीयत्थो।
गीयत्थे इड्ढिदुगं, सेसा गीयत्थणीसाए॥

उक्त गाथा का भाष्य करते हुए भाष्यकार कहते हैं—जिन-कल्पिक और परिहारविशुद्धिचारित्र वाले गीतार्थ होते हैं और

'अपि' शब्द से प्रतिमाधारी यथालन्द कल्प वालों को भी गीतार्थ समझना चाहिये। ये तीनों नियमपूर्वक कम से कम नववें पूर्व की आचार नामक तीसरी वस्तु के ज्ञाता होते हैं। गच्छ में आचार्य उपाध्याय भी गीतार्थ ही हैं। ये सभी स्वतन्त्र विहार कर सकते हैं। शेष सभी साधु आचार्य उपाध्याय रूप गीतार्थ के अधीन विहार करते हैं।

गाथा के उत्तरार्द्ध को स्पष्ट करते हुए नियुक्तिकार कहते हैं:-

आयरिय गणी इड्ढी, सेसा गीता वि होंति तण्णीसा।
गच्छगय णिग्गया वा, ठाणणिउत्ता अणिउत्ता वा॥

भावार्थ-आचार्य, उपाध्याय ये दोनों सातिशय ज्ञान की ऋद्धि से सम्पन्न होते हैं। इसके सिवाय शेष गीतार्थ भी आचार्य उपाध्याय की निश्रा में विचरते हैं। वे चाहें गच्छ में हों अथवा दुर्भिक्ष आदि कारणों से अलग हो गये हों, चाहें वे प्रवर्त्तक, स्थविर, गणावच्छेदक आदि पदों पर नियुक्त हों या सामान्य साधु हों।

ऊपर लिखे अनुसार कम से कम नववें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु का जानकार होना एकलविहारी के लिये आवश्यक है। यही बात स्थानांग सूत्र के आठवें ठाणे में 'बहुस्सुए' पद से कही गई है। चूंकि अभी पूर्वो के ज्ञान का विच्छेद हो गया है इसलिए अभी एकलविहार शास्त्र सम्मत नहीं हो सकता।

बृहत्कल्प भाष्य में एकलविहार के अनेक दोष बतलाये हैं, जैसे-चारित्र से गिर जाना, मन्द हो जाना, ज्ञान दर्शन चारित्र का त्याग देना आदि। यही नहीं बल्कि नियुक्तिकार ने एकल-विहार का प्रायश्चित्त बतलाया है।

(बृहत्कल्पभाष्य पीठिका गाथा ६८८ से ७०२ टीका)

(१२) प्रश्न-आवश्यक आदि क्रिया के समय उनकी उपेक्षा कर ध्यान आदि अन्य शुभ क्रियाएं करना क्या साधु के लिये उचित है?

उत्तर—साधु को नियत समय पर आवश्यक आदि क्रियाएं ही करना चाहिये। उस समय ध्यानादि अन्य शुभ क्रियाओं का आचरण दीर्घदर्शी शास्त्रकारों की दृष्टि में सर्वथा अनुचित है। गणधरों ने विशिष्ट क्रियाओं को नियत समय पर करने के लिये जो कहा है, वह सकारण है। मूल सूत्र, टीका एवं भाष्यग्रन्थों में इसका स्पष्टीकरण मिलता है। दशवैकालिक सूत्र पंचम अध्ययन के दूसरे उद्देशे में 'काले कालं समायरे' कहा है अर्थात् साधु को नियत समय पर उस काल की नियत क्रिया करना चाहिये जैसे भिक्षा के समय भिक्षा और स्वाध्याय के समय स्वाध्याय। नियत समय पर नियत क्रिया न करने में अनेक दोषों की संभावना बताई गई है। जैसे कि—

अकाले चरसि भिक्खू, कालं न पडिलेहसि।
अप्पाणं च किलामेसि, संनिवेसं च गरिहसि॥

(दशवैकालिक अध्ययन ५ उद्देशा २ गा. ५)

भावार्थ—हे भिक्षु! यदि तुम प्रमाद या स्वाध्याय के लोभ से अकाल में भिक्षा के लिये जाओगे और योग्य अयोग्य समय का ख्याल न रखोगे तो इसका यह परिणाम होगा कि तुम्हारी आत्मा को कष्ट होगा और दीनता के साथ तुम वसति की बुराई करोगे।

गुणस्थान क्रमारोह में ऐसा करने वाले को जैनागम का अज्ञान एवं मिथ्यात्वी कहा है।

प्रमाद्यावश्यकत्यागान्निश्चलं ध्यानमाश्रयेत्
योऽसौ नैवागमं जैनं, वेत्ति मिथ्यात्वमोहितः॥३०॥

भावार्थ—जो प्रमादी साधु आवश्यक क्रियाओं का त्याग कर निश्चल ध्यान का आश्रय लेता है, मिथ्यात्व से मूढ़ हुआ वह जैनागमों को नहीं जानता।

(१३) प्रश्न—जिसने व्रत धारण नहीं किये हैं उसके लिये क्या

प्रतिक्रमण करना आवश्यक है ?

उत्तर—प्रतिक्रमण में छः आवश्यक हैं—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान। इनमें केवल चौथा आवश्यक व्रतों के अतिचारों की आलोचना का है, शेष का सम्बन्ध इससे नहीं है। कई पाठ सामान्य आलोचना के हैं, कई स्तुति के हैं और कई वन्दना के हैं। कायोत्सर्ग एवं प्रत्याख्यान सम्बन्धी प्रतिक्रमण का अंश भी भूत एवं भविष्य की आत्मशुद्धि से सम्बन्ध रखता है। इस प्रकार व्रतधारी और बिना व्रत वाले सभी के लिये सामान्य रूप से प्रतिक्रमण की आवश्यकता है ही। जिसने व्रत नहीं लिये हैं उसका भी झुकाव व्रतों की ओर होता है। यही सम्यक्त्वधारी से आशा की जाती है। चारित्रमोहनीय का विशिष्ट क्षयोपशम न होने से व्रत न लेने में वह अपनी कमजोरी समझता है और उस शुभ दिन की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करता है जब कि वह व्रत धारण कर सकेगा। ऐसे सम्यक्त्वधारी के लिये व्रत एवं अतिचारों का गिनना व्यर्थ कैसे हो सकता है ? यह तो व्रतप्रवृत्ति के लिये तैयारी करना और व्रतधारण की उच्चावस्था का आह्वान करना है। इससे उसे अपनी अशक्ति का ध्यान आता है, व्रतधारियों के प्रति सम्मान भाव होता है एवं व्रतधारण की रुचि होती है। इसके अतिरिक्त कई अतिचारों के पाठ तो सामान्य हैं, कई में सम्यक्त्व एवं ज्ञान के अतिचारों का वर्णन है जिनकी आलोचना व्रत रहित सम्यक्त्वधारी के लिये भी आवश्यक है। यों भी आवश्यक सूत्र आगमों में है और उसकी स्वाध्याय आत्मकल्याण के लिये है।

वंदित्ता सूत्र में कहा है कि प्रतिक्रमण व्रतों की आलोचना के सिवाय भी अन्य चार स्थानों के लिये किया जाता है—

पडिसिद्धाणं करणे, किच्चाणमकरणे पडिक्कमणं ।
असद्दहणे अ तहा, विवरीय परूवणाए अ ॥

भावार्थ—प्रतिषिद्ध—नहीं करने योग्य कार्य किये हों, करने योग्य कार्य न किये हों, वीतराग के वचनों पर श्रद्धा न रखी हो तथा सूत्र विपरीत प्ररूपणा की हो इसके लिये प्रतिक्रमण करना चाहिए।

इस विषय में हारिभद्रीयावश्यक प्रतिक्रमणाध्ययन गा० १२७० टी० पृष्ठ ५६८ पर एक वैद्य का दृष्टान्त है। वह इस प्रकार है—एक राजा था। उसके एक पुत्र था। वह उसे बहुत प्यारा था। राजा ने सोचा कि इसे कभी रोग न हो ऐसा प्रयत्न किया जाय। राज्य के प्रसिद्ध वैद्यों को बुलाकर उसने कहा—मेरे पुत्र की ऐसी चिकित्सा करो कि उसे कभी रोग न हो। वैद्यों के हाँ भरने पर राजा ने उनसे औषधि की बाबत पूछा। एक ने कहा—मेरी औषधि यदि रोग हो तो उसे मिटा देती है अन्यथा औषधि लेने वाले के शरीर को जीर्णशीर्ण कर उसे मार देती है। दूसरे वैद्य ने कहा—मेरी दवा यदि रोग हो तो उसे मिटा देती है अन्यथा गुण दोष कुछ नहीं करती। इसके बाद तीसरे वैद्य ने कहा—मेरी औषधि से विद्यमान रोग शान्त हो जाते हैं। रोग न होने पर यह औषधि वर्ण रूप यौवन और लावण्य को बढ़ाती है एवं भविष्य में रोग नहीं होने देती। यह सुनकर राजा ने तीसरे वैद्य से राजकुमार को दवा दिलवाई। तीसरे वैद्य की औषधि की तरह प्रतिक्रमण भी है। यदि दोष लगे हों तो प्रतिक्रमण द्वारा उनकी शुद्धि हो जाती है। दोष न होने पर किया गया प्रतिक्रमण चारित्र को विशेष शुद्ध करता है। इसलिए प्रतिक्रमण क्या व्रतधारी और क्या बिना व्रत वाले सभी के लिये समान रूप से आवश्यक है।

(१४) प्रश्न—व्याधिप्रतिकार के लिये जैसे वैद्य डाक्टरों का सत्कार-सम्मान किया जाता है, उसी तरह लौकिक फल के लिये

प्रभावशाली यक्ष यक्षिणी को मानने पूजने में क्या दोष है ?

उत्तर–मोक्ष के लिये कुदेव को देव मानने में मिथ्यात्व है इस दृष्टि से यह प्रश्न किया गया है और यह सच भी है। कहा भी है–

अदेवे देवबुद्धिर्या, गुरुधीरगुरौ च या ।
अधर्मे धर्मबुद्धिश्च, मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात् ॥

भावार्थ—अदेव में जो देव बुद्धि है, अगुरु में जो गुरुबुद्धि है तथा अधर्म में जो धर्मबुद्धि है, यह विपरीत होने से मिथ्यात्व है। पर दीर्घदृष्टि से देखा जाय तो इसमें दूसरे अनेक दोषों की संभावना है इसलिए लौकिक दृष्टि से भी इसे उपादेय नहीं कहा जा सकता पर इसका त्याग ही करना चाहिये। प्रायः इस समय के लोग मन्दबुद्धि एवं वक्र होते हैं और कई भोले भी। ये लोग समझदार श्रावक को यक्षादि की पूजा करते हुए देखकर यह सोचते हैं कि ऐसे जानकार धर्मात्मा श्रावक भी इन्हें पूजते हैं तो इसमें अवश्य धर्म होता होगा। वे किसी आशय से पूजते हैं यह न तो वे जानते हैं और न उसे जानने का प्रयत्न ही करते हैं। फलतः यह पूजा उन जीवों में मिथ्यात्व बढ़ाती है। दूसरे जीवों में मिथ्यात्व पैदा करने का फल शास्त्रकारों ने दुर्लभबोधि कहा है।

अण्णेसिं सत्ताणं, मिच्छत्तं जो जणेइ मूढप्पा ।
सो तेण णिमित्तेण, न लहइ बोहिं जिणाभिहियं ॥
(ध. अधि. २ श्लो० २२ पृ. ३६)

भावार्थ–जो अज्ञानी दूसरे जीवों में मिथ्यात्व उत्पन्न करता है वह इसके फलस्वरूप जिन प्ररूपित बोधि यानी सम्यक्त्व नहीं पाता। इसके समर्थन में यह भी कहा जाता है कि विशुद्ध सम्यक्त्वधारी रावण, कृष्ण, श्रेणिक, अभयकुमार आदि ने भी लौकिक अर्थ के लिये विद्या देवता आदि की आराधना की थी। पर यह आलम्बन भी ठीक नहीं है।

चौथे आरे के पुरुष न आजकल की तरह अज्ञानी थे और न

वक्रजड़ ही। संभवतः उनमें आजकल की तरह देखादेखी की प्रवृत्ति भी न रही हो। अरिहन्त धर्म की विशेषता सभी को ज्ञात थी। परम्परागत दोषों की संभावना न देख उन्होंने अपवाद रूप से त्रिया-राधन आदि किये होंगे। इसलिये इससे इसका विधान नहीं किया जा सकता। गिरने के लिये दूसरे का आलम्बन लेने वाला भी मिथ्यादृष्टि कहा गया है। कहा भी है—

जाणिज्ज मिच्छादिट्ठी जे य परालंबणाइ घिप्पंति।

भगवती सूत्र शतक २ उद्देशा ५ सू० १०७ में तुंगिया नगरी के श्रावकों का वर्णन करते हुए 'असहेज्जा' विशेषण दिया है। टीकाकार ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है—'असाहाय्याः आपद्यपि देवादिसाहायकानपेक्षाः, स्वयं कृतं कर्म स्वयमेव भोक्तव्यमित्य दीन वृत्तयः' अर्थात् श्रावक आपत्ति में भी देवादि की सहायता नहीं चाहते। स्वकृत कर्म प्राणी को भोगने ही पड़ते हैं इसलिए वे अदीनवृत्ति वाले होते हैं, किसी के आगे दीनता नहीं दिखाते। औपपातिक सूत्र ४१ में भी श्रावकों के लिये यही विशेषण मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि लौकिक स्वार्थ के लिये भी श्रावक देवों को नहीं मानता, न किसी के आगे दीनता ही दिखाता है।

इस तरह लौकिक फल के लिये भी की गई देवादि की पूजा दूसरों में मिथ्यात्व पैदा करती है और फलस्वरूप भविष्य में दुर्लभबोधि का कारण होती है। जिनशासन की भी इसमें लघुता मालूम होती है इसलिये इसका त्याग ही करना चाहिये। सच्चा सम्यक्त्वधारी जिनोक्त कर्मसिद्धान्त पर विश्वास रखता है। 'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि' सिद्धान्त पर उसकी अगाध श्रद्धा होती है। वह अपना सारा पुरुषार्थ जिनोक्त कर्तव्यों में ही लगाता है फिर वह लौकिक फल के लिये भी ऐसे कार्य क्यों करने लगा। वह जिन-शासन की प्रभावना करना चाहता है जब

कि इस पूजा से जिनशासन की लघुता प्रगट होती है।

इस तरह भाव सम्यक्त्वधारी तो लोकदृष्टि से भी कुदेवों को नहीं मानता और न उसे उन्हें मानना ही चाहिये।

(श्राद्ध प्रतिक्रमण-रत्न शेखर सूरिकृत विवरण पृ. ३३ सम्यक्त्वाधिकार)

(१५) प्रश्न—चतुर्थभक्त प्रत्याख्यान का क्या मतलब है?

उत्तर—जिस तप में उपवास के पहले दिन एक भक्त का, उपवास के दिन दो भक्त का और पारणे के दिन एक भक्त का त्याग किया जाता है उसे 'चतुर्थ भक्त' तप कहते हैं। पर आज कल की प्रवृत्ति के अनुसार चतुर्थ भक्त उपवास के अर्थ में रूढ़ है। प्रत्याख्यान कराने वाले और लेने वाले दोनों 'चतुर्थ भक्त' का अर्थ उपवास समझ कर ही त्याग कराते और करते हैं। इसलिए उपवास दिवस के दिन रात के दो भक्त का त्याग करना ही इस प्रत्याख्यान का अर्थ है। यही बात भगवती सूत्र शतक २ उद्देशे १ सूत्र ९३ की टीका में कही है। 'चतुर्थं भक्तं यावद्भक्तं त्यज्यते यत्र तच्चतुर्थम्, इयं चोपवासस्य संज्ञा, एवं षष्ठादिकमुपवास द्वयादेरिति' अर्थात् जिसमें चौथे भक्त तक आहार का त्याग किया जाय वह चतुर्थ भक्त है। यह उपवास की संज्ञा है। इसी प्रकार षष्ठभक्त आदि भी दो उपवास आदि की संज्ञा है।

स्थानांग सूत्र ३ उ० ३ सू. १८२ की टीका में भी यही स्पष्टीकरण मिलता है। टीका का आशय यह है—जिस तप में पहले दिन सिर्फ एक, उपवास के दिन दो और पारणे के दिन एक भक्त का त्याग होता है वह 'चतुर्थ भक्त' है। आगे चलकर टीकाकार कहते हैं कि यह तो चतुर्थभक्त शब्द का व्युत्पत्ति अर्थ हुआ। चतुर्थभक्त आदि शब्दों की प्रवृत्ति तो उपवास आदि में है।

अन्तकृद्दशा ८ वें वर्ग के प्रथम अध्ययन में रत्नावली तप का वर्णन है। उसकी टीका में 'चतुर्थ मेकेनोपवासेन, षष्ठं द्वाभ्या-मष्टमं त्रिभिः' लिखा है अर्थात् चतुर्थ का मतलब एक उपवास

से एवं षष्ठ और अष्टम का अर्थ दो और तीन उपवासों से है। इस टीका से भी स्पष्ट है कि 'चतुर्थ भक्त' का अर्थ उपवास होता है।

(१६) प्रश्न—हाथ या वस्त्रादि मुँह पर रखे बिना खुले मुँह कही गई भाषा सावद्य होती है या निरवद्य?

उत्तर—हाथ अथवा वस्त्र आदि से मुँह ढके बिना अयतना पूर्वक जो भाषा बोली जाती है उसे शास्त्रकारों ने सावद्य कहा है। यतना बिना खुले मुँह बोलने से जीवों की हिंसा होती है। भगवती सूत्र के सोलहवें शतक दूसरे उद्देशे में शक्रेन्द्र की भाषा के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर हैं। वहाँ शक्रेन्द्र को सम्यग्वादी कहा है। उसकी भाषा के सावद्य निरवद्य विषयक प्रश्न के उत्तर में यह कहा गया है—

'गोयमा! जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अणिजूहित्ताणं भासं भासइ ताहे णं सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासइ; जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं निजूहित्ता णं भासं भासइ ताहे णं सक्के देविंदे देवराया अणवज्जं भासं भासइ।'

अर्थ—हे गौतम! जिस समय शक्र देवेन्द्र देवराजा सूक्ष्मकाय अर्थात् हाथ या वस्त्र आदि मुँह पर दिये बिना बोलता है उस समय वह सावद्य भाषा बोलता है और जिस समय वह हाथ या वस्त्र आदि मुँह पर रखकर बोलता है उस समय वह निरवद्य भाषा बोलता है।

इसकी टीका इस प्रकार है—'हस्ताद्यावृतमुखस्य हि भाषमाणस्य जीवसंरक्षणतोऽनवद्या भाषा भवति अन्या तु सावद्या'। अर्थात् हाथ आदि से मुँह ढककर बोलने वाला जीवों की रक्षा करता है इसलिये उसकी भाषा अनवद्य है और दूसरी भाषा सावद्य है।

(१७) प्रश्न क्या श्रावक का सूत्र पढ़ना शास्त्र सम्मत है?

उत्तर—श्रावक श्राविका को सूत्र न पढ़ना चाहिये, ऐसा कहीं भी जैन शास्त्रों में उल्लेख नहीं मिलता। इसके विपरीत शास्त्रों

में जगह जगह ऐसे पाठ मिलते हैं जिससे मालूम होता है कि पहले भी श्रावक शास्त्र पढ़ते थे। विभिन्न शास्त्रों से कुछ पाठ नीचे उद्धृत किये जाते हैं—नंदी सूत्र ५२ में एवं समवायांग सूत्र १४२ में उपासकदशा का विषयवर्णन करते हुए लिखा है—'सुयपरिग्गहा, तवोवहाणाइं' अर्थात् श्रावकों का शास्त्र ग्रहण, उपधान आदि तप।' इससे प्रतीत होता है कि भगवान् महावीर के श्रावक शास्त्र पढ़ते थे। उत्तराध्ययन में समुद्रपालीय नामक २१ वें अध्ययन की दूसरी गाथा में पालित श्रावक का वर्णन करते हुए लिखा है—

'णिग्गंथे पावयणे, सावए से वि कोविए'।

अर्थात्—वह पालित श्रावक निर्ग्रन्थ प्रवचन में पंडित था। इसी सूत्र के २२ वें अध्ययन में राजमती के लिये शास्त्रकार ने 'बहुस्सुया' शब्द का प्रयोग किया है। गाथा इस प्रकार है—

सा पव्वईया संती, पव्वावेसी तहिं बहुं।
सयणं परियणं चेव, सीलवंता बहुस्सुआ ॥३२॥

भावार्थ—शीलवती एवं बहुश्रुता उस राजमती ने दीक्षा लेकर वहाँ और भी अपने स्वजन एवं परिजन को दीक्षा दिलाई।

ये दोनों पाठ भी यही सिद्ध करते हैं कि श्रावक सूत्र पढ़ते थे। एवं यह बात शास्त्रकारों को अभिमत है।

ज्ञातासूत्र के १२ वें उदकज्ञात नामक अध्ययन में सुबुद्धि श्रावक ने जितशत्रु राजा को जिनप्रवचन का उपदेश दिया। सूत्र का पाठ इस प्रकार है—

सुबुद्धिं अमच्चं सद्दावित्ता एवं वयासी—सुबुद्धी! एए णं तुमे संता तच्चा जाव सब्भूया भावा कओ उवलद्धा? तएणं सुबुद्धी जियसत्तुं एवं वयासी—एएणं सामी! मए संता जाव भावा जिणवयणाओ उवलद्धा। तएणं

जियसत्तू सुबुद्धिं एवं वयासी—तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तव अंतिए जिण वयणं णिसामित्तए। तएणं सुबुद्धी जियसत्तुस्स विचित्तं केवलिपरणत्तं चाउज्जामं धम्मं परिकहेई, तमाइक्खइ जहा जीवा बज्झंति जाव पंच अणुव्वयाइं। तएणं जियसत्तू सुबुद्धिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठे सुबुद्धिं अमच्चं एवं वयासी—सद्दहामि णं देवाणुप्पिया! णिग्गंथं पावयणं जाव से जहेयं तुब्भे वयह तं इच्छामि णं तव अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्त सिक्खावइयं जाव उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह। तएणं जितसत्तू सुबुद्धिस्स अमच्चस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं जाव दुवालसविहं सावय सम्मं पडिवज्जई। तएणं जियसत्तू समणोवासए अभिगय जीवाजीवे जाव पडिलाभेमाणे विहरइ॥

भावार्थः—जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि अमात्य को बुलाकर यह कहा—हे सुबुद्धे! तुमने विद्यमान, तत्त्वरूप इन सत्य भावों को कैसे जाना? इसके बाद सुबुद्धि ने जितशत्रु से इस प्रकार कहा—हे स्वामिन्! मैंने जिनवचन से विद्यमान तत्त्व रूप इन सत्य भावों को जाना है। यह सुनकर जितशत्रु ने सुबुद्धि से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय! मैं तुमसे जिनवचन सुनना चाहता हूँ। इसके बाद सुबुद्धि ने जितशत्रु से विचित्र केवलिप्ररूपित चार महाव्रत रूप धर्म कहा और यह भी बताया कि किस प्रकार जीवों के कर्मबन्धन होता है यावत् पांच अणुव्रत कहे। राजा जितशत्रु सुबुद्धि से धर्म सुनकर प्रसन्न हुआ। उसने सुबुद्धि अमात्य से कहा—हे देवानुप्रिय! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा, रुचि रखता हूँ एवं उस पर विश्वास करता हूं। यावत् यह उसी प्रकार है जैसा कि तुम कहते हो। इसलिये मैं चाहता हूँ कि तुमसे पाँच अणुव्रत एवं सात शिक्षाव्रत अङ्गीकार

कर विचरूँ। सुबुद्धि ने कहा—हे देवानुप्रिय ! आपको जैसे सुख हो वैसा करें। इसके बाद जितशत्रु राजा ने सुबुद्धि प्रधान से पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत, ये श्रावक के बारह व्रत धारण किये। इसके बाद जितशत्रु श्रमणोपासक जीव अजीव के स्वरूप को जानकर यावत् साधुओं को आहारादि देते हुए विचरता है।

ज्ञातासूत्र के इस पाठ से सुबुद्धि प्रधान का जैन शास्त्रों का जानना सिद्ध है। यहाँ शास्त्रकार ने सुबुद्धि प्रधान के लिये ठीक उसी भाषा का प्रयोग किया है जैसी भाषा का प्रयोग ऐसे प्रकरणों में साधु के लिये किया जाता है।

औपपातिक सूत्र ४१ वें में श्रावक के लिये 'धम्मक्खाई' (भव्यों को धर्म प्रतिपादन करने वाला) शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि श्रावक को शास्त्र पढ़ने का ही अधिकार न हो तो वह धर्म का प्रतिपादन कैसे कर सकता है ?

यह कहा जा सकता है कि यहाँ पर अर्थ रूप शास्त्र समझना चाहिये। पर ऐसा क्यों समझा जाय ? यदि शास्त्रों में श्रावक को शास्त्र पढ़ने की स्पष्ट मना होती तो उससे मेल करने के लिये इनकी अर्थरूप व्याख्या करना युक्त था। पर जब कि शास्त्रों में कहीं भी निषेध नहीं है, बल्कि विधि को समर्थन करने वाले पाठ स्थान पर स्थान मिलते हैं, जिनकी भाषा में साधु के प्रकरण में आई हुई भाषा से कोई फर्क नहीं है। फिर ऐसा अर्थ करना कैसे ठीक कहा जा सकता है।

इस सम्बन्ध में व्यवहार सूत्र का नाम लेकर यह भी कहा जाता है कि जब साधुओं के लिये भी निश्चित काल की दीक्षा के बाद ही शास्त्र विशेष पढ़ने का उल्लेख मिलता है। फिर श्रावक के तो दीक्षा पर्याय नहीं होती इसलिये वह कैसे पढ़ सकता है ? इसका उत्तर यह है कि व्यवहार सूत्र का उक्त नियम भी

सभी साधुओं के लिये नहीं है। व्यवहारसूत्र के तीसरे उद्देशे में तीन वर्ष की दीक्षा वाले के लिये बहुश्रुत और बहागम शब्दों का प्रयोग किया गया है और कहा है कि उसे उपाध्याय की पदवी दी जा सकती है। इसी प्रकार पाँच वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले के लिये भी कहा है और उसे आचार्य एवं उपाध्याय दोनों पद के योग्य बताया है। इससे यह सिद्ध होता है कि सामान्य साधुओं के लिये शास्त्राध्ययन के लिये दीक्षा पर्याय की मर्यादा है विशिष्ट क्षयोपशम वालों के लिये यह मर्यादा कुछ शिथिल भी हो सकती है। किन्तु इससे श्रावक के शास्त्र पठन का निषेध कुछ समझ में नहीं आता। बात यह है कि साधु समाज में शास्त्राध्ययन की परिपाटी चली आ रही है और इसलिये शास्त्रकारों ने मध्यम बुद्धि के साधुओं को दृष्टि में रखते हुए शास्त्राध्ययन के नियम निर्धारित किये हैं। श्रावकों में शास्त्राध्ययन का, साधुओं की तरह प्रचार न था इसलिये सम्भव है उनके लिये नियम न बनाये गये हों। यों भी शास्त्रकारों ने साधुओं की दिनचर्या, आचार आदि का विस्तृत वर्णन किया है, साध्वाचार के वर्णन में बड़े बड़े शास्त्र रचे गये हैं और उनकी तुलना में श्रावकाचार सूत्रों में तो सागर में बूंद की तरह है। फिर क्या आश्चर्य है कि विशेष प्रचार न देखकर शास्त्रकारों ने इस सम्बन्ध में उपेक्षा की हो। वैसे शास्त्रों के उक्त पाठ श्रावक के सूत्र पढ़ने के साक्षी हैं।

यह भी विचारणीय है कि जब श्रावक अर्थरूप सूत्र पढ़ सकता है फिर मूल पढ़ने में क्या बाधा हो सकती है? केवल एक अर्द्धमागधी भाषा की ही तो विशेषता है जिसे श्रावक आसानी से पढ़ सकता है। किसी भी साहित्य में तत्त्व को ही प्रधानता होती है पर भाषा को नहीं। जब तत्त्व जानने की अनुमति है तो भाषा के निषेध में तो कोई महत्त्व प्रतीत नहीं होता।

इसके सिवाय स्वयं गणधरों ने सामान्य लोगों की सूत्रों तक पहुँच हो एवं उनका अधिकाधिक विस्तार हो इसलिये, उस समय की लोक भाषा (अर्द्धमागधी) में इनकी रचना की। फिर श्रावकों के लिये सूत्र पठन का निषेध कैसे हो सकता है।

सूत्राभ्यास ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम पर निर्भर है और ऐसा कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता कि श्रावकों से साधुओं के ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नियम पूर्वक विशिष्ट होता है। शास्त्रकारों ने अभव्यों के भी पूर्वज्ञान होना माना है। फिर श्रावकों का शास्त्र पढ़ना क्योंकर निषिद्ध हो सकता है। इस प्रकार शास्त्र एवं युक्ति दोनों ही श्रावक के शास्त्र पढ़ने के पक्ष में ही हैं।

(१८) प्रश्न—सात व्यसन कौन से हैं? इनका वर्णन कहाँ मिलता है?

उत्तर—सात व्यसन का कुफल बतलाते हुए नीतिकार ने कहा है—

द्यूतञ्च मांसं च सुरा च वेश्या, पापर्द्धिचौर्यं परदार सेवा।
एतानि सप्त व्यसनानि लोके, घोरातिघोरं नरकं नयन्ति॥

अर्थ—जूआ, मांस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी और परस्त्री गमन ये सात व्यसन आत्मा को अत्यन्त घोर नरक में ले जाते हैं।

इन सात व्यसनों की ऐहिक हानियां बतलाते हुए गौतम ऋषि ने गौतम कुलक में ये दो गाथाएं कही हैं:—

जूए पसत्तस्स धणस्स नासो, मंसपसत्तस्स दयाप्पणासो।
वेसापसत्तस्स कुलस्स नासो, मज्जे पसत्तस्स जसस्स नासो॥
हिंसापसत्तस्स सुधम्मनासो, चोरीपसत्तस्स सरीरनासो।
तहा परत्थीसु पसत्तयस्स, सव्वस्स नासो अहमा गई य॥

भावार्थ—जूए में आसक्त व्यक्ति के धन का नाश होता है। मांसगृद्ध पुरुष में दया नहीं रहती। वेश्यासक्त पुरुष का कुल नष्ट होता है एवं मद्यमूर्छित व्यक्ति की अपकीर्ति होती है। हिंसानुरागी धर्म से भ्रष्ट हो जाता है। चोरी का व्यसनी शरीर

से हाथ धो बैठता है तथा परस्त्री का अनुरागी अपना सर्वस्व नाश कर देता है और नीच गति में जाता है।

जैनागमों में ज्ञातासूत्र अध्ययन १८ सू. १३७ (चिलाती पुत्र की कथा) में मृगया (शिकार) के सिवाय छः व्यसनों के नाम मिलते हैं। पाठ इस प्रकार है—तएणं से चिलाए दासचेडे अणोहट्टिए अणि-वारिए सच्छंदमई सइरप्पयारी मज्जपसंगी, चोज्जपसंगी, मंसपसंगी, जूयप्पसंगी, वेसापसंगी, परदारप्पसंगी जाए यावि होत्था।

अर्थ—इसके बाद उस चिलात दासपुत्र को अकार्य में प्रवृत होने से कोई रोकने वाला और मना करने वाला न था इसलिए स्वच्छन्दमति एवं स्वच्छंदाचारी होकर वह मदिरा, चोरी, मांस, जूआ, वेश्या और परस्त्री में विशेष आसक्त हो गया।

बृहत्कल्प सूत्र प्रथम उद्देशे के भाष्य में राजा के सात व्यसन दिये हैं जिनमें से चार उपरोक्त सात व्यसनों में से मिलते हैं और अन्तिम तीन विशेष हैं। भाष्य की गाथा यह है:—

इत्थी जूयं मज्जं मिगव्वं, वयणे तहा फरुसया य।
दंडफरुसत्त मत्थस्स, दूसणं सत्त वसणाई ॥ ९४० ॥

भावार्थ—स्त्री, जूआ, मदिरा, शिकार, वचन की कठोरता, दंड की सख्ती तथा अर्थ उत्पन्न करने के साम दाम दण्ड भेद इन चारों उपायों को दूषित करना—ये सात व्यसन हैं।

(१९) प्रश्न—लोक में अन्धकार कितने कारणों से होता है?

उत्तर—स्थानांग सूत्र के चौथे ठाणे के तीसरे उद्देशे में लोक में अन्धकार होने के चार कारण बतलाये हैं, जैसे—

चउहिं ठाणेहिं लोगंधयारे सिया, तंजहा-अरहंतेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरहंतपण्णत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे, जायतेए वोच्छिज्जमाणे।

चार कारणों से अन्धकार होता है—(१) अरिहन्त भगवान का

विच्छेद (२) अर्हत्प्ररूपित धर्म का विच्छेद (३) पूर्व ज्ञान का विच्छेद और (४) अग्नि का विच्छेद।

पहले के तीन स्थान भाव अन्धकार के कारण हैं। अरिहन्त आदि का विच्छेद उत्पात रूप होने से द्रव्य अंधकार का भी कारण कहा जा सकता है। अग्नि के विच्छेद से तो द्रव्य अंधकार सिद्ध है।

(ठाणांग ४ उद्देशा ३ सूत्र ३२४)

(२०) प्रश्न—अजीर्ण कितने प्रकार का है?

उत्तर-अजीर्ण चार प्रकार के हैं—(१) ज्ञान का अजीर्ण—अहंकार (२) तप का अजीर्ण-क्रोध (३) क्रिया का अजीर्ण—ईर्षा (४) अन्न का अजीर्ण—विसूचिका और वमन। पहले तीन भाव अजीर्ण हैं और चौथा द्रव्य अजीर्ण है। प्रश्नोत्तर शतक में भी चार प्रकार के अजीर्ण बताये हैं, जैसे कि—

अजीर्णं तपसः क्रोधो, ज्ञानाजीर्णमहंकृतिः।
परतप्तिः क्रियाजीर्णमन्नाजीर्णं विसूचिका॥

भावार्थ—तप का अजीर्ण क्रोध है और अहंकार ज्ञान का अजीर्ण है। ईर्षा क्रिया का और विसूचिका अन्न का अजीर्ण है।

(२१) प्रश्न—वाद के कितने प्रकार हैं और साधु को कौनसा वाद किसके साथ करना चाहिये?

उत्तर—वाद के तीन प्रकार हैं—शुष्कवाद, विवाद और धर्मवाद।

शुष्कवाद—अभिमानी, क्रूर स्वभाव वाले, धर्मद्वेषी और विवेक रहित पुरुष के साथ वाद करना शुष्कवाद है। अभिमानी अपनी हार नहीं मानता, क्रूर स्वभाव वाला हार जाने पर शत्रुता करने लगता है, धर्मद्वेषी निरुत्तर हो जाने पर भी सत्य धर्म स्वीकार नहीं करता और अविवेकी पुरुष के साथ वाद करने से कोई मतलब ही हल नहीं होता। इन लोगों से वाद करने से वाद का असली प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। सिर्फ कण्ठशोषण होता है। यही कारण

है कि इस वाद का नाम शुष्कवाद रखा है। विजय होने पर इस वाद में अतिपात आदि दोषों की सम्भावना है एवं पराजय होने पर प्रवचन की लघुता होती है। इस तरह प्रत्येक दृष्टि से यह वाद वास्तव में अनर्थ बढ़ाने वाला है।

विवाद—यश और धन चाहने वाले, हीन और अनुदार मनोवृत्ति वाले व्यक्ति के साथ वाद करना विवाद है। इसमें प्रतिवादी विजय के लिये छल, जाति (दूषणाभास) आदि का प्रयोग करता है। तत्त्ववेत्ता के लिये नीति पूर्वक ऐसे वाद में विजय प्राप्त करना सुलभ नहीं है। तिस पर भी यदि वह जीत जाता है तो स्वार्थ भ्रंश होने के कारण सामने वाला शोक करने लगता है अथवा वादी से द्वेष करता है। तत्त्ववेत्ता मुनियों ने इसमें परलोक के विघातक अन्तराय आदि अनेक दोष देखे हैं। यही कारण है कि वाद के प्रयोजन से विपरीत समझ कर इसका विवाद नाम रखा गया है।

धर्मवाद—कीर्ति, धन आदि न चाहने वाले, अपने सिद्धान्त के जानकार, बुद्धिमान् और मध्यस्थवृत्ति वाले व्यक्ति के साथ तत्त्व निर्णय के लिये वाद करना धर्मवाद है। प्रतिवादी परलोक भीरु होता है, लौकिक फल की उसे इच्छा नहीं होती, इस लिये वह वाद में युक्ति संगत रहता है। मध्यस्थवृत्ति वाला होने से उसे सरलता पूर्वक समझाया जा सकता है। वह अपने दर्शन को जानता है और बुद्धिशील होता है, इसलिये वह अपने मत के गुण दोषों को अच्छी तरह समझ सकता है। ऐसे वाद में विजय लाभ होने पर प्रतिवादी सत्य धर्म स्वीकार करता है। वादी की हार होने पर उसका अतत्त्व में तत्त्व बुद्धिरूप मोह नष्ट हो जाता है।

साधु को धर्मवाद ही करना चाहिये। शुष्कवाद और विवाद में उसे भाग न लेना चाहिये। वैसे अपवाद से समय पड़ने पर देश

काल और शक्ति का विचार कर, साधु प्रवचन गौरव की रक्षा के लिये अन्य वाद का भी आश्रय ले सकता है। पंचकल्पचूर्णि में बतलाया है कि साधु को सभोगी साधु और पासत्थे आदि के साथ निष्कारण वाद न करना चाहिये। साध्वी के साथ वाद करना तो साधु के लिये कतई मना है।

(अष्टक प्रकरण १२ वां वादाष्टक)(उत्तराध्ययन कमलसंयमोपाध्यायवृत्ति अ. १६ कथा

बाईसवां बोल संग्रह

६१६—धर्म के विशेषण बाईस

साधुधर्म में नीचे लिखी बाईस बातें पाई जाती हैं—

(१) केवलिप्रज्ञप्त—साधु का सच्चा धर्म सर्वज्ञ के द्वारा कहा गया है। (२) अहिंसालक्षण—धर्म का मुख्य चिह्न अहिंसा है। (३) सत्याधिष्ठित—धर्म का अधिष्ठान अर्थात् आधार सत्य है। (४) विनयमूल—धर्म का मूल कारण विनय है अर्थात् धर्म की प्राप्ति विनय से होती है। (५) क्षान्तिप्रधान—धर्म में क्षमा प्रधान है। (६) अहिरण्य सुवर्ण—साधुधर्म परिग्रह से रहित होता है। (७) उपशमप्रभव—अच्छी तथा बुरी प्रत्येक परिस्थिति में शान्ति रखने से धर्म प्राप्त होता है। (८) नवब्रह्मचर्यगुप्त—साधु धर्म पालने वाला सभी प्रकार से ब्रह्मचर्य का पालन करता है। (९) अपचमान—साधु धर्म का पालन करने वाले अपने लिये रसोई नहीं पकाते। (१०) भिक्षावृत्तिक—साधु धर्म का पालन करने वाले अपनी आजीविका भिक्षा से चलाते हैं। (११) कुक्षिशम्बल—साधु धर्म का पालन करने वाले आहार आदि की सामग्री उतनी ही अपने पास

रखते हैं जिसका वे भोजन कर सकें। आगे के लिए बचाकर कुछ नहीं रखते। (१२) निरग्निशरण—भोजन या तापने आदि किसी भी प्रयोजन के लिये वे अग्नि का सहारा नहीं लेते। अथवा निरग्निस्मरण अर्थात् अग्नि का कभी स्मरण न करने वाले होते हैं। (१३) संप्रक्षालित—साधुधर्म सभी प्रकार के पाप रूपी मैल से रहित होता है। (१४) त्यक्तदोष—साधुधर्म में रागादि दोषों का सर्वथा परिहार होता है। (१५) गुणग्राहिक—साधुधर्म में गुणों से अनुराग किया जाता है। (१६) निर्विकार—इसमें इन्द्रिय विकार नहीं होते। (१७) निवृत्तिलक्षण—सभी सांसारिक कार्यों से निवृत्ति साधुधर्म का लक्षण है। (१८) पञ्चमहाव्रतयुक्त-यह पांच महाव्रतों से युक्त है। (१९) असन्निधिसञ्चय—साधु धर्म में न किसी प्रकार का लगाव होता है और न सञ्चय अर्थात् धन-धान्य आदि का संग्रह। (२०) अविसंवादी—साधु धर्म में किसी प्रकार का विसंवाद अर्थात् असत्य या धोखा नहीं होता। (२१) संसारपारगामी-यह संसार सागर से पार उतारने वाला है (२२) निर्वाण-गमनपर्यवसान फल—साधु धर्म का अन्तिम प्रयोजन मोक्ष प्राप्ति है।

(धर्मसंग्रह अधिकार ३ श्लो. २७ पृ. ९१ यति प्रतिक्रमण पाक्षिकसूत्र)

९२०—परिषह बाईस

आपत्ति आने पर भी संयम में स्थिर रहने के लिये तथा कर्मों की निर्जरा के लिए जो शारीरिक तथा मानसिक कष्ट साधु साध्वियों को सहने चाहिए उन्हें परिषह कहते हैं। वे बाईस हैं—

क्षुधापरिषह—भूख का परिषह। संयम की मर्यादानुसार निर्दोष आहार न मिलने पर मुनियों को भूख का कष्ट सहना चाहिए, किन्तु मर्यादा का उल्लंघन न करना चाहिए।

(२) पिपासा परिषह—प्यास का परिषह।

(३) शीत परिषह—ठंड का परिषह।

(४) उष्ण परिषह—गरमी का परिषह।

(५) दंशमशक परिषह—डाँस और मच्छरों का परिषह। खटमल, जूं, चींटी वगैरह का कष्ट भी इसी परिषह में आ जाता है।

(६) अचेल परिषह—आवश्यक वस्त्र न मिलने से होने वाला कष्ट।

(७) अरति परिषह—मन में अरति अर्थात् उदासी से होने वाला कष्ट। स्वीकृत मार्ग में कठिनाइयों के आने पर उसमें मन न लगे और उसके प्रति अरति उत्पन्न हो तो धैर्यपूर्वक उसमें मन लगाते हुए अरति को दूर करना अरति परिषह है।

(८) स्त्री परिषह—स्त्रियों द्वारा होने वाला कष्ट। (अनुकूल परिषह)

(९) चर्यापरिषह—ग्राम नगर आदि के विहार में होने वाला कष्ट।

(१०) नैषेधिकी परिषह—सज्झाय आदि के करने की भूमि में किसी प्रकार का उपद्रव होने पर मालूम पड़ने वाला कष्ट।

(११) शय्यापरिषह—रहने के स्थान अथवा संस्तारक की प्रतिकूलता से होने वाला कष्ट।

(१२) आक्रोश परिषह—किसी के द्वारा धमकाये या फटकारे जाने पर दुर्वचनों से होने वाला कष्ट।

(१३) वधपरिषह—लकड़ी आदि से पीटे जाने पर होने वाला परिषह।

(१४) याचनापरिषह—भिक्षा माँगने में होने वाला परिषह।

(१५) अलाभपरिषह—वस्तु के न मिलने पर होने वाला परिषह।

(१६) रोग परिषह—रोग के कारण होने वाला परिषह।

(१७) तृणस्पर्श परिषह—बिछाने के लिये कुछ न होने पर तिनकों पर सोते समय या मार्ग में चलते समय तृण आदि के पैर में चुभ जाने से होने वाला कष्ट।

(१८) जल्लपरिषह—शरीर और वस्त्र आदि में चाहे जितना मैल लगे किन्तु उद्वेग को प्राप्त न होना तथा स्नान की इच्छा न करना जल्ल (मल) परिषह कहलाता है।

(१९) सत्कार पुरस्कार परिषह—जनता द्वारा मान पूजा होने पर हर्षित न होते हुए समभाव रखना, गर्व में पड़कर संयम में दोष न आने देना तथा मान पूजा के अभाव में खिन्न न होना सत्कार पुरस्कार परिषह है। (अनुकूल परिषह)

(२०) प्रज्ञापरिषह—अपने आप विचार करके किसी कार्य को करना प्रज्ञा है। प्रज्ञा होने पर उसका गर्व न करना प्रज्ञा परिषह है।

(२१) अज्ञान परिषह—अज्ञान के कारण होने वाला कष्ट।

(२२) दर्शन परिषह—सम्यग्दर्शन के कारण होने वाला परिषह। दूसरे मतवालों की ऋद्धि तथा आडम्बर को देखकर भी अपने मत में दृढ़ रहना दर्शनपरिषह है।

(समवायांग २२ वां) (उत्तराध्ययन २ अध्ययन) (प्रवचनसारोद्धार ८६ वाँ द्वार गा. ६८५-६८६) (तत्त्वार्थाधिगम भाष्य अध्याय ६ सूत्र ६

६२१—निग्रहस्थान बाईस

अपने पक्ष की सिद्धि न कर सकने के कारण वादी या प्रतिवादी की हार हो जाना निग्रह कहलाता है। जिन कारणों से निग्रह होता है उन्हें निग्रहस्थान कहते हैं। गौतम प्रणीत न्याय सूत्र (१-२-१९) में विप्रतिपत्ति और अप्रतिपत्ति को निग्रहस्थान कहा है। विप्रतिपत्ति का अर्थ है वादी या प्रतिवादी का घबरा-कर उल्टी सुल्टी बातें करने लग जाना। अपने मत के विरुद्ध अथवा परस्पर असंगत बातें करना। दोष वाले हेतु को सच्चा हेतु और मिथ्या दोष को सच्चा दोष समझने लगना। अप्रतिपत्ति का अर्थ है—वादी या प्रतिवादी द्वारा अपने कर्तव्य का भूल जाना। शास्त्रार्थ करने वालों का कर्तव्य होता है कि प्रतिवादी जिस युक्ति से अपने पक्ष को सिद्ध करे उसमें दोष निकाले और अपनी युक्ति में प्रतिपक्षी द्वारा निकाले गए दोष का उद्धार करे। यदि वादी या प्रतिवादी में से कोई अपने इस कर्तव्य का पालन न करे

तो वह हार जाता है, क्योंकि वाद करने वाला दो तरह से हारता है—जो उसे करना चाहिए उसे न करने से अथवा उल्टा करने से। पहली दशा में अप्रतिपत्ति है और दूसरी में विप्रतिपत्ति।

हेमचन्द्राचार्य ने प्रमाणमीमांसा में सामान्य रूप से पराजय को ही निग्रहस्थान कहा है।

निग्रहस्थान बाईस हैं—(१) प्रतिज्ञाहानि (२) प्रतिज्ञान्तर (३) प्रतिज्ञाविरोध (४) प्रतिज्ञासंन्यास (५) हेत्वन्तर (६) अर्थान्तर (७) निरर्थक (८) अविज्ञातार्थ (९) अपार्थक (१०) अप्राप्तकाल (११) न्यून (१२) अधिक (१३) पुनरुक्त (१४) अननुभाषण (१५) अज्ञान (१६) अप्रतिभा (१७) विक्षेप (१८) मतानुज्ञा (१९) पर्यनुयोज्योपेक्षण (२०) निरनुयोज्यानुयोग (२१) अपसिद्धान्त (२२) हेत्वाभास।

इनमें से अननुभाषण, अज्ञान, अप्रतिभा, विक्षेप, मतानुज्ञा और पर्यनुयोज्योपेक्षण ये अप्रतिपत्ति के और बाकी विप्रतिपत्ति के हैं।

(१) प्रतिज्ञाहानि—अपने दृष्टान्त में विरोधी के दृष्टान्त का धर्म स्वीकार कर लेना प्रतिज्ञाहानि है। जैसे—वादी ने कहा 'शब्द अनित्य है, क्योंकि इन्द्रिय का विषय है जैसे घट।' प्रतिवादी ने इसका खण्डन करने के लिए कहा 'इन्द्रियों का विषय घटत्व (जाति) भी है लेकिन वह नित्य है'। इससे वादी का पक्ष गिर गया लेकिन वह सीधे हार न मानकर कहता है—'क्या हुआ घट भी नित्य रहे' यह प्रतिज्ञाहानि है क्योंकि वादी ने अपने अनित्यत्व पक्ष को छोड़ दिया है।

(२) प्रतिज्ञान्तर—प्रतिज्ञा के खण्डित होने पर पहली प्रतिज्ञा की सिद्धि के लिए दूसरी प्रतिज्ञा करना प्रतिज्ञान्तर है। जैसे—उपर्युक्त अनुमान में प्रतिज्ञा के खण्डित हो जाने पर कहना कि शब्द तो घट के समान असर्वगत है, इसलिए उसके समान

अनित्य भी है। यहाँ शब्द को असर्वगत कहकर दूसरी प्रतिज्ञा की गई है। लेकिन इससे पहली प्रतिज्ञा में आए हुए व्यभिचार रूप दोष का परिहार नहीं होता।

(३) प्रतिज्ञाविरोध–प्रतिज्ञा और हेतु का परस्पर विरोध होना प्रतिज्ञाविरोध निग्रहस्थान है। जैसे–गुण द्रव्य से भिन्न है क्योंकि द्रव्य जुदा मालूम नहीं होता। जुदा मालूम न होने से अभिन्नता सिद्ध होती है न कि भिन्नता। इसका विरोध हेत्वाभास में भी समावेश किया जा सकता है।

(४) प्रतिज्ञा संन्यास–किसी बात को कहकर उसका स्वयं अपलाप कर देना प्रतिज्ञा संन्यास है। जैसे–किसी बात को कह कर बाद में कहना 'यह मैंने कब कहा था?'

(५) हेत्वन्तर–हेतु के खण्डित हो जाने पर उसमें कुछ जोड़ देना हेत्वन्तर है। जैसे–शब्द अनित्य है, क्योंकि इन्द्रिय का विषय है। यहाँ घटत्व से दोष आया, क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय होने पर भी नित्य है। इस दोष को हटाने के लिए हेतु को बढ़ा दिया कि सामान्य वाला होकर जो इन्द्रियों का विषय हो। घटत्व स्वयं सामान्य है किन्तु सामान्य वाला नहीं है। यदि इस प्रकार हेतु में वृद्धि होती रहे तो हेतु का दोष कहीं पर न दिखाया जा सकेगा। दोष दिखाते ही उसमें विशेषण जोड़ दिया जाएगा।

(६) अर्थान्तर–प्रकृतविषय (शास्त्रार्थ के विषय) से सम्बन्ध न रखने वाली बात करना अर्थान्तर है। जैसे–वादी ने कोई हेतु दिया। उसका खण्डन न हो सकने पर प्रतिवादी कहने लगा–हेतु किस भाषा का शब्द है किस धातु से निकला है? इत्यादि।

(७) निरर्थक–अर्थ रहित शब्दों का उच्चारण करने लगना निरर्थक है। जैसे–शब्द अनित्य है क्योंकि क, ख, ग, घ, ङ है जैसे–च, छ, ज, झ, ञ इत्यादि।

(८) अविज्ञातार्थ-ऐसे शब्दों का प्रयोग करना कि उनका अर्थ तीन बार कहने पर भी प्रतिवादी तथा सभ्यों में से कोई भी न समझ सके अविज्ञातार्थ है। जैसे-जङ्गल के राजा के आकार वाले के खाद्य के शत्रु का शत्रु यहाँ है। जङ्गल का राजा शेर, उसके आकार वाला बिलाव, उसका खाद्य मूषक, उसका शत्रु सर्प, उसका शत्रु मोर।

(९) अपार्थक—पूर्वापर सम्बन्ध को छोड़कर अंड बंड बकना अपार्थक है। जैसे-कलकत्ते में पानी बरसा, कौओं के दाँत नहीं होते, बम्बई बड़ा शहर है, यहाँ दस वृक्ष लगे हुए हैं, मेरा कोट बिगड़ गया इत्यादि। यह एक प्रकार का निरर्थक ही है।

(१०) अप्राप्तकाल-प्रतिज्ञा आदि का बेसिलमिले प्रयोग करना।

(११) पुनरुक्त-अनुवाद के सिवाय शब्द और अर्थ का फिर कहना।

(१२ अननुभाषण—वादी ने किसी बात को तीन बार कहा, परिषद् ने उसे समझ लिया, फिर भी यदि प्रतिवादी उसका अनुवाद न कर सके तो वह अननुभाषण है।

(१३) अज्ञान-वादी के वक्तव्य को सभा समझ जाय, किन्तु प्रतिवादी न समझ सके तो अज्ञान नाम का निग्रहस्थान है।

(१४) अप्रतिभा —उत्तर न सूझना अप्रतिभा निग्रहस्थान है।

(१५) पर्यनुयोज्योपेक्षण-विपक्षी के निग्रह प्राप्त होने पर भी यह न कहना कि तुम्हारा निग्रह हो गया है, पर्यनुयोज्योपेक्षण है।

(१६) निरनुयोज्यानुयोग-निग्रहस्थान में न पड़ा हो फिर भी उसका निग्रह बतलाना निरनुयोज्यानुयोग है।

(१७) विक्षेप—अपने पक्ष को कमजोर देखकर बात को उड़ा देना विक्षेप है। जैसे-अपनी हार होती देखकर कहने लगना, अभी मुझे काम है फिर देखा जायगा आदि। किसी आकस्मिक घटना से अगर विक्षेप हो तो निग्रहस्थान नहीं माना जाता।

(१८) मतानुज्ञा—अपने पक्ष में दोष स्वीकार करके परपक्ष में भी वही दोष बतलाना मतानुज्ञा है, जैसे—यह कहना कि यदि हमारे पक्ष में यह दोष है तो आपके पक्ष में भी है।

(१९) न्यून—अनुमान के लिए प्रतिज्ञा आदि जितने अङ्गों का प्रयोग करना आवश्यक है उससे कम अङ्ग प्रयोग करना न्यून है।

(२०) अधिक—एक हेतु से साध्य की सिद्धि हो जाने पर भी अधिक हेतु तथा दृष्टान्तों का प्रयोग करना अधिक है।

(२१) अपसिद्धान्त-स्वीकृत सिद्धान्त के विरुद्ध बात कहना अपसिद्धान्त है।

(२२) हेत्वाभास—असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक आदि दोषों वाले हेतु का प्रयोग करना हेत्वाभास निग्रहस्थान है।

(न्याय सूत्र अ० ५ आ० २) (प्रमाणमीमांसा अ २ आ० १ सू० ३४) (न्यायप्रदीप)

तेईसवां बोल संग्रह

९२२—भगवान् महावीर स्वामी की चर्या विषयक गाथाएं तेईस

आचारांग सूत्र के नवें अध्ययन का नाम उपधान श्रुत है। उस में भगवान् महावीर के विहार तथा चर्या का वर्णन है। उसके प्रथम उद्देश में तेईस गाथाएं हैं, जिनका भावार्थ नीचे लिखे अनुसार है—

(१) सुधर्मास्वामी, जम्बूस्वामी से कहते हैं—हे जम्बू! मैंने जैसा सुना है वैसा ही कहता हूँ। श्रमण भगवान् महावीर ने हेमन्त ऋतु में दीक्षा लेकर तत्काल विहार कर दिया।

(२) दीक्षा लेते समय इन्द्र ने भगवान् को देवदूष्य नाम का वस्त्र दिया था किन्तु भगवान् ने यह कभी नहीं सोचा कि मैं इसे

शीतकाल में पहनूंगा। यावज्जीवन परिषहों को सहन करने वाले भगवान् ने दूसरे तीर्थङ्करों के रिवाज के अनुसार इन्द्र के दिए हुए वस्त्र को केवल धारण कर लिया था।

(३) दीक्षा लेते समय भगवान् के शरीर में बहुत से सुगन्धित पदार्थ लगाए गए थे। उनसे आकृष्ट होकर भ्रमर आदि बहुत से जन्तु आकर भगवान् के शरीर में लग गए और उनके रक्त तथा मांस को चूसने लगे।

(४) इन्द्र द्वारा दिए गए वस्त्र को भगवान् ने लगभग तेरह महीनों तक अपने स्कन्ध पर धारण किया। इसके बाद भगवान् वस्त्र रहित हो गए।

(५) भगवान् सावधान होकर पुरुष प्रमाण मार्ग को देखकर ईर्यासमिति पूर्वक चलते थे। उस समय छोटे छोटे बालक उन्हें देखकर डर जाते थे। वे सब इकट्ठे होकर भगवान् को लकड़ी तथा घूंसे आदि से मारते और स्वयं रोने लगते।

(६) यदि भगवान् को कहीं गृहस्थों वाली वसति में ठहरना पड़ता और स्त्रियां उनसे प्रार्थना करतीं तो भगवान् उन्हें मोक्ष मार्ग में बाधक जानकर मैथुन का सेवन नहीं करते थे। आत्मा को वैराग्य मार्ग में लगा धर्मध्यान और शुक्लध्यान में लीन रहते थे।

(७) भगवान् गृहस्थों के साथ मिलना जुलना छोड़कर धर्मध्यान में मग्न रहते थे। यदि गृहस्थ कुछ पूछते तो भी बिना बोले वे अपने मार्ग में चले जाते। इस प्रकार भगवान् सरल स्वभाव से मोक्ष मार्ग पर अग्रसर होते थे।

(८) भगवान् की कोई प्रशंसा करता तो भी वे उससे कुछ नहीं बोलते थे। इसी प्रकार जो अनार्य उन्हें दण्ड आदि से मारते थे, बालों को खींचकर कष्ट देते थे, उन पर भी वे क्रोध नहीं करते थे।

(९) मोक्षमार्ग में पराक्रम करते हुए महामुनि महावीर अत्यन्त

कठोर तथा दूसरों द्वारा असह्य परिषहों को भी कुछ नहीं गिनते थे। इसी प्रकार ख्याल, नाच, गान, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध आदि की बातों को सुनकर उत्सुक नहीं होते थे।

(१०) किसी समय ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर यदि स्त्रियों को परस्पर कामकथा में लीन देखते तो वहाँ भी राग द्वेष रहित होकर मध्यस्थ भाव धारण करते। इन तथा दूसरे अनुकूल और प्रतिकूल भयंकर परिषहों की परवाह किये बिना ज्ञातपुत्र भगवान् संयम में प्रवृत्ति करते थे।

(११) भगवान् ने दीक्षा लेने से दो वर्ष पहले ठंडा (कच्चा) पानी छोड़ दिया था। इस प्रकार दो वर्ष से अचित्त जल का सेवन करते हुए तथा एकत्व भावना भाते हुए भगवान् ने कषायों को शान्त किया और सम्यक्त्व भाव से प्रेरित हो दीक्षा धारण कर ली।

(१२-१३) भगवान् महावीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और शैवाल, बीज आदि वनस्पतिकाय तथा त्रसकाय को चेतन जानकर उनकी हिंसा का परिहार करते हुए विचरते थे।

(१४) अपने अपने कर्मानुसार स्थावर जीव त्रस रूप से उत्पन्न होते हैं और त्रस स्थावर रूप से उत्पन्न होते हैं, अथवा सभी जीव अपने अपने कर्मानुसार विविध योनियों में उत्पन्न होते हैं। भगवान् संसार की इस विचित्रता पर विचार किया करते थे।

(१५) भगवान् महावीर ने विचार कर देखा कि अज्ञानी जीव द्रव्य और भाव उपाधि के कारण ही कर्मों से बंधता है। इसलिए भगवान् कर्मों को जानकर कर्म तथा उनके हेतु पाप का त्याग करते थे।

(१६) बुद्धिमान् भगवान् ने दो प्रकार के कर्मों (ईर्याप्रत्यय और साम्परायिक) को तथा हिंसा एवं योग रूप उनके आने के मार्ग को जानकर कर्म नाश के लिये संयम रूप उत्तम क्रिया को बताया है।

(१७) पवित्र अहिंसा का अनुसरण करके भगवान् ने अपनी

आत्मा तथा दूसरों को पाप में पड़ने से रोका। भगवान् ने स्त्रियों को पाप का मूल बताकर छोड़ा है, इसलिए वास्तव में वे ही परमार्थदर्शी थे।

(१८) आधाकर्म आदि से दूषित आहार को कर्मबन्ध का कारण समझ कर भगवान् उसका सेवन नहीं करते थे। पाप के सभी कारणों को छोड़कर वे शुद्ध आहार करते थे।

(१९) वे न वस्त्र का सेवन करते थे और न पात्र में भोजन करते थे अर्थात् भगवान् वस्त्र और पात्र रहित रहते थे। अपमान की परवाह किए बिना वे रसोईघरों में अदीनभाव से आहार की याचना के लिए जाते थे।

(२०) भगवान् नियमित अशन पान काम में लाते थे। रस में आसक्त नहीं होते थे, न अच्छे भोजन के लिए प्रतिज्ञा करते थे। आँख में तृण आदि पड़ जाने पर उसे निकालते न थे और किसी अंग में खुजली होने पर उसे खुजालते न थे।

(२१) भगवान् विहार करते समय इधर उधर या पीछे की तरफ नहीं देखते थे। मार्ग में चलते समय नहीं बोलते थे। मार्ग को देखते हुए वे जयणा पूर्वक चले जाते थे।

(२२) दूसरे वर्ष आधी शिशिर ऋतु बीतने पर भगवान् ने इन्द्र द्वारा दिए गए वस्त्र को छोड़ दिया। उस समय वे बाहु सीधे रख कर विहार करते थे अर्थात् सर्दी के कारण बाहुओं को न इकट्ठा करते थे और न कन्धों पर रखते थे।

(२३) इस प्रकार मतिमान् तथा महान् निरीह (इच्छा रहित) भगवान् महावीर स्वामी ने अनेक प्रकार की संयमविधि का पालन किया है। कर्मों का नाश करने के लिए दूसरे मुनियों को भी इसी विधि के अनुसार प्रयत्न करना चाहिए।

(आचारांग अ० ९ उ० १)

८२३—साधु के लिए उतरने योग्य तथा अयोग्य स्थान तेईस

आचाराङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध, प्रथमचूला, द्वितीय अध्ययन, के द्वितीय उद्देशे में नव प्रकार की क्रिया वाली वसतियाँ बताई गई हैं। वे इस प्रकार हैं—

कालाइक्कंतुवट्ठाण, अभिक्कंता चेव अणभिक्कंता य।
वज्जा य महावज्जा, सावज्जा महप्पकिरिआ य।

अर्थात्—(१) कालातिक्रान्त क्रिया (२) उपस्थान क्रिया (३) अभिक्रान्त क्रिया (४) अनभिक्रान्त क्रिया (५) वर्ज्य क्रिया (वज्रक्रिया) (६) महावर्ज्य क्रिया (महावज्र क्रिया) (७) सावद्य क्रिया, (८) महा-सावद्य क्रिया (९) अल्पक्रिया इस प्रकार वसति के नौ भेद हैं। इनमें से अभिक्रान्त क्रिया और अल्पक्रिया वाली वसतियों में साधु को रहना कल्पता है, बाकी में नहीं। इनका स्वरूप नीचे लिखे अनुसार है—

(१) कालातिक्रान्त क्रिया—आगन्तार (गाँव से बाहर मुसाफिरों के ठहरने के लिए बना हुआ स्थान), आरामागार (बगीचे में बना हुआ मकान), पर्यावसथ (मठ) आदि स्थानों में आकर जो साधु मासकल्प या चतुर्मास कर चुके हों उनमें वे फिर मासकल्प या चतुर्मास न करें। यदि कोई साधु उन स्थानों में मासकल्प या चतुर्मास करके फिर वहीं ठहरा रहे तो कालातिक्रम दोष होता है और वह स्थान कालातिक्रान्त क्रिया वाली वसति कहा जाता है। साधु को इसमें ठहरना नहीं कल्पता।

(२) उपस्थान क्रिया—ऊपर लिखे स्थानों में मासकल्प या चतुर्मास करने के बाद उससे दुगुना या तिगुना समय दूसरी जगह बिताए बिना साधु फिर उसी स्थान में आकर ठहर जाय

तो वह स्थान उपस्थान क्रिया नामक दोष वाला होता है। साधु को वहाँ ठहरना नहीं कल्पता।

(३) अभिक्रान्त क्रिया–संसार में बहुत से गृहस्थ और स्त्रियाँ भोले होते हैं। उन्हें मुनि के आचार का अधिक ज्ञान नहीं होता। मुनि को दान देने से महाफल होता है, इस बात पर उनकी दृढ श्रद्धा और रुचि होती है। इसी श्रद्धा और रुचि से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि दीन तथा भाट चारण आदि के रहने के लिए वे बड़े बड़े मकान बनवाते हैं। जैसे कि—

(१) लोहार के कारखाने (२) देवालयों की बाजु के ओरड़े (३) देवस्थान (४) सभागृह (५) पानी पिलाने की प्याऊ (६) दूकानें (७) माल रखने के गोदाम (८) रथ आदि सवारी रखने के स्थान (९) यानशाला अर्थात् रथ आदि बनाने के स्थान (१०) चूना बनाने के कारखाने (११) दर्भ के कारखाने (१२) वध्र अर्थात् चमड़े से मढ़ी हुई मजबूत रस्सियाँ बनाने के कारखाने (१३) वल्कल अर्थात् छाल आदि बनाने के कारखाने (१४) कोयले बनाने के कारखाने (१५) लकड़ी के कारखाने (१६) वनस्पति के कारखाने (१७) श्मशान में बने हुए मकान (१८) सूने घर (१९) पहाड़ पर बने हुए घर (२०) गुफाएं (२१) शान्तिकर्म करने के लिए एकान्त में बने हुए स्थान (२२) पत्थर के बने हुए मण्डप (२३) भवनगृह अर्थात् बंगले।

ऐसे स्थानों में यदि चरक ब्राह्मण आदि पहले आकर उतर जायँ तो बाद में जैन साधु उतर सकते हैं। यह स्थान अभिक्रान्त क्रिया वाली वसति कहा जाता है। इसमें साधु ठहर सकता है।

(४) अनभिक्रान्त क्रिया—यदि ऊपर लिखे अनुसार श्रमण, ब्राह्मण आदि के लिए बनाई गई वसतियों में पहले चरक ब्राह्मण आदि न उतरे हों तो वह वसति अनभिक्रान्त क्रिया दोष वाली

होती है। उसमें उतरना साधु को नहीं कल्पता।

(५) वर्ज्यक्रिया (वज्रक्रिया) यदि ऊपर लिखी वसतियों को साधुओं का आचार जानने वाला गृहस्थ अपने लिए बनवावे किन्तु उन्हें साधुओं को देकर अपने लिये दूसरी बनवा लेवे। इस प्रकार साधुओं को देता हुआ अपने लिए नई नई वसतियाँ बनवाता जाय तो वे सब वसतियाँ वर्ज्यक्रिया (वज्रक्रिया) वाली होती हैं। उनमें ठहरना साधु को नहीं कल्पता।

(६) महावर्ज्य क्रिया (महावज्रक्रिया)-श्रमण ब्राह्मण आदि के लिए बनाए गए मकान में उतरने से महावर्ज्य (महावज्र) क्रिया दोष आता है और वह स्थान महावर्ज्य क्रिया (महावज्र क्रिया) वाली वसति माना जाता है। इसमें भी साधु को उतरना नहीं कल्पता।

(७) सावद्य क्रिया--यदि कोई भोला गृहस्थ या स्त्री श्रमणों के निमित्त मकान बनवावे तो उसमें उतरने से सावद्यक्रिया दोष लगता है। वह वसति सावद्यक्रिया वाली होती है। साधु को वहाँ उतरना नहीं कल्पता। श्रमण शब्द में पाँच प्रकार के साधु लिये जाते हैं--निर्ग्रन्थ (जैन साधु), शाक्य (बौद्ध), तापस (अज्ञानी तपस्वी), गेरुक (भगवें कपड़ों वाले), आजीवक (गोशाला के साधु)।

(८) महासावद्य क्रिया--यदि गृहस्थ किसी विशेष साधु को लक्ष्य करके पृथ्वी आदि छहों कायों के आरम्भ से मकान बनवावे और वही साधु उसमें आकर उतरे तो महासावद्यक्रिया दोष है। ऐसी वसति में उतरने वाला नाम मात्र से साधु है, वास्तव में वह गृहस्थ ही है। साधु को उसमें उतरना नहीं कल्पता।

(९) अल्पक्रिया-जिस मकान को गृहस्थ अपने लिए बनवावे, संयम की रक्षा के लिए अपने कल्पानुसार यदि साधु वहाँ जाकर उतरे तो वह अल्पक्रिया वाली अर्थात् निर्दोष वसति है। उसमें उतरना साधु को कल्पता है।

(आचारांग श्रु० २ चू० १ अ० २ उ० २)

६२४—सूयगडांग सूत्र के तेईस अध्ययन

सूयगडांग सूत्र दूसरा अङ्ग सूत्र है। इसके दो श्रुतस्कन्ध हैं। प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन हैं और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सात अध्ययन हैं। तेईस अध्ययन के नाम इस प्रकार हैं—

(१) समयाध्ययन (२) वैतालीयाध्ययन (३) उपसर्गाध्ययन (४) स्त्रीपरिज्ञाध्ययन (५) नरकविभक्त्यध्ययन (६) श्रीमहावीर स्तुति (७) कुशीलपरिभाषा (८) वीर्याध्ययन (९) धर्माध्ययन (१०) समाधिअध्ययन (११) मार्गाध्ययन (१२) समवसरणाध्ययन (१३) याथातथ्याध्ययन (१४) ग्रन्थाध्ययन (१५) आदानीयाध्ययन (१६) गाथाध्ययन। (१७) पौण्डरीकाध्ययन (१८) क्रियास्थानाध्ययन (१९) आहारपरिज्ञाध्ययन (२०) प्रत्याख्यानाध्ययन (२१) आचारश्रुताध्ययन (२२) आर्द्रकाध्ययन (२३) नालन्दीयाध्ययन।

इसी ग्रन्थ के चौथे भाग में बोल नं० ७७६ में ग्यारह अङ्गों का विषय वर्णन है-उसमें सूयगडांग सूत्र का विषय भी संक्षेप में दिया गया है। (समवायांग २३)

६२५—क्षेत्र परिमाण के तेईस भेद

(१) सूक्ष्मपरमाणु—पुद्गल द्रव्य के सबसे छोटे अंश को, जिसका दूसरा भाग न हो सके, सूक्ष्मपरमाणु कहते हैं।

(२) व्यावहारिक परमाणु—अनन्तानन्त सूक्ष्म पुद्गलों का एक व्यावहारिक परमाणु होता है।

(३) उसण्हसण्हिया—अनन्त व्यावहारिक परमाणुओं का एक उसण्हसण्हिया (उत्श्लक्ष्ण श्लक्ष्णिका) नामक परिमाण होता है।

(४) सण्हसण्हिया—आठ उसण्हसण्हिया मिलने से एक सण्हसण्हिया (श्लक्ष्ण श्लक्ष्णिका) नाम का परिमाण होता है।

(५) ऊर्ध्वरेणु—आठ सण्हसण्हिया का एक ऊर्ध्वरेणु होता है।

(६) त्रसरेणु—आठ ऊर्ध्वरेणु मिलने पर एक त्रसरेणु होता है।

(७) रथरेणु—आठ त्रसरेणु मिलने पर एक रथरेणु होता है।

(८) वालाग्र—आठ रथरेणु मिलने पर देवकुरु उत्तरकुरु के मनुष्यों का एक वालाग्र होता है।

(९) देवकुरु उत्तरकुरु के मनुष्यों के आठ वालाग्र मिलने पर हरिवर्ष और रम्यकवर्ष के मनुष्यों का एक बालाग्र होता है।

(१०) हरिवर्ष रम्यकवर्ष के मनुष्यों के आठ वालाग्र मिलने पर हैमवत और हैरण्यवत के मनुष्यों का एक वालाग्र होता है।

(११) हैमवत और हैरण्यवत के मनुष्यों के आठ वालाग्र से पूर्वविदेह और पश्चिमविदेह के मनुष्यों का एक वालाग्र होता है।

(१२) पूर्वविदेह और पश्चिम विदेह के मनुष्यों के आठ वालाग्र मिलने पर भरत और ऐरवत के मनुष्यों का एक वालाग्र होता है।

(१३) लिक्षा—भरत और ऐरवत के आठ वालाग्र मिलने पर एक लिक्षा (लीख) होती है।

(१४) यूका—आठ लिक्षाओं की एक यूका होती है।

(१५) यवमध्य—आठ यूकाओं का एक यवमध्य होता है।

(१६) अंगुल—आठ यवमध्य का एक अंगुल होता है।

(१७) पाद—छह अंगुलों का एक पाद (पैर का मध्य भाग) होता है।

(१८) वितस्ति—बारह अंगुलों की एक वितस्ति या बिलांत होती है।

(१९) रत्नि—चौवीस अंगुलों की एक रत्नि (मुंडा हाथ) होती है।

(२०) कुक्षि—अड़तालीस अंगुल की एक कुक्षि होती है।

(२१) दण्ड—छयानवे अंगुल का एक दण्ड होता है। इसी को धनुष, युग, नालिका, अक्ष या मुसल कहा जाता है।

(२२) गव्यूति—दो हजार धनुष की गव्यूति (कोस) होती है।

(२३) योजन—चार गव्यूति का एक योजन होता है।

(अनुयोगद्वार सू० १३३ पृ० १६०–१६२) (प्रवचन सा० द्वार २५४ गा० १३९ टी० १०)

६१६—पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय

श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, इनके क्रमशः शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श विषय हैं। शब्द के तीन, रूप के पाँच, गन्ध के दो, रस के पांच और स्पर्श के आठ भेद होते हैं ये कुल मिलाकर तेईस हैं। नाम ये हैं।

(१-३) श्रोत्रेन्द्रिय के तीन विषय--जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द। (४-८) चक्षुइन्द्रिय के पांच विषय-- काला, नीला लाल, पीला और सफेद। (९-१०) घ्राणेन्द्रिय के दो विषय-सुगन्ध और दुर्गन्ध। (११-१५) रसनाइन्द्रिय के पांच विषय-तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा। (१६-२३) स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय-कर्कश, मृदु, लघु, गुरु, स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण।

पाँच इन्द्रियों के २४० विकार होते हैं। वे इस प्रकार हैं—

श्रोत्रेन्द्रिय के बारह-जीव शब्द, अजीव शब्द, मिश्र शब्द ये तीन शुभ और तीन अशुभ। इन छः पर राग और छः पर द्वेष, ये श्रोत्रेन्द्रिय के बारह विकार हैं।

चक्षुइन्द्रिय के साठ--ऊपर लिखे पाँच विषयों के सचित्त अचित्त और मिश्र के भेद से पन्द्रह और शुभ अशुभ के भेद से तीस। तीस पर राग और तीस पर द्वेष होने से साठ विकार होते हैं।

घ्राणेन्द्रिय के बारह--ऊपर लिखे दो विषयों के सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से छह। इन छह के राग और द्वेष के भे दसे बारह भेद होते हैं।

रसनेन्द्रिय के साठ--चक्षुइन्द्रिय के समान हैं।

स्पर्शनेन्द्रिय के छयानवे--आठ विषयों के सचित्त, अचित्त और मिश्र के भेद से चौबीस। शुभ और अशुभ के भेद से अड़तालीस। ये अड़तालीस राग और द्वेष के भेद से छयानवे होते हैं।

इस प्रकार कुल मिलाकर २४० विकार हो जाते हैं।

(ठा० ५ उ० ३ सू० ४४३) (ठाणांग १ सू० ४७) (ठाणांग ५ उ० १ सू० ३६०) (ठाणांग ८ उ० ३ सू० ५९६) (पन्नवणा पद १५ सू० १९३) (पच्चीस बोल का थोकड़ा—१२ वा बोल) (तत्वार्थ सू० अ० २ सू० २१)

चौबीसवां बोल संग्रह

९२७—गत उत्सर्पिणी के चौबीस तीर्थङ्कर

गत उत्सर्पिणी काल में जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में चौबीस तीर्थङ्कर हुए थे। उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) केवलज्ञानी (२) निर्वाणी (३) सागर जिन (४) महायश (५) विमल (६) नाथसुतेज (सर्वानुभूति) (७) श्रीधर (८) दत्त (९) दामोदर (१०) सुतेज (११) स्वामिजिन (१२) शिवाशी (मुनिसुव्रत) (१३) सुमति (१४) शिवगति (१५) अबाध (अस्ताग) (१६) नाथनेमीश्वर (१७) अनिल (१८) यशोधर (१९) जिनकृतार्थ (२०) धर्मीश्वर (जिनेश्वर) (२१) शुद्धमति (२२) शिवकरजिन (२३) स्यन्दन (२४) सम्प्रतिजिन।

(प्रवचनसारोद्धार द्वार ७ गा० २८८—२९०)

९२८—ऐरवत क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी के चौबीस तीर्थङ्कर

वर्तमान अवसर्पिणी में ऐरवत क्षेत्र में चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं। उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

१ चन्द्रानन २ सुचन्द्र ३ अग्निसेन ४ नंदिसेन (आत्मसेन) ५ ऋषिदिन्न ६ व्रतधारी ७ श्यामचन्द्र (सोमचन्द) ८ युक्तिसेन (दीर्घबाहु, दीर्घसेन) ९ अजितसेन (शतायु) १० शिवसेन सत्यसेन, सत्यकि) ११ देवशर्मा (देवसेन) १२ निक्षिप्तशस्त्र (श्रेयांस) १३

असंज्वल (स्वयंजल) १४ अनन्तक (सिंहसेन) १५ उपशान्त १६ गुप्तिसेन १७ अतिपार्श्व १८ सुपार्श्व १९ मरुदेव २० धर २१ श्यामकोष्ठ २२ अग्निसेन (महासेन) २३ अग्निपुत्र २४ वारिसेन

समवायांग के टीकाकार कहते हैं कि दूसरे ग्रन्थों में चौवीसी का यह क्रम और तरह से भी मिलता है।

(समवायांग १५९) (प्रवचनसारोद्धार द्वार ७ गा० २९६-२९८)

९२९—वर्तमान अवसर्पिणी के २४ तीर्थङ्कर

वर्तमान अवसर्पिणी काल में भरतक्षेत्र में चौवीस तीर्थङ्कर हुए हैं। उनके नाम ये हैं—

(१) श्री ऋषभदेवस्वामी (श्रीआदिनाथस्वामी) (२) श्री-अजितनाथ स्वामी (३) श्री संभवनाथ स्वामी (४) श्रीअभिनन्दन स्वामी (५) श्री सुमतिनाथ स्वामी (६) श्री पद्मप्रभस्वामी (७) श्री सुपार्श्वनाथस्वामी (८) श्रीचन्द्रप्रभस्वामी (९) श्रीसुविधिनाथस्वामी [श्रीपुष्पदंतस्वामी] (१०) श्रीशीतलनाथस्वामी (११) श्रीश्रेयांसनाथ स्वामी (१२) श्री वासुपूज्यस्वामी (१३) श्री विमलनाथस्वामी (१४) श्री अनन्तनाथस्वामी (१५) श्रीधर्मनाथस्वामी (१६) श्री शान्तिनाथस्वामी (१७) श्रीकुंथुनाथस्वामी (१८) श्रीअरनाथस्वामी (१९) श्रीमल्लिनाथस्वामी (२०) श्रीमुनिसुव्रतस्वामी (२१) श्री नमिनाथस्वामी (२२) श्रीअरिष्टनेमिस्वामी (२३) श्री पार्श्वनाथस्वामी (२४) श्रीमहावीरस्वामी (श्रीवर्धमानस्वामी)

आगे इन्हीं चौवीस तीर्थङ्करों का यन्त्र दिया जाता है। उसमें प्रत्येक तीर्थङ्कर सम्बन्धी २७ बोल दिये गये हैं:—

नाम—	श्रीऋषभदेवस्वामी	श्रीअजितनाथस्वामी
१ च्यवन तिथि	आषाढ़ वदी ४	वैसाख सुदी १३
२ विमान	सर्वार्थसिद्ध	विजय विमान
३ जन्म नगरी	इक्ष्वाकुभूमि	अयोध्या
४ जन्म तिथि	चैत वदी ८	माघ सुदी ८
५ माता का नाम	मरुदेवी	विजया देवी
६ पिता का नाम	नाभि	जितशत्रु
७ लांछन	वृषभ	गज
८ शरीर मान[1]	५०० धनुष	४५० धनुष
९ कँवर पद	२० लाख पूर्व	१८ लाख पूर्व
१० राज्य काल	६३ लाख पूर्व	५३ लाख पूर्व १ पूर्वांग
११ दीक्षातिथि	चैत वदी ८	माघ सुदी ९
१२ पारणे का स्थान[2]	हस्तिनापुर	अयोध्या
१३ दाता का नाम	श्रेयांस	ब्रह्मदत्त
१४ छद्मस्थ काल	१००० वर्ष	१२ वर्ष
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	फाल्गुन वदी ११	पौष सुदी ११
१६ गणधर संख्या	८४	९५
१७ प्रथम गणधर	ऋषभसेन (पुंडरीक)	सिंहसेन
१८ साधु संख्या	८४ हजार	१ लाख
१९ साध्वी संख्या	३ लाख	३ लाख ३० हजार
२० प्रथम आर्या	ब्राह्मी	फल्गु[3]
२१ श्रावक संख्या	३ लाख ५ हजार	२ लाख ९८ हजार
२२ श्राविका संख्या	५ लाख ५४ हजार	५ लाख ४५ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	१ लाख पूर्व	१ पूर्वांग कम १ लाख पूर्व
२४ निर्वाण तिथि	माघ वदी १३	चैत सुदी ५
२५ मोक्ष परिवार	१० हजार	१ हजार
२६ आयुमान	८४ लाख पूर्व	७२ लाख पूर्व
२७ अन्तर मान	०	५० लाख कोटि सागर

---

१ उत्सेधांगुल से। २ पारणे से यहाँ दीक्षा के बाद का प्रथम पारणा लिया गया है। ३ फाल्गुनी (सप्ततिशत स्थान प्रकरण)

श्रीसंभवनाथस्वामी	श्रीअभिनन्दनस्वामी	श्रीसुमतिनाथस्वामी
फाल्गुन सुदी ८	वैशाख सुदी ४	सावण सुदी २
सप्तम ग्रैवेयक	जयन्त विमान	जयन्त विमान
श्रावस्ती	अयोध्या	अयोध्या
मिगसिर सुदी १४	माघ सुदी २	वैशाख सुदी ८
सेना	सिद्धार्था	मंगला
जितारि	संवर	मेघ
अश्व	वानर	क्रौञ्च
४०० धनुष	३५० धनुष	३०० धनुष
१५ लाख पूर्व	१२॥ लाख पूर्व	१० लाख पूर्व
४४लाख पूर्व ४ पूर्वांग	३६॥लाख पूर्व ८ पूर्वांग	२६ लाख पूर्व १२ पूर्वांग
मिगसिर सुदी १५	माघ सुदी १२	वैसाख सुदी ६
श्रावस्ती	अयोध्या	विजयपुर
सुरेंद्रदत्त	इन्द्रदत्त	पद्म
१४ वर्ष	१८ वर्ष	२० वर्ष
काती वदी ५	पौष सुदी १४	चैत सुदी ११
१०२	११६	१००
चारु (चारूरू)	वज्रनाभ	चमर
२ लाख	३ लाख	३ लाख २० हजार
३ लाख ३६ हजार	६ लाख ३० हजार	५ लाख ३० हजार
श्यामा	अजिता	काश्यपी
२ लाख ६३ हजार	२ लाख ८८ हजार	२ लाख ८१ हजार
६ लाख ३६ हजार	५ लाख २७ हजार	५ लाख १६ हजार
४पूर्वांग कम १लाख पूर्व	८पूर्वांग कम १लाख पूर्व	१२पूर्वांग कम १लाखपूर्व
चैत सुदी ५	वैसाख सुदी ८	चैत सुदी ६
१ हजार	१ हजार	१ हजार
६० लाख पूर्व	५० लाख पूर्व	४० लाख पूर्व
३० लाख कोटि सागर	१० लाख कोटि सागर	६ लाख कोटि सागर

नाम—	श्रीपद्मप्रभस्वामी	श्रीसुपार्श्वनाथस्वामी
१ च्यवन तिथि	माह वदी ६	भादवा वदी ८
२ विमान	नवम ग्रैवेयक	षष्ठ ग्रैवेयक
३ जन्मनगरी	कौशाम्बी	वाराणसी
४ जन्म तिथि	काती वदी १२	जेठ सुदी १२
५ माता का नाम	सुसीमा	पृथ्वी
६ पिता का नाम	धर	प्रतिष्ठ
७ लांछन	कमल (रक्त पद्म)	स्वस्तिक
८ शरीर मान	२५० धनुष	२०० धनुष
९ कंवर पद	७। लाख पूर्व	५ लाख पूर्व
१० राज्य काल	२१॥लाख पूर्व १६पूर्वांग	१४लाख पूर्व २० पूर्वांग
११ दीक्षातिथि	काती वदी १३	जेठ सुदी १३
१२ पारणे का स्थान	ब्रह्मस्थल	पाटलिखंड
१३ दाता का नाम	सोमदेव	माहेन्द्र
१४ छद्मस्थ काल	६ मास	९ मास
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	चैत सुदी १५	फाल्गुन वदी ६
१६ गणधर संख्या	१०७	९५
१७ प्रथम गणधर	सुव्रत[1]	विदर्भ
१८ साधु संख्या	३ लाख ३० हजार	३ लाख
१९ साध्वी संख्या	४ लाख २० हजार	४ लाख ३० हजार
२० प्रथम आर्या	रति	सोमा
२१ श्रावक संख्या	२ लाख ७६ हजार	२ लाख ५७ हजार
२२ श्राविका संख्या	५ लाख ५ हजार	४ लाख ९३ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	१६पूर्वांग कम १लाख पूर्व	२० पूर्वांग कम १लाखपूर्व
२४ निर्वाण तिथि	मिगसिर वदी ११	फाल्गुन वदी ७
२५ मोक्ष परिवार	३०८	५००
२६ आयुमान	३० लाख पूर्व	२० लाख पूर्व
२७ अन्तर मान	९० हजार कोटि सागर	९ हजार कोटि सागर

१ सुद्योत (सप्ततिशतस्थान प्र० १०३ द्वार), प्रद्योत (प्रवचन० ८ वां द्वार)

श्रीचन्द्रप्रभस्वामी	श्रीसुविधिनाथस्वामी	श्रीशीतलनाथस्वामी
चैत वदी ५	फाल्गुन वदी ६	वैसाख वदी ६
वैजयन्त	आनतदेवलोक	प्राणत देवलोक
चन्द्रपुरी	काकन्दी	भद्दिलपुर
पौष वदी १२	मिगसर वदी ५	माह वदी १२
लक्ष्मणा (लक्षणा)	रामा	नन्दा
महासेन	सुग्रीव	दृढ़रथ
चन्द्र	मकर	श्रीवत्स
१५० धनुष	१०० धनुष	६० धनुष
२॥ लाख पूर्व	५० हजार पूर्व	२५ हजार पूर्व
६॥लाख पूर्व २४ पूर्वांग	५० हजार पूर्व २८ पूर्वांग	५० हजार पूर्व
पौष वदी १३	मिगसिर वदी ६	माह वदी १२
पद्मखंड	श्वेतपुर (श्रेयपुर)	रिष्टपुर
सोमदत्त	पुष्य	पुनर्वसु
३ मास	४ मास	३ मास
फाल्गुन वदी ७	काती सुदी ३	पौष वदी १४
६३	८८	८१
दिन्न[1]	वराह	आनन्द (प्रभुनन्द)
२॥ लाख	२ लाख	१ लाख
३ लाख ८० हजार	१ लाख २० हजार	१ लाख ६
सुमना	वारुणी	सुलसा (सुयशा)
२ लाख ५० हजार	२ लाख २६ हजार	२ लाख ८६ हजार
४ लाख ६१ हजार	४ लाख ७१ हजार	४ लाख ५८ हजार
२४पूर्वांग कम १लाख पूर्व	२८पूर्वांग कम १लाखपूर्व	२५ हजार पूर्व
भादवा वदी ७	भादवा सुदी ६	वैसाख वदी २
१०००	१०००	१०००
१० लाख पूर्व	२ लाख पूर्व	१ लाख पूर्व
९०० कोटि सागर	९० कोटि सागर	६ कोटि सागर

[1] दत्तप्रभव (प्रवचनसारोद्धार)

नाम—	श्रीश्रेयांसनाथस्वामी	श्री वासुपूज्यस्वामी
१ च्यवनतिथि	जेठ वदी ६	जेठ सुदी ६
२ विमान	अच्युत देवलोक	प्राणत देवलोक
३ जन्मनगरी	सिंहपुर	चम्पा
४ जन्म तिथि	फाल्गुन वदी १२	फाल्गुन वदी १४
५ माता का नाम	विष्णु	जया
६ पिता का नाम	विष्णु	वासुपूज्य
७ लांछन	खड्गी (गैंडा)	महिष
८ शरीर मान	८० धनुष	७० धनुष
९ कवर पद	२१ लाख वर्ष	१८ लाख वर्ष
१० राज्य काल	४२ लाख वर्ष	०
११ दीक्षातिथि	फाल्गुन वदी १३	फाल्गुन वदी १५
१२ पारणे का स्थान	सिद्धार्थपुर	महापुर
१३ दाता का नाम	नन्द	सुनन्द
१४ छद्मस्थ काल	२ मास	१ मास
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	माह वदी १५	माह सुदी २
१६ गणधर संख्या	७६	६६
१७ प्रथम गणधर	कौस्तुभ	सुधर्मा (सुभूम)
१८ साधु संख्या	८४ हजार	७२ हजार
१९ साध्वी संख्या	१ लाख ३ हजार	१ लाख
२० प्रथम आर्या	धारिणी	धरणी
२१ श्रावक संख्या	२ लाख ७९ हजार	२ लाख १५ हजार
२२ श्राविका संख्या	४ लाख ४८ हजार	४ लाख ३६ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	२१ लाख वर्ष	५४ लाख वर्ष
२४ निर्वाण तिथि	सावण वदी ३	आषाढ़ सुदी १४
२५ मोक्ष परिवार	१०००	६००
२६ आयुमान	८४ लाख वर्ष	७२ लाख वर्ष
२७ अन्तर मान	कुछ कम १ कोटिसागर[1]	५४ सागर

१—१०० सागर ६६ लाख २६ हजार वर्ष कम एक कोटि सागर

श्रीविमलनाथस्वामी	श्रीअनन्तनाथस्वामी	श्री धर्मनाथस्वामी
वैसाख सुदी १२	सावण वदी ७	वैसाख सुदी ७
सहस्रार देवलोक	प्राणत देवलोक	विजय विमान
कम्पिलपुर	अयोध्या	रत्नपुर
माह सुदी ३	वैसाख वदी १३	माह सुदी ३
श्यामा	सुयशा	सुव्रता
कृतवर्मा	सिंहसेन	भानु
वराह	श्येन	वज्र
६० धनुष	५० धनुष	४५ धनुष
१५ लाख वर्ष	७॥ लाख वर्ष	२॥ लाख वर्ष
३० लाख वर्ष	१५ लाख वर्ष	५ लाख वर्ष
माह सुदी ४	वैसाख वदी १४	माह सुदी १३
धान्यकर	वर्द्धमानपुर	सौमनस
जय	विजय	धर्मसिंह
२ मास	३ वर्ष	२ वर्ष
पौष सुदी ६	वैसाख वदी १४	पौष सुदी १५
५७	५०	४३
मन्दर	यश	अरिष्ट
६८ हजार	६६ हजार	६४ हजार
१ लाख ८००	६२ हजार	६२४००
धरणीधरा(धरा)	पद्मा	आर्या शिवा
२ लाख ८ हजार	२ लाख ६ हजार	२ लाख ४ हजार
४ लाख २४ हजार	४ लाख १४ हजार	४ लाख १३ हजार
१५ लाख वर्ष	७॥ लाख वर्ष	२॥ लाख वर्ष
आषाढ़ वदी ७	चैत सुदी ५	जेठ सुदी ५
६०००	७०००	१०८
६० लाख वर्ष	३० लाख वर्ष	१० लाख वर्ष
३० सागर	६ सागर	४ सागर

नाम—	श्रीशान्तिनाथस्वामी	श्रीकुन्थुनाथस्वामी
१ च्यवन तिथि	भादवा वदी ७	सावण वदी ९
२ विमान	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध
३ जन्म नगरी	गजपुर	गजपुर
४ जन्म तिथि	जेठ वदी १३	वैसाख वदी १४
५ माता का नाम	अचिरा	श्री
६ पिता का नाम	विश्वसेन	सूर
७ लांछन	हरिण	अज (बकरा)
८ शरीर मान	४० धनुष	३५ धनुष
९ कवर पद	२५ हजार वर्ष	२३७५० वर्ष
१० राज्य काल	५० हजार वर्ष[१]	४७॥ हजार वर्ष[२]
११ दीक्षा तिथि	जेठ वदी १४	वैसाख वदी ५
१२ पारणे का स्थान	मन्दिरपुर	चक्रपुर
१३ दाता का नाम	सुमित्र	व्याघ्रसिंह
१४ छद्मस्थ काल	१ वर्ष	सोलह वर्ष
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	पौष सुदी ९	चैत सुदी ३
१६ गणधर संख्या	३६	३५
१७ प्रथम गणधर	चक्रायुद्ध	स्वयम्भू (शम्ब)
१८ साधु संख्या	६२ हजार	६० हजार
१९ साध्वी संख्या	६१६००	६०६००
२० प्रथम आर्या	श्रुति (शुभा)	दामिनी
२१ श्रावक संख्या	२ लाख ९० हजार	१ लाख ७९ हजार
२२ श्राविका संख्या	३ लाख ९३ हजार	३ लाख ८१ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	२५ हजार वर्ष	२३७५० वर्ष
२४ निर्वाण तिथि	जेठ वदी १३	वैसाख वदी १
२५ मोक्ष परिवार	९००	१०००
२६ आयुमान	१ लाख वर्ष	९५ हजार वर्ष
२७ अन्तर मान	पौन पल्य कम तीन सागर	आधा पल्योपम

१—२५ हजार वर्ष मांडलिक राजा और २५ हजार वर्ष चक्रवर्ती रहे।
२—२३॥ हजार वर्ष मांडलिक राजा और २३॥ हजार वर्ष चक्रवर्ती रहे।

श्री अरनाथ स्वामी	श्रीमल्लिनाथ स्वामी	श्रीमुनिसुव्रतस्वामी
फाल्गुन सुदी २	फाल्गुन सुदी ४	सावण सुदी पूर्णिमा
सर्वार्थसिद्ध	जयन्त	अपराजित
गजपुर	मिथिला	राजगृह
मिगसिर सुदी १०	मिगसिर सुदी ११	जेठ वदी ८
देवी	प्रभावती	पद्मा
सुदर्शन	कुम्भ	सुमित्र
नन्द्यावर्त्त	कलश	कूर्म
३० धनुष	२५ धनुष	२० धनुष
२१ हजार वर्ष	१०० वर्ष	७५०० वर्ष
४२ हजार वर्ष[1]	०	१५ हजार वर्ष
मिगसर सुदी ११	मिगसिर सुदी ११	फाल्गुन सुदी १२
राजपुर	मिथिला	राजगृह
अपराजित	विश्वसेन	ब्रह्मदत्त
३ वर्ष[2]	१ अहोरात्र	११ मास
काती सुदी १२	मिगसिर सुदी ११	फाल्गुन वदी १२
३३	२८	१८
कुम्भ	इन्द्र (भिषज)	कुम्भ (मल्लि)
५० हजार	४० हजार	३० हजार
६००००	५५०००	५००००
रक्षी (रक्षिता)	बन्धुमती	पुष्पवती
१ लाख ८४ हजार	१ लाख ८३ हजार	१ लाख ७२ हजार
३ लाख ७२ हजार	३ लाख ७० हजार	३ लाख ५० हजार
२१ हजार वर्ष	५४९०० वर्ष	७५०० वर्ष
मिगसिर सुदी १०	फाल्गुन सुदी १२	जेठ वदी ९
१०००	५००	१०००
८४ हजार वर्ष	५५ हजार वर्ष	३० हजार वर्ष
कोटि सहस्र वर्षकम पाधपल्य	एककोटि सहस्रवर्ष	५४ लाख वर्ष

१-२१ हजार वर्ष मांडलिक राजा और २१ हजार वर्ष चक्रवर्ती रहे।
२-तीन अहोरात्र (आवश्यक मलयगिरिकृत)

नाम—	श्री नेमिनाथ स्वामी	श्री अरिष्टनेमि स्वामी
१ च्यवन तिथि	आसोज सुदी १५	काती वदी १२
२ विमान	प्राणत देवलोक	अपराजित
३ जन्म नगरी	मिथिला	सौर्यपुर
४ जन्म तिथि	सावण वदी ८	सावण सुदी ५
५ माता का नाम	वप्रा	शिवा
६ पिता का नाम	विजय	समुद्र विजय
७ लांछन	नीलोत्पल	शंख
८ शरीर मान	१५ धनुष	१० धनुष
९ कंवर पद	२५०० वर्ष	३०० वर्ष
१० राज्य काल	५००० वर्ष	०
११ दीक्षा तिथि	आषाढ़ वदी ९	सावण सुदी ६
१२ पारणे का स्थान	वीरपुर	द्वारवती
१३ दाता का नाम	दिन्न	वरदत्त
१४ छद्मस्थ काल	नौ मास	५४ दिन
१५ ज्ञानोत्पत्ति तिथि	मिगसिर सुदी ११	आसोज वदी १५
१६ गणधर संख्या	१७	११
१७ प्रथम गणधर	शुभ (शुम्भ)	वरदत्त
१८ साधु संख्या	२० हजार	१८ हजार
१९ साध्वी संख्या	४१०००	४००००
२० प्रथम आर्या	अनिला	यक्षदत्ता
२१ श्रावक संख्या	१ लाख ७० हजार	१ लाख ६९ हजार
२२ श्राविका संख्या	३ लाख ४८ हजार	३ लाख ३६ हजार
२३ दीक्षा पर्याय	२५०० वर्ष	७०० वर्ष
२४ निर्वाण तिथि	वैशाख वदी १०	आषाढ़ सुदी ८
२५ मोक्ष परिवार	१०००	५३६
२६ आयुमान	१० हजार वर्ष	१ हजार वर्ष
२७ अन्तर मान[1]	६ लाख वर्ष	५ लाख वर्ष

१ नोट—जिस तीर्थंकर के नीचे अन्तर दिया है वह उसके पूर्ववर्ती तीर्थंकर के निर्वाण के इतने समय बाद सिद्ध हुआ ऐसा समझना चाहिये।

श्री पार्श्वनाथ स्वामी	श्री महावीर स्वामी	प्रमाणग्रन्थ[1]
चैत वदी ४	आषाढ़ सुदी ६	स० १४
प्राणत देवलोक	प्राणत देवलोक	स० १२
वाराणसी	कुण्डपुर	स० २८, आ० ह० ३८२-३८४
पौष वदी १०	चैत सुदी १३	स० २१
वामा	त्रिशला	स०२६,सम०१५७,आ०ह० ३८५ से
अश्वसेन	सिद्धार्थ	स०३०,सम०१५७,आ०ह० ३८७ से
सर्प	सिंह	स० ४२, प्र० ७६
६ हाथ	७ हाथ	स०५०,प्र०२८,आ०ह०३७८-३८०
३० वर्ष	३० वर्ष	स०५४,आ०ह०२७७-२९९
०	०	स०५५,आ०ह०२७७-२९९
पौष वदी ११	मिगसिर वदी १०	स० ५६
कोपकट	कोल्लाग सन्निवेश	स०७६,आ०ह०३२३-३२५
धन्य	बहुल	स०७७,सम०१५७,आ०ह०३२६से
८४ दिन	१२वर्ष (१२॥ वर्ष)	स०८४,आ०म०२६०-२६२
चैत वदी ४	वैसाखसुदी१०	स०८७,आ०ह०२४१-२५२
१०	११	स०१११,आ०ह०२६६-२६९
दत्त (आर्यदत्त)	इन्द्रभूति	स० १०३, सम० १५७, प्र० ८
१६ हजार	१४ हजार	स०११२,प्र०१६,आ०ह०२५६-२५९
३८०००	३६०००	स०११३,प्र०१७,आ०ह०२६०-२६३
पुष्पचूला	चन्दना	स०१०४,प्र०९,सम०१५७
१लाख ६४ हजार	१लाख ५९हजार	स० ११४, प्र० २४
३लाख ३९ हजार	३लाख १८हजार	स० ११५, प्र० २५
७० वर्ष	४२ वर्ष	स० १४५,आ०ह०२७२-२७६
सावण सुदी ८	काती वदी १५	स० १४७
३३	एकाकी	स० १५४, प्र० ३३
सौ वर्ष	७२ वर्ष	स० १४६, प्र० ३२,आ०ह० ३०३ से
८३७५० वर्ष	२५० वर्ष	स० १६५, प्र० ३५,आ०ह० पृष्ठ१६३

[1] स०-सप्ततिशतस्थान द्वार। सम०-समवायांग। आ० ह०-हरिभद्रीयावश्यक गाथा। आ० म०-आवश्यक मलयगिरि गाथा। प्र०-प्रवचनसारोद्धार द्वार

यन्त्र में चौबीस तीर्थङ्करों के सम्बन्ध में २७ बातें दी गई हैं इनके अतिरिक्त और कुछ ज्ञातव्य बातें यहाँ दी जाती हैं:—

तीर्थङ्कर की माताएं चौदह उत्तम स्वप्न देखती हैं--

गय वसह सीह अभिसेय दाम ससि दिणयरं भयं कुंभं।
पउमसर सागर विमाण भवण रयणऽग्गि सुविणाइं॥

भावार्थ-गज, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी का अभिषेक, पुष्पमाला चन्द्र, सूर्य, ध्वजा, कुम्भ, पद्म सरोवर, सागर, विमान या भवन, रत्न राशि, निर्धूम अग्नि—ये चौदह स्वप्न हैं।

णरय उवट्ठाणं इहं भवणं सग्गच्चुयाण उ विमाणं।
वीरुसह सेस जणणी, नियंसु ते हरि विसह गयाइं॥

भावार्थ-नरक से आये हुए तीर्थङ्करों की माताएं चौदह स्वप्नों में भवन देखती हैं एवं स्वर्ग से आये हुए तीर्थङ्करों की माताएं भवन के बदले विमान देखती हैं। भगवान् महावीर स्वामी की माता ने पहला सिंह का, भगवान् ऋषभदेव की माता ने पहला वृषभ का एवं शेष तीर्थङ्करों की माताओं ने पहला हाथी का स्वप्न देखा था

(सप्ततिशत स्थान प्रकरण १८ द्वार गाथा ७८—७९)

तीर्थङ्करों के गोत्र एवं वंश

गोयम गुत्ता हरिवंस संभवा नेमिसुव्वया दो वि।
कासव गोत्ता इक्खागु वंसजा सेस बावीसा॥

भावार्थ-भगवान् नेमिनाथस्वामी और मुनिसुव्रत स्वामी ये दोनों गौतम गोत्र वाले थे और इन्होंने हरिवंश में जन्म लिया था। शेष बाईस तीर्थङ्करों का गोत्र काश्यप था और इक्ष्वाकु वंश में उनका जन्म हुआ था। (सप्ततिशत स्थान प्रकरण ३७—३८ द्वार गाथा १०५)

तीर्थंकरों का वर्ण

पउमाभ वासुपुज्जा रत्ता ससि पुप्फदंत ससिगोरा।
सुव्वयनेमी काला पासो मल्ली पियंगाभा॥

वरतवियकणयगोरा सोलस तित्थंकरा मुणेयव्वा ॥
एसो वण्णविभागो चउवीसाए जिणिंदाणं ॥

भावार्थ–पद्मप्रभ स्वामी और वासुपूज्य स्वामी रक्त वर्ण के थे। चन्द्रप्रभस्वामी और सुविधिनाथ स्वामी चन्द्रमा के समान गौर वर्ण के थे। श्री मुनिसुव्रत स्वामी और नेमिनाथ स्वामी का कृष्ण वर्ण था तथा श्रीपार्श्वनाथ स्वामी और मल्लिनाथ स्वामी का नील वर्ण था। शेष तीर्थङ्करों का वर्ण तपाये हुए सोने के समान था, यह चौबीसों जिनेश्वर देवों का वर्ण विभाग हुआ। (आ० ह० गाथा ३७६,३७७) (प्रवचन द्वार ३०)

तीर्थङ्करों का विवाह

भगवान् मल्लिनाथ स्वामी और अरिष्टनेमि स्वामी अविवाहित रहे। शेष बाईस तीर्थङ्करों ने विवाह किया था। कहा भी है—

मल्लि नेमि मुत्तुं तेसिं विवाहो य भोगफला।

अर्थात्–श्री मल्लिनाथ स्वामी और अरिष्टनेमि स्वामी के सिवाय शेष तीर्थंकरों का विवाह हुआ क्योंकि उनके भोगफल वाले कर्म शेष थे। (सप्ततिशत स्थान प्रकरण ५३ द्वार, गाथा ३४)

दीक्षा की अवस्था

वीरो अरिट्ठनेमी पासो मल्ली य वासुपुज्जो य।
पढमवए पव्वइया सेसा पुण पच्छिम वयम्मि ॥

भावार्थ–भगवान् महावीर स्वामी, अरिष्टनेमि स्वामी, पार्श्वनाथ स्वामी, मल्लिनाथ स्वामी और वासुपूज्य स्वामी इन पाँचों तीर्थंकरों ने प्रथम वय–कुमारावस्था में दीक्षा ली। शेष तीर्थंकर पिछली वय में प्रव्रजित हुए। (आ० ह० गा० २२६)

गृहवास में और दीक्षा के समय ज्ञान

मइ सुय ओहि तिण्णाणा जाव गिहे पच्छिम भवाओ।

पिछले भव से लेकर यावत् गृहवास में रहने तक सभी तीर्थंकरों के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ये तीनों ज्ञान होते हैं। (सप्ततिशत० द्वार ४४)

इसी ग्रन्थ में आगे ७१ द्वार में कहा है—

"जायं च चउत्थं मण णाणं"

अर्थात्—दीक्षा ग्रहण करने के समय सभी तीर्थंकरों को चौथा मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हुआ।

दीक्षा नगर

उसभो य विणीयाए बारवईए अरिट्ठवरणेमी।
अवसेसा तित्थयरा णिक्खंता जम्मभूमीसु॥

भावार्थ—भगवान् ऋषभदेव स्वामी ने विनीता में और अरिष्ट नेमिनाथ स्वामी ने द्वारका में दीक्षा धारण की। शेष तीर्थंकर अपनी जन्म भूमि में प्रव्रजित हुए। (आ० ६० गाथा २२६) (समवायांग १५७)

दीक्षा वृक्ष

सभी तीर्थंकर अशोक वृक्ष के नीचे प्रव्रजित हुए जैसे कि—
'णिक्खंता असोगतरुतले सव्वे' (सप्ततिशत० ६८ द्वार)

दीक्षा तप

सुमइत्थ णिच्च भत्तेण णिग्गओ वासुपुज्ज चउत्थेण।
पासो मल्ली वि य अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेणं॥

भावार्थ—सुमतिनाथ स्वामी नित्य भक्त से और वासुपूज्य स्वामी उपवास तप से दीक्षित हुए। श्रीपार्श्वनाथ स्वामी और मल्लिनाथ स्वामी ने तेला तप कर दीक्षा ली। शेष बीस तीर्थंकरों ने बेला तप पूर्वक प्रव्रज्या धारण की। (प्र० सा० ४२ द्वार) (समवायांग १५७)

दीक्षा परिवार

एगो भगवं वीरो पासो मल्ली य तिहि तिहिं सएहिं।
भगवंपि वासुपुज्जो छहि पुरिससएहि णिक्खतो॥
उग्गाणं भोगाणं रायण्णाणं च खत्तियाणं च
चउहिं सहस्सेहिं उसहो सेसा उ सहस्स परिवारा॥

भावार्थ—भगवान् महावीरस्वामी ने अकेले दीक्षा ली। श्री पार्श्वनाथ

स्वामी और मल्लिनाथस्वामी * ने तीन तीन सौ पुरुषों के साथ दीक्षा ली। भगवान् वासुपूज्यस्वामी ने ६०० पुरुषों के साथ गृहत्याग किया। भगवान् ऋषभदेव स्वामी ने उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय कुल के चार हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ली। शेष उन्नीस तीर्थंकर एक एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षित हुए। (प्र० सा० ३१ द्वार) (समवायाग १५७)

प्रथम पारणे का समय

संवच्छरेण भिक्खा लद्धा, उसमेण लोगणाहेण।
सेसेहिं बीयदिवसे, लद्धाओ पढमभिक्खाओ॥

भावार्थ—त्रिलोकीनाथ भगवान् ऋषभदेव स्वामी को एक वर्ष के बाद भिक्षा प्राप्त हुई। शेष तीर्थङ्करों को दीक्षा के दूसरे ही दिन प्रथमभिक्षा का लाभ हुआ। (आ० म० १ ख० गा० ३४२)(समवायाग १५७)

प्रथम पारणे का आहार

उसभस्स पढमभिक्खा खोयरसो आसि लोगणाहस्स।
सेसाणं परमण्णं अमियरसोवमं आसि॥

भावार्थ—लोकनाथ भगवान् ऋषभदेव स्वामी के पारणे में इक्षुरस था और शेष तीर्थंकरों के पारणे में अमृतरस के सदृश स्वादिष्ट क्षीरान्न था। (आ० म० १ ख० गा० ३४३) (समवायाग १५७)

केवलोत्पत्तिस्थान

वीरोसहनेमीणं, जंभियबहिपुरिमताल उज्जिते।
केवलणाणुप्पत्ती, सेसाणं जम्मट्ठाणे तु॥

भावार्थ-वीर भगवान् को जृम्भिक के बाहर (ऋजुवालिका नदी के तीर पर) केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान् ऋषभदेव स्वामी

* श्री मल्लिनाथ स्वामी ने तीन सौ पुरुष और तीन सौ स्त्रियां इस प्रकार ६०० के परिवार से दीक्षा ली थी किन्तु सभी जगह एक ही की तीन सौ संख्या ली गई है।

और अरिष्टनेमि नाथ स्वामी को क्रमशः पुरिमताल नगर और रैवतक पर्वत पर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। शेष तीर्थंकरों को अपने अपने जन्म स्थानों में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। (सप्ततिशत० ६० द्वार)

केवलज्ञान तप

अट्ठम भत्तंतम्मि, पासोसहमल्लिरिट्ठ नेमीणं ।
वासुपुज्जस्स चउत्थेण छट्ठभत्तेण उ सेसाणं ॥

भावार्थ—श्री पार्श्वनाथ स्वामी, ऋषभदेवस्वामी, मल्लिनाथस्वामी, और अरिष्टनेमि नाथ स्वामी को अष्टमभक्त—तीन उपवास के अन्त में तथा वासुपूज्य स्वामी को उपवास तप में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। शेष तीर्थंकरों को बेले के तप में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

(आ० म० १ खंड गा० २७७)

केवलज्ञान वेला

णाणं उसहाईणं, पुव्वण्हे पच्छिमण्हि वीरस्स ।

भावार्थ—ऋषभदेव स्वामी आदि तेईस तीर्थंकरों को प्रथमप्रहर में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और चौवीसवें तीर्थंकर श्री महावीर भगवान् को अन्तिम प्रहर में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। (सप्ततिशत० ६५ द्वार)

तीर्थोत्पत्ति

तित्थं चाउव्वण्णो, संघो सो पढमए समोसरणे ।
उप्पण्णोउ जिणाणं, वीरजिणिंदस्स बीयम्मि ॥

भावार्थ—ऋषभदेव स्वामी आदि तेईस तीर्थंकरों के प्रथम समवसरण में ही तीर्थ (प्रवचन) एवं चतुर्विध संघ उत्पन्न हुए। श्री वीर भगवान् के दूसरे समवसरण में तीर्थ एवं संघ की स्थापना हुई।

(आ० म० १ खंड गा० २८७)

निर्वाण तप

निव्वाणमंतकिरिया सा चोद्दसमेण पढमणाहस्स ।
सेसाणं मासिएणं वीरजिणिंदस्स छट्ठेणं ॥ १ ॥

भावार्थ—आदिनाथ श्री ऋषभदेव स्वामी की निर्वाण रूप

अन्तक्रिया छः उपवास पूर्वक हुई। दूसरे से तेईसवें तीर्थङ्करों की अन्तक्रिया एक मास के उपवास के साथ हुई। श्री वीर स्वामी का निर्वाण बेले के तप से हुआ। (आ० म० १ ख० गा० ३२८)

निर्वाणस्थान

अट्ठावय चंपुज्जेंत, पावा सम्मेय सेल सिहरेसु।
उसभ वासुपुज्ज, नेमी वीरो सेसा य सिद्धिं गया।

श्री ऋषभदेव स्वामी, वासुपूज्य स्वामी, अरिष्टनेमि स्वामी, वीर स्वामी और शेष अजितनाथ स्वामी आदि बीस तीर्थङ्कर क्रमशः अष्टापद, चम्पा, रैवतक, पावा और सम्मेत पर्वत पर सिद्ध हुए।

(आ० म० १ ख० गा० ३२९)

मोक्षासन

वीरोसहनेमीणं पलियंकं सेसाण य उस्सग्गो।

भावार्थ—मोक्ष जाते समय श्री महावीरस्वामी, ऋषभदेवस्वामी, और अरिष्टनेमिस्वामी के पर्यंक आसन था। शेष तीर्थङ्कर उत्सर्ग (कायोत्सर्ग) आसन से मोक्ष पधारे। (सप्ततिशत १५१ द्वार)

तीर्थङ्करों की भव संख्या

वर्तमान अवसर्पिणी काल के २४ तीर्थङ्कर भगवान् को सम्यक्त्व प्राप्त होने के बाद जितने भव के पश्चात् वे मोक्ष पधारे उनकी भव-संख्या इस प्रकार है :—

ऋषभदेव स्वामी की भव संख्या १३, शान्तिनाथ स्वामी की १२, अरिष्टनेमि स्वामी की ९, पार्श्वनाथ स्वामी की १०, महावीर स्वामी की २७ और शेष तीर्थङ्करों की भवसंख्या ३ है।

—(जैन तत्त्वादर्श पूर्वार्द्ध पृ० ३८ से ७३)

बीस बोलों में से किसकी आराधना कर तीर्थङ्कर गोत्र बांधा ?

पढम चरमेहिं पुट्ठा, जिणहेऊ बीस ते अ इमे।
सेसेहिं फासिया पुण एगं दो तिण्णि सव्वे वा।

भावार्थ—प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव स्वामी और चरम तीर्थङ्कर श्री

महावीर स्वामी ने तीर्थङ्कर गोत्र बांधने के बीस बोलों की आराधना की थी और शेष तीर्थङ्करों ने एक, दो, तीन या सभी बोलों की आराधना की थी। तीर्थंकर गोत्र बांधने के बीस बोल इसी भाग में बोल नं० ६०२ में दिये गये हैं। (सप्ततिशत द्वार ११)

तीर्थंकरों के पूर्वभव का श्रुतज्ञान

पढमो दुवालसंगी सेसा इक्कार संग सुत्तधरा ॥

भावार्थ—प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी पूर्वभव में द्वादशांग सूत्रधारी और तेईस तीर्थंकर ग्यारह अंग सूत्रधारी हुए।

(सप्ततिशत द्वार १०)

तीर्थंकरों के जन्म एवं मोक्ष के आरे

संखिज्ज कालरूवे तइयऽरयंते उसह जम्मो ॥
अजियस्स चउत्थारयमज्झे पच्छद्धे संभवाईणं ।
तस्संते अराईणं जिणाण जम्मो तहा मुक्खो ॥

भावार्थ—संख्यातकाल रूप तीसरे आरे के अन्त में भगवान् ऋषभदेव स्वामी का जन्म और मोक्ष हुआ चौथे आरे के मध्य में श्री अजितनाथ स्वामी का जन्म और मोक्ष हुआ। चौथे आरे के पिछले आधे भाग में श्रीसंभवनाथ स्वामी से लेकर श्री कुंथुनाथ स्वामी और मुक्त हुए। चौथे आरे के अंतिम भाग में श्री अरनाथस्वामी से श्रीवीर स्वामी तक सात तीर्थंकरों का जन्म और मोक्ष हुआ।

(सप्ततिशत २५ द्वार)

तीर्थोच्छेद काल

पुरिमंऽतिमअट्ठऽट्ठंतरेसु, तित्थस्स नत्थि वुच्छेओ ।
मज्झिल्लएसु सत्तसु, एत्तियकालं तु वुच्छेओ ॥ ४३२ ॥
चउभागो चउभागो तिण्णि य चउभाग पलिय चउभागो ।
तिण्णेव य चउभागा चउत्थभागो य चउभागो ॥ ४३३ ॥

भावार्थ—चौवीस तीर्थंकरों के तेईस अन्तर हैं। श्रीऋषभदेवस्वामी से लेकर श्री सुविधिनाथ स्वामी पर्यन्त नौ तीर्थंकरों के आदिम आठ

अन्तर में और श्री शान्तिनाथ स्वामी से श्रीवीरस्वामी पर्यन्त नौ तीर्थंकरों के अन्तिम आठ अन्तर में तीर्थ का विच्छेद नहीं हुआ। श्रीसुविधिनाथ स्वामी से श्री शान्तिनाथ स्वामी पर्यन्त आठ तीर्थंकरों के मध्यम सात अन्तर में नीचे लिखे समय के लिये तीर्थ का विच्छेद हुआ।

१. श्री सुविधिनाथ और शीतलनाथ का अन्तर पाव पल्योपम
२. श्री शीतलनाथ और श्रेयांसनाथ का अन्तर पाव पल्योपम
३. श्री श्रेयांसनाथ और वासुपूज्य का अन्तर पौन पल्योपम
४. श्री वासुपूज्य और विमलनाथ का अन्तर पाव पल्योपम
५. श्री विमलनाथ और अनन्तनाथ का अन्तर पौन पल्योपम
६. श्री अनन्तनाथ और धर्मनाथ का अन्तर पाव पल्योपम
७. श्री धर्मनाथ और शान्तिनाथ का अन्तर पाव पल्योपम

भगवती शतक २० उद्देशे ८ में तेईस अन्तरों में से आदि और अंत के आठ आठ अन्तरों में कालिक श्रुत का विच्छेद न होना कहा गया है। और मध्य के सात अन्तरों में कालिक श्रुत का विच्छेद होना बतलाया है। दृष्टिवाद का विच्छेद तो सभी तीर्थंकरों के अन्तर काल में हुआ है। (प्रवचन सारोद्धार ३६ द्वार)

तीर्थंकरों के तीर्थ में चक्रवर्ती और वासुदेव

तीर्थंकर के समकालीन जो चक्रवर्ती, वासुदेव आदि होते हैं वे उनके तीर्थ में कहे जाते हैं। जो दो तीर्थंकरों के अन्तर काल में होते हैं वे अतीत तीर्थंकर के तीर्थ में समझे जाते हैं।

दो तित्थेस सचक्कि अट्ठ य जिणा तो पंच केसी जुया।
दो चक्काहिव- तिण्णि चक्कि अ जिणा तो केसि चक्की हरी॥
तित्थेसो इग, तो सचक्कि अ जिणो केसी सचक्की जिणो।
चक्की केसव संजुओ जिणवरो, चक्की अ तो दो जिणा।

भावार्थ—श्री ऋषभदेव स्वामी और अजितनाथ स्वामी ये दो

तीर्थङ्कर क्रमशः भरत और सगर चक्रवर्ती सहित हुए। इनके बाद तीसरे संभवनाथ स्वामी से लेकर दसवें शीतलनाथ स्वामी तक आठ तीर्थंकर हुए। तदनन्तर श्री श्रेयांसनाथ स्वामी, वासुपूज्य स्वामी, विमलनाथ स्वामी, अनन्तनाथ स्वामी और धर्मनाथ स्वामी, ये पांच तीर्थङ्कर वासुदेव सहित हुए अर्थात् इनके समय में क्रमशः त्रिपृष्ट, द्विपृष्ट, स्वयंभू, पुरुषोत्तम और पुरुषसिंह ये पांच वासुदेव हुए। धर्मनाथ स्वामी के बाद मघवा और सनत्कुमार चक्रवर्ती हुए। बाद में पांचवें शान्तिनाथ, छठे कुन्थुनाथ और सातवें अरनाथ चक्रवर्ती हुए और ये ही तीनों क्रमशः सोलहवें, सत्रहवें और अठारहवें तीर्थङ्कर हुए। फिर क्रमशः छठे पुरुषपुण्डरीक वासुदेव, आठवें सुभूम चक्रवर्ती और सातवें दत्त वासुदेव हुए। बाद में उन्नीसवें श्री मल्लिनाथ स्वामी तीर्थंकर हुए। इनके बाद बीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रत स्वामी और नववें महापद्म चक्रवर्ती एक साथ हुए। बीसवें तीर्थंकर के बाद आठवें लक्ष्मण वासुदेव हुए। इनके पीछे इक्कीसवें नेमिनाथ तीर्थंकर हुए एवं इन्हीं के समकालीन दसवें हरिषेण चक्रवर्ती हुए। हरिषेण के बाद ग्यारहवें जय चक्रवर्ती हुए। इसके बाद बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि और नववें कृष्ण वासुदेव एक साथ हुए। बाद में बारहवें ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती हुए। ब्रह्मदत्त के बाद तेईसवें पार्श्वनाथस्वामी और चौबीसवें महावीरस्वामी हुए। (सप्ततिशत१७०द्वार)

नोट—सप्ततिशतस्थान प्रकरण में तीर्थङ्कर सम्बन्धी १७० बोल हैं।

(समवायांग १५७) (हरिभद्रीयावश्यक गा० २०६–३६०) (आवश्यक मलयगिरि गा० २३१ से ३८६) (सप्ततिशतस्थान प्रकरण)(प्रवचन सारोद्धार द्वार ७ से ४५)

६३०—भरतक्षेत्र के आगामी २४ तीर्थङ्कर

आगामी उत्सर्पिणी में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में चौवीस तीर्थंकर होंगे। उनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) महापद्म (पद्मनाथ) (२) सूरदेव (३) सुपार्श्व (४) स्वयंप्रभ (५) सर्वानुभूति (६) देवश्रुत (७) उदय (८) पेढालपुत्र (९) पोट्टिल (१०) शतकीर्ति (११) मुनिसुव्रत (१२) अमम (१३) निष्कषाय (१४) निष्पुलाक (१५) निर्मम (१६) चित्रगुप्त (१७) समाधि जिन (१८) संवरक (१९) यशोधर (२०) विजय (२१) मल्लि (२२) देवजिन (२३) अनन्तवीर्य (२४) भद्रजिन।

(समवायांग १५८ वां समवाय) (प्रवचनसारोद्धार ७ वा द्वार गा० २९३-२९५)

६३१–ऐरवत क्षेत्र के आगामी २४ तीर्थङ्कर

आने वाले उत्सर्पिणी काल में जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में चौवीस तीर्थंकर होंगे। उनके नाम नीचे लिखे अनुसार है—

(१) सुमङ्गल (२) सिद्धार्थ (३) निर्वाण (४) महायश (५) धर्मध्वज (६) श्रीचन्द्र (७) पुष्पकेतु (८) महाचन्द्र (९) श्रुतसागर (१०) सिद्धार्थ (११) पुण्यघोष (१२) महाघोष (१३) सत्यसेन (१४) शूरसेन (१५) महासेन (१६) सर्वानन्द (१७) देवपुत्र (१८) सुपार्श्व (१९) सुव्रत (२०) सुकोशल (२१) अनन्तविजय (२२) विमल (२३) महाबल (२४) देवानन्द।

(समवायांग १५८ वा समवाय)(प्रवचनसारोद्धार ७ वा द्वार गा० ३००-३०२)

६३२–सूयगडांग सूत्र के दसवें समाधि अध्ययन की चौवीस गाथाएं

सूयगडांग सूत्र में दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले श्रुतस्कन्ध में सोलह अध्ययन हैं और दूसरे में सात। पहले श्रुतस्कन्ध के दसवें अध्ययन का नाम समाधि अध्ययन हैं। इसमें आत्मा को सुख देने वाले धर्म का स्वरूप बताया गया है। इसमें चौवीस गाथाएं हैं, जिनका भावार्थ लिखे अनुसार है—

(१) मतिमान् भगवान् महावीर स्वामी ने अपने केवलज्ञान

द्वारा जानकर सरल और मोक्ष प्राप्त कराने वाले धर्म का उपदेश दिया है उस धर्म को आप लोग सुनो। तप करते हुए ऐहिक और पारलौकिक फल की इच्छा न करने वाला, समाधि प्राप्त भिक्षुक प्राणियों का आरंभ न करते हुए शुद्ध संयम का पालन करे।

(२) ऊँची, नीची तथा तिर्छी दिशा में जितने त्रस और स्थावर प्राणी हैं, अपने हाथ पैर और काया को वश कर साधु को उन्हें किसी तरह से दुःख न देना चाहिए, तथा उसे दूसरे द्वारा बिना दी हुई वस्तु ग्रहण न करनी चाहिए।

(३) श्रुतधर्म और चारित्र धर्म को यथार्थ रूप से कहने वाला, सर्वज्ञ के वाक्यों में शङ्का से रहित, प्रासुक आहार से शरीर का निर्वाह करने वाला, उत्तम तपस्वी साधु समस्त प्राणियों को अपने समान मानता हुआ संयम का पालन करे। चिरकाल तक जीने की इच्छा से आश्रवों का सेवन करे तथा भविष्य के लिए किसी वस्तु का सञ्चय न करे।

(४ साधु अपनी समस्त इन्द्रियों को स्त्रियों के मनोज्ञ शब्दादि विषयों की ओर जाने से रोके। बाह्य तथा आभ्यन्तर सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर संयम का पालन करे। ससार में भिन्न भिन्न जाति के सभी प्राणियों को दुःख से व्याकुल तथा संतप्त होते हुए देखे।

(५) अज्ञानी जीव पृथ्वीकाय आदि प्राणियों को कष्ट देता हुआ पाप कर्म करता है और उसका फल भोगने के लिए पृथ्वी-काय आदि में बार बार उत्पन्न होता है। जीव हिंसा स्वयं करना तथा दूसरे द्वारा कराना दोनों पाप हैं।

(६) जो व्यक्ति कंगाल, भिखारी आदि के समान करुणा जनक धंधा करता है वह भी पाप करता है, यह जानकर तीर्थङ्करों ने भावसमाधि का उपदेश दिया है। विचारशील व्यक्ति समाधि

तथा विवेक में रहते हुए अपनी आत्मा को धर्म में स्थिर करे एवं प्राणातिपात से निवृत्त होवे।

(७) साधु समस्त संसार को समभाव से देखे। किसी का प्रिय या अप्रिय न करे। प्रव्रज्या अंगीकार करके भी कुछ साधु परीषह और उपसर्ग आने पर कायर बन जाते हैं। अपनी पूजा और प्रशंसा के अभिलाषी बनकर संयम मार्ग से गिर जाते हैं।

(८) जो व्यक्ति दीक्षा लेकर आधाकर्मी आहार चाहता है तथा उसे प्राप्त करने के लिए भ्रमण करता है वह कुशील बनना चाहता है। जो अज्ञानी स्त्रियों में आसक्त है और उनकी प्राप्ति के लिये परिग्रह का सञ्चय करता है वह पाप की वृद्धि करता है।

(९) जो पुरुष प्राणियों की हिंसा करता हुआ उनके साथ वैर बाँधता है वह पाप की वृद्धि करता है तथा मर कर नरक आदि दुःखों को प्राप्त करता है। इसलिए विद्वान् मुनि धर्म पर विचार कर सब अनर्थों से रहित होता हुआ संयम का पालन करे।

(१०) साधु इस संसार में चिरकाल तक जीने की इच्छा से द्रव्य का उपार्जन न करे। स्त्री पुत्र आदि में अनासक्त होता हुआ संयम में प्रवृत्ति करे। प्रत्येक बात विचार कर कहे, शब्दादि विषयों में आसक्ति न रखे तथा हिंसा युक्त कथा न करे।

(११) साधु आधाकर्मी आहार की इच्छा न करे तथा आधाकर्मी आहार की इच्छा करने वाले के साथ अधिक परिचय न रक्खे। कर्मों की निर्जरा के लिए शरीर को सुखा डाले। शरीर की परवाह न करते हुए शोक रहित होकर संयम का पालन करे।

(१२) साधु एकत्व की भावना करे, क्योंकि एकत्व भावना से ही निःसङ्गपना प्राप्त होता है। एकत्व की भावना ही मोक्ष है। जो इस भावना से युक्त होकर क्रोध का त्याग करता है, सत्यभाषण करता है तथा तप करता है वही पुरुष सब से श्रेष्ठ है।

(१३) जो व्यक्ति मैथुन सेवन नहीं करता तथा परिग्रह नहीं रखता, नाना प्रकार के विषयों में राग द्वेष रहित होकर जीवों की रक्षा करता है वह निःसन्देह समाधि को प्राप्त करता है।

(१४) रति अरति को छोड़कर साधु तृण आदि के स्पर्श, शीतस्पर्श, उष्णस्पर्श तथा दंशमशक के स्पर्श को सहन करे तथा सुगन्ध और दुर्गन्ध को समभाव पूर्वक सहन करे।

(१५) जो साधु वचन से गुप्त है वह भाव समाधि को प्राप्त है। साधु शुद्ध लेश्या को ग्रहण करके संयम का पालन करे। वह स्वयं घर का निर्माण या संस्कार न करे, न दूसरे से करावे तथा स्त्रियों का संसर्ग न करे।

(१६) जो लोग आत्मा को अक्रिय मानते हैं तथा दूसरे के पूछने पर मोक्ष का उपदेश देते हैं, स्नानादि सावद्य क्रियाओं में आसक्त तथा लौकिक बातों में गृद्ध वे लोग मोक्ष के कारण भूत धर्म को नहीं जानते।

(१७) मनुष्यों की रुचि भिन्न भिन्न होती है। इसलिए कोई क्रियावाद को मानते हैं और कोई अक्रियावाद को मोक्ष के हेतु भूत यथार्थ धर्म को न जानते हुए ये लोग आरम्भ में लगे रहते हैं और रसलोलुप होकर पैदा हुए बाल प्राणी के शरीर का नाश कर अपने आत्मा को सुख पहुँचाते हैं। ऐसा करके संयम रहित ये अज्ञानी जीव वैर की ही वृद्धि करते हैं।

(१८) मूर्ख प्राणी अपनी आयु के क्षय को नहीं देखता। वह बाह्य वस्तुओं पर ममत्व करता हुआ पाप कर्म में लीन रहता है। दिन रात वह शारीरिक मानसिक दुःख सहन करता रहता है और अपने को अजर अमर मान कर धनादि में आसक्त रहता है।

(१९) धन और पशु आदि सभी वस्तुओं का ममत्व छोड़ो। माता पिता आदि बान्धव व इष्ट मित्र वस्तुतः किसी का कुछ नहीं

कर सकते। फिर भी प्राणी उनके लिये रोता है और मोह को प्राप्त होता है। उसके धन को अवसर पाकर दूसरे लोग छीन लेते हैं।

(२०) जिस प्रकार क्षुद्र प्राणी सिंह से डरते हुए दूर ही से निकल जाते हैं, इसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष धर्म को विचार कर पाप को दूर ही से छोड़ देवे।

(२१) धर्म के तत्त्व को समझने वाला बुद्धिमान् व्यक्ति हिंसा से पैदा होने वाले दुःखों को वैरानुबन्धी तथा महाभयदायी जान कर अपनी आत्मा को पाप से अलग रक्खे।

(२२) सर्वज्ञ के वचनों पर विश्वास करने वाला मुनि कभी झूठ न बोले। असत्य का त्याग ही सम्पूर्ण समाधि और मोक्ष है। साधु किसी सावद्य कार्य को न स्वयं करे, न दूसरे से करावे और न करने वाले को भला समझे।

(२३) शुद्ध आहार मिल जाने पर उसके प्रति राग द्वेष करके साधु चारित्र को दूषित न करे। स्वादिष्ट आहार में मूर्छा या अभिलाषा न रक्खे। धैर्यवान् और परिग्रह से मुक्त हो अपनी पूजा प्रतिष्ठा या कीर्ति की कामना न करता हुआ शुद्ध संयम का पालन करे।

(२४) दीक्षा लेने के बाद साधु, जीवन की इच्छा न करता हुआ शरीर का ममत्व छोड़ दे। नियाणा न करे। जीवन या मरण की इच्छा न करता हुआ भिक्षु सांसारिक बन्धनों से मुक्त होकर विचरे।
(सूयगडांग सूत्र १ श्रुत० १० अध्ययन)

९३३–विनय समाधि अध्य० की २४ गाथाएं

दशवैकालिक सूत्र के नवें अध्ययन का नाम विनयसमाधि अध्ययन है। इस में शिष्य को विनय धर्म की शिक्षा दी गई है। इसमें चार उद्देशे हैं। पहले उद्देशे में सत्रह गाथाएं हैं जिन्हें इसी ग्रन्थ के पञ्चम भाग के बोल नं० ८७७ में दिया जा चुका है। दूसरे उद्देशे में चौवीस गाथाएं हैं। तीसरे में पन्द्रह गाथाएं हैं उनका

भावार्थ पञ्चम भाग के बोल नं० ८५३ में दिया जा चुका है। दूसरे उद्देशे की चौवीस गाथाओं का भावार्थ नीचे लिखे अनुसार है–

(१) वृक्ष के मूल से स्कन्ध की उत्पत्ति होती है, स्कन्ध से शाखाएं उत्पन्न होती हैं, शाखाओं से प्रशाखाएं (टहनियाँ), प्रशाखाओं से पत्ते और इसके पश्चात् फूल, फल और रस पैदा होते हैं।

(२) धर्म का मूल विनय है और मोक्ष उत्कृष्ट फल है। विनय से ही कीर्ति श्रुत और श्लाघा वगैरह सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती है।

(३) जो क्रोधी, अज्ञानी, अहंकारी, कटुवादी, कपटी, सयम से विमुख और अविनीत पुरुष होते हैं। वे जल प्रवाह में पड़े हुए काष्ठ के सामान संसार समुद्र में बह जाते हैं।

(४) जो व्यक्ति किसी उपाय से विनय धर्म में प्रेरित किये जाने पर क्रोध करता है, वह मूर्ख आती हुई दिव्य लक्ष्मी को डन्डा लेकर खदेड़ता है।

(५ हाथी घोड़े आदि सवारी के पशु भी अविनीत होने पर दण्डनीय बन जाते हैं और विविध दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं।

(६) इसके विपरीत विनय युक्त हाथी, घोड़े आदि सवारी के पशु ऋद्धि तथा कीर्ति को प्राप्त करके सुख भोगते हुए देखे जाते हैं।

(७) इसी प्रकार विनय रहित नर और नारियाँ कोड़े आदि की मार से व्याकुल तथा नाक कान आदि इन्द्रिय के कट जाने से विरूप होकर दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं।

(८) अविनीत लोग दण्ड और शस्त्र के प्रहार से घायल, असभ्य वचनों द्वारा तिरस्कृत, दीनता दिखाते हुए, पराधीन तथा भूख प्यास आदि की असह्य वेदना से व्याकुल देखे जाते हैं।

(९) संसार में विनीत स्त्री और पुरुष सुख भोगते हुए, समृद्धि सम्पन्न तथा महान् यश कीर्ति वाले देखे जाते हैं।

(१०) मनुष्यों के समान, देव, यक्ष और गुह्यक (भवनपति) भी

अविनीत होने से दासता को प्राप्त हो दुःख भोगते हुए देखे जाते हैं।

(११) इसके विपरीत विनय युक्त देव, यक्ष तथा गुह्यक ऋद्धि तथा महायश को प्राप्त करके सुख भोगते हुए देखे जाते हैं।

(१२) जो आचार्य तथा उपाध्याय की शुश्रूषा करता है और आज्ञा पालता है उसकी शिक्षा पानी से सींचे हुए वृक्षों के समान बढ़ती है।

(१३) गृहस्थ लौकिक भोगों के लिए, आजीविका या दूसरों का हित करने के लिए शिल्प तथा लौकिक कलाएं सीखते हैं।

(१४) शिक्षा को ग्रहण करते हुए कोमल शरीर वाले राजकुमार आदि भी बन्ध, वध तथा भयंकर यातनाओं को सहते हैं।

(१५) इस प्रकार ताड़ित होते हुए भी राजकुमार आदि शिल्प शिक्षा सीखने के लिए गुरु की पूजा करते हैं। उनका सत्कार सन्मान करते हैं। उन्हें नमस्कार करते तथा उनकी आज्ञा पालन करते हैं।

(१६) लौकिक शिक्षा ग्रहण करने वाले भी जब इस प्रकार विनय का पालन करते हैं तो मोक्ष की कामना करने वाले श्रुतग्राही भिक्षु का क्या कहना ? उसे तो आचार्य जो कुछ कहे, उसका उल्लंघन कभी न करना चाहिए।

(१७) शिष्य का कर्तव्य है कि वह अपनी शय्या, गति, स्थान और आसन आदि सब नीचे ही रक्खे। नीचे झुक कर पैरों में नमस्कार करे और नीचे झुक कर विनय पूर्वक हाथ जोड़े।

(१८) यदि कभी असावधानी से आचार्य के शरीर या उपकरणों का स्पर्श (संघट्टा) हो जाय तो उसके लिए नम्रता पूर्वक कहे—भगवन् ! मेरा अपराध क्षमा कीजिए, फिर ऐसा नहीं होगा।

(१९) जिस प्रकार दुष्ट बैल बार बार चाबुक द्वारा ताड़ित होकर रथ को खींचता है, इस प्रकार दुर्बुद्धि शिष्य बार बार कहने पर धार्मिक क्रियाओं को करता है।

(२०) गुरु द्वारा एक या अधिक बार बुलाये जाने पर बुद्धिमान्

शिष्य अपने आसन पर बैठा बैठा उत्तर न दे किन्तु आसन छोड़ कर गुरु की बात को अच्छी तरह सुने और फिर विनय पूर्वक उत्तर देवे।

(२१) बुद्धिमान् शिष्य का कर्तव्य है कि मनोगत अभिप्रायों तथा सेवा करने के समुचित उपायों को नाना हेतुओं से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार जानकर समुचित प्रकार से गुरु की सेवा करे।

(२२) अविनीत को विपत्ति तथा विनीत को सम्पत्ति प्राप्त होती है। जो ये दो बातें जानता है वही शिक्षा को प्राप्त कर सकता है।

(२३) जो व्यक्ति क्रोधी, बुद्धि और ऋद्धि का घमण्ड करने वाला, चुगलखोर, साहसी, बिना विचारे कार्य करने वाला, गुरु की आज्ञा नहीं मानने वाला, धर्म से अपरिचित, विनय से अनभिज्ञ तथा असंविभागी होता है उसे किसी प्रकार मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता।

(२४) जो महापुरुष गुरु की आज्ञानुसार चलने वाले, धर्म और अर्थ के जानने वाले तथा विनय में चतुर हैं वे इस संसार रूपी दुरुत्तर सागर को पार करके तथा कर्मों का क्षय करके उत्तम गति को प्राप्त हुए हैं। (दशवैकालिक ९ वा अध्ययन, २ उद्देशा)

९३४—दण्डक चौवीस

स्वकृत कर्मों के फल भोगने के स्थान को दण्डक कहते हैं। संसारी जीवों के चौवीस दण्डक हैं। यथा——

नेरइया असुराई पुढवाई बेइंदियादओ चेव।
पंचिंदिय तिरिय नरा विंतर जोइसिअ वेमाणी॥

अर्थ——सात नरकों का एक दण्डक, असुरकुमार आदि दस भवनपतियों के दस दण्डक, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय इन पाँच एकेन्द्रियों के पाँच दण्डक, बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय इन तीन विकलेन्द्रियों के तीन

दण्डक, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय का एक दण्डक, मनुष्य का एक दण्डक, वाणव्यन्तर देवों का एक दण्डक, ज्योतिषी देवों का एक दण्डक और वैमानिक देवों का एक दण्डक इस प्रकार ये चौवीस दण्डक होते हैं। इनकी क्रमशः गिनती इस प्रकार है—

(१) सात नरक (२) असुरकुमार (३) नागकुमार (४) सुवर्ण कुमार (५) विद्युत्कुमार (६) अग्निकुमार (७) द्वीपकुमार (८) उदधिकुमार (९) दिशाकुमार (१०) वायुकुमार (११) स्तनित कुमार (१२) पृथ्वीकाय (१३) अप्काय (१४) तेउकाय (१५) वायुकाय (१६) वनस्पतिकाय (१७) बेइन्द्रिय (१८) तेइन्द्रिय (१९) चतुरिन्द्रिय (२०) तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय (२१) मनुष्य (२२) वाणव्यन्तर (२३) ज्योतिषी (२४) वैमानिक।

ये संसारी जीवों के चौवीस दण्डक हैं। दण्डकों की अपेक्षा जीवों के चौवीस भेद कहे जाते हैं।

(ठाणांग १ उद्देशा १ सू० ५१ टीका) (भगवती शतक १ उद्देशा १ की टीका)

९३५—धान्य के चौवीस प्रकार

धान्य के नीचे लिखे चौवीस भेद हैं:—

धण्णाइं चउव्वीसं जव गोहुम सालि वीहि सट्ठीआ।
कोद्दव अणुया कंगू रालग तिल मुग्ग मासा य॥
अयसि हरिमंथ तिउडग णिप्फाव सिलिंद रायमासा य।
इक्खू मसूर तुवरी कुलत्थ तह धण्णग कलाया॥

(१) यव—जौ (२) गोधूम—गेहूं (३) शालि—एक प्रकार के चाँवल (४) व्रीहि—एक प्रकार का धान्य (५) षष्ठीक—साठे चाँवल (६) कोद्रव—कोंदों (७) अणुक—चाँवल की एक जाति (८) कंगु—कांगनी (९) रालग—माल कांगनी (१०) तिल—तिल (११) मुद्ग—मूंग (१२) माष—उड़द (१३) अतसी—अलसी (१४) हरिमन्थ—

काला चना (१५) त्रिपुटक–मालवदेश में प्रसिद्ध एक प्रकार का धान्य (१६) निष्पाव–वल्ल (वाल) (१७) शिलिन्द–मोठ (१८) (१९) इक्षु–वैराटी धान* (२०) मसूर–एक प्रकार की दाल (२१) तुवरी–तूअर (२२) कुलत्थ–कुलथी, एक प्रकार का अन्न (२३) धान्यक–धनिया (२४) कलायक–गोल चने ।

(दशवैकालिक निर्युक्ति गाथा २५२–२५३ छठा अध्ययन टीका)

६३६—जात्युत्तर चौबीस

शास्त्रार्थ करते समय प्रतिपक्षी के हेतु में ऐसा दोष देना जो वास्तव में वहां पर न हो, दूषणाभास कहलाता है अर्थात् वास्तव में दोष न होने पर भी जो दोष के समान मालूम पड़े वह दूषणाभास कहलाता है। इसी को जात्युत्तर कहते हैं। जाति शब्द का अर्थ है सदृश। जो उत्तर न होने पर भी उत्तर के सदृश हों वे जात्युत्तर हैं। प्रतिपक्षी के हेतु में विद्यमान दोष को बताना वास्तविक उत्तर है और अविद्यमान दोष को बताना जात्युत्तर है। वादी द्वारा किसी सद्धेतु या हेत्वाभास का प्रयोग किये जाने पर प्रतिवादी को जब कोई समुचित उत्तर नहीं सूझता उस समय वह जात्युत्तर देने लगता है। यद्यपि जात्युत्तर असंख्य हो सकते हैं तो भी गौतम रचित न्याय सूत्र के अनुसार इसके चौबीस भेद हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) साधर्म्यसमा–साधर्म्य से उपसंहार करने पर दृष्टान्त की समानता दिखला कर साध्य से विपरीत सिद्ध करना साधर्म्यसमा है। जैसे–शब्द अनित्य है, क्योंकि कृत्रिम है। जो कृत्रिम होता है, वह अनित्य होता है जैसे घड़ा। वादी के इस प्रकार कहने पर

---

* इक्खू (इक्षु)-ईख के सिवाय एक विराट देश में होने वाला 'वेराट्टका धान्य' जिसे वेराटी धान भी कहते हैं–होता है। यह धान (चावल) खाने में मीठा होता है। (पाइअ सद्द महण्णवो पृ० १६६)

प्रतिवादी उत्तर दे कि यदि कृत्रिम रूप धर्म से शब्द और घड़े में समानता है, इसलिए घड़े के समान शब्द अनित्य है तो अमूर्तत्व धर्म से शब्द और आकाश में भी साम्य है। अतः शब्द को आकाश के समान नित्य मानना चाहिए। यह उत्तर ठीक नहीं है। वादी ने शब्द को अनित्य सिद्ध करने के लिए कृत्रिमता को हेतु बनाया है। जिसका खण्डन प्रतिवादी ने बिल्कुल नहीं किया। वादी ने यह तो कहा नहीं कि शब्द अनित्य है, क्योंकि घट के समान है। यदि हेतु इस प्रकार का होता तो प्रतिवादी का खण्डन ठीक कहा जा सकता था। केवल दृष्टान्त की समानता दिखलाने से ही साध्य का खण्डन नहीं होता। उसके लिए हेतु देना चाहिए या वादी के हेतु का खण्डन करना चाहिए। यहाँ प्रतिवादी ने दोनों में से एक भी कार्य नहीं किया।

नोट—यहाँ शब्द को अमूर्त न्यायदर्शन की अपेक्षा कहा गया है। जैन दर्शन में शब्द को मूर्त माना है।

(२) वैधर्म्यसमा—वैधर्म्य से उपसंहार करने पर वैधर्म्य दिखला कर खण्डन करना वैधर्म्यसमा जाति है। जैसे—जो अनित्य नहीं है वह कृत्रिम नहीं है, जैसे आकाश। वादी के इस प्रकार कहने पर प्रतिवादी कहता है यदि नित्य आकाश की असमानता से शब्द अनित्य है तो अनित्य घट की असमानता से (क्योंकि घट मूर्त है और शब्द अमूर्त है) शब्द को नित्य मानना चाहिए। यह वैधर्म्य समा जाति है, क्योंकि इससे वादी के हेतु का खण्डन नहीं हुआ। वादी ने वैधर्म्य को हेतु नहीं बनाया था।

(३) उत्कर्षसमा—दृष्टान्त के किसी धर्म को साध्य में मिलाकर वादी का खण्डन करना उत्कर्षसमा जाति है। जैसे—आत्मा में क्रिया हो सकती है, क्योंकि उसमें क्रिया का कारण गुण मौजूद है (क्रियाहेतुगुणाश्रय होने से)। जो क्रियाहेतुगुणाश्रय है वह

क्रिया वाला है, जैसे मृत्पिण्ड। इसके उत्तर में अगर प्रतिवादी कहे कि यदि जीव मृत्पिण्ड के समान होने से क्रिया वाला है तो ढेले के समान जीव में भी रूप आदि होना चाहिए। यह उत्कृष्ट समा जाति है क्योंकि क्रिया हेतु गुणाश्रय होने और रूपादिमन्त होने में कोई अविनाभाव सम्बन्ध नहीं है।

(४) अपकर्ष समा—उत्कर्षसमा को उल्ट देने से अपकर्षसमा जाति होती है। जैसे—जीव यदि ढेले के समान रूपादि वाला नहीं है तो उसे क्रिया वाला भी मत कहो।

साधर्म्य वैधर्म्यसमा में साध्य के विरोधी धर्म को सिद्ध करने की कोशिश की जाती है और उत्कर्षसमा तथा अपकर्षसमा में किसी अन्य धर्म को सिद्ध करने की चेष्टा की जाती है।

(५) वर्ण्यसमा—जिसका कथन किया जाता है उसे वर्ण्य कहते हैं। वर्ण्य की समानता से जो असदुत्तर दिया जाता है उसे वर्ण्य समा जाति कहते हैं। जैसे—यदि साध्य में सिद्धि का अभाव है तो दृष्टान्त में भी होना चाहिए।

(६) अवर्ण्यसमा-जिसका कथन न किया जाता हो उसे अवर्ण्य कहते हैं। अवर्ण्य की समानता से जो असदुत्तर दिया जाता है उसे अवर्ण्यसमा कहते हैं। जैसे—यदि दृष्टान्त में सिद्धि का अभाव नहीं है तो साध्य में भी न होना चाहिए।

(७) विकल्पसमा—दूसरे धर्मों के विकल्प उठा कर मिथ्या उत्तर देना विकल्प समा जाति है। जैसे—कृत्रिमता और गुरुत्व का सम्बन्ध ठीक ठीक नहीं मिलता इसलिए अनित्यत्व और कृत्रिमता का भी सम्बन्ध न मानना चाहिए, जिससे कृत्रिमता रूप हेतु द्वारा शब्द अनित्य सिद्ध किया जा सके।

(८) साध्यसमा—वादी ने जो साध्य बनाया हो उसी के समान दृष्टान्त आदि को बतला कर मिथ्या उत्तर देना साध्य समाजाति

है। जैसे–यदि मृत्पिण्ड के समान आत्मा है तो मृत्पिण्ड को भी आत्मा के समान समझना चाहिए। आत्मा में क्रिया साध्य है तो मृत्पिण्ड में भी उसे साध्य मानना चाहिए।

ये सब मिथ्या उत्तर हैं, क्योंकि दृष्टान्त में सब धर्मों की समानता नहीं देखी जाती, उसमें तो केवल साध्य और साधन की समानता देखी जाती है। विकल्प समा में जो अनेक धर्मों का व्यभिचार बताया है उससे वादी का अनुमान खण्डित नहीं होता, क्योंकि साध्यधर्म के सिवाय अन्य धर्मों के साथ अगर साधन की व्याप्ति न मिले तो इससे साधन को व्यभिचारी नहीं कह सकते। साध्य धर्म के साथ व्याप्ति न मिलने पर ही वह व्यभिचारी हो सकता है। दूसरे धर्मों के साथ व्यभिचार आने से साध्य के साथ भी व्यभिचार की कल्पना करना व्यर्थ है। यदि पत्थर के साथ धूम की व्याप्ति नहीं मिलती तो यह नहीं कहा जा सकता कि धूम की व्याप्ति अग्नि के साथ भी नहीं है।

(९) प्राप्तिसमा–प्राप्ति का प्रश्न उठा कर सच्चे हेतु को खण्डित बताना प्राप्तिसमा जाति है। जैसे–हेतु साध्य के पास रह कर साध्य को सिद्ध करता है या दूर रह कर ? यदि पास रह कर, तो कैसे मालूम होगा कि यह हेतु है, यह साध्य है ? यह प्राप्तिसमा जाति है।

(१०) अप्राप्तिसमा–अप्राप्ति का प्रश्न उठा कर सच्चे हेतु को खण्डित करना अप्राप्तिसमा है। जैसे–यदि साध्य साधन से दूर रह कर साध्य की सिद्धि करता है तो यह साधन अमुक धर्म की ही सिद्धि करता है दूसरे की नहीं, यह कैसे मालूम हो सकता है ? यह अप्राप्तिसमा जाति है। ये असदुत्तर हैं, क्योंकि धुआँ आदि पास रह कर अग्नि की सिद्धि करते हैं। पूर्वचर आदि साधन दूर रह कर भी साध्य की सिद्धि करते हैं। जिनमें अविनाभाव सम्बन्ध है उन्हीं में साध्य साधकता हो सकती है, न कि सब में।

(११) प्रसङ्गसमा--जैसे साध्य के लिए साधन की जरूरत है उसी प्रकार दृष्टान्त के लिये भी साधन की जरूरत है, ऐसा कहना प्रसङ्गसमा है। दृष्टान्त में वादी प्रतिवादी को विवाद नहीं होता इसलिए उसके लिए साधन की आवश्यकता बतलाना व्यर्थ है। अन्यथा वह दृष्टान्त ही न कहलाएगा।

(१२) प्रतिदृष्टान्तसमा--बिना व्याप्ति के केवल दूसरा दृष्टान्त देकर दोष बताना प्रतिदृष्टान्तसमा जाति है। जैसे-- घड़े के दृष्टान्त से यदि शब्द अनित्य है तो आकाश के दृष्टान्त से नित्य भी होना चाहिए। प्रतिदृष्टान्त देने वाले ने कोई हेतु नहीं दिया है, जिससे यह कहा जाय कि दृष्टान्त साधक नहीं है, प्रतिदृष्टान्त साधन है। बिना हेतु के खण्डन मण्डन कैसे हो सकता है ?

(१३) अनुत्पत्तिसमा--उत्पत्ति के पहले कारण का अभाव दिखला कर मिथ्या खण्डन करना अनुत्पत्तिसमा है।जैसे--उत्पत्ति से पहले शब्द कृत्रिम है या नहीं ? यदि है तो उत्पत्ति के पहले होने से शब्द नित्य हो गया। यदि नहीं है तो हेतु आश्रयासिद्ध हो गया। यह उत्तर ठीक नहीं है उत्पत्ति के पहले वह शब्द ही नहीं था फिर कृत्रिम अकृत्रिम का प्रश्न कैसे हो सकता है।

(१४) संशयसमा--व्याप्ति में मिथ्या सन्देह बतला कर वादी के पक्ष का खण्डन करना संशयसमा जाति है। जैसे--कार्य होने से शब्द अनित्य है तो यह कहना कि इन्द्रिय का विषय होने से शब्द की अनित्यता में सन्देह है क्योंकि इन्द्रियों के विषय गोत्व, घटत्व आदि नित्य भी होते हैं और घट, पट आदि अनित्य भी होते हैं। यह संशय ठीक नहीं है, क्योंकि जब तक कार्यत्व और अनित्यत्व की व्याप्ति खण्डित न की जाय तब तक यहाँ संशय का प्रवेश हो ही नहीं सकता। कार्यत्व की व्याप्ति यदि नित्यत्व और अनित्यत्व दोनों के साथ हो तो संशय हो सकता है अन्यथा नहीं।

लेकिन कार्यत्व की व्याप्ति दोनों के साथ हो ही नहीं सकती।

(१५) प्रकरणसमा–मिथ्या व्याप्ति पर अवलम्बित दूसरे अनुमान से दोष देना प्रकरणसमा जाति है। जैसे–'यदि अनित्य (घट) के साधर्म्य से कार्यत्व हेतु शब्द की अनित्यता सिद्ध करता है तो गोत्व आदि सामान्य के साधर्म्य से ऐन्द्रियकत्व (इन्द्रिय का विषय होना) हेतु नित्यता को सिद्ध करेगा। इसलिए दोनों पक्ष बराबर कहलायेंगे। यह असत्य उत्तर है। अनित्यत्व और कार्यत्व की व्याप्ति है पर ऐन्द्रियकत्व और नित्यत्व की व्याप्ति नहीं है।

(१६) अहेतुसमा–भूत आदि काल की असिद्धि बताकर हेतु मात्र को अहेतु कहना अहेतुसमा जाति है। जैसे–हेतु साध्य के पहले होता है, पीछे होता है या साथ होता है? पहिले तो हो नहीं सकता, क्योंकि जब साध्य ही नहीं है तो साधक किसका होगा? न पीछे हो सकता है क्योंकि जब साध्य ही नहीं रहा तब वह सिद्ध किसे करेगा? अथवा जिस समय था उस समय यदि साधन नहीं था तो वह साध्य कैसे कहलाया? दोनों एक साथ भी नहीं बन सकते, क्योंकि उस समय यह सन्देह हो जायगा कि कौन साध्य है और कौन साधक है? जैसे विन्ध्याचल से हिमालय की और हिमालय की विन्ध्याचल से सिद्धि करना अनुचित है उसी तरह एक काल में होने वाली वस्तुओं को साध्य साधक ठहराना अनुचित है। यह असत्य उत्तर है क्योंकि इस प्रकार त्रिकाल की असिद्धि बतलाने से जिस हेतु के द्वारा जातिवादी ने हेतु को अहेतु ठहराया है वह हेतु (जातिवादी का त्रिकालासिद्ध हेतु) भी अहेतु ठहर गया और जातिवादी का वक्तव्य अपने आप खण्डित हो गया। दूसरी बात यह है कि काल भेद होने से या अभेद होने से अविनाभाव सम्बन्ध नहीं बिगडता। यह बात पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर, कार्य, कारण आदि हेतुओं

के स्वरूप से स्पष्ट विदित हो जाती है। जब अविनाभाव सम्बन्ध नहीं मिटता तो हेतु अहेतु कैसे कहा जा सकता है? काल की एकता से साध्य साधन में सन्देह नहीं हो सकता क्योंकि दो वस्तुओं के अविनाभाव में ही साध्य साधन का निर्णय हो जाता है। अथवा दोनों में से जो असिद्ध हो वह साध्य और जो सिद्ध हो उसे हेतु मान लेने से सन्देह मिट जाता है।

(१७) अर्थापत्तिसमा–अर्थापत्ति दिखला कर मिथ्या दूषण देना अर्थापत्तिसमा जाति है। जैसे–'यदि अनित्य के साधर्म्य (कृत्रिमता) से शब्द अनित्य है तो इसका मतलब यह हुआ कि नित्य (आकाश) के साधर्म्य (स्पर्श रहितपना) से वह नित्य है।' यह उत्तर असत्य है क्योंकि स्पर्श रहित होने से ही कोई नित्य कहलाने लगे तो सुख वगैरह भी नित्य कहलाने लगेंगे।

(१८) अविशेषसमा--पक्ष और दृष्टान्त में अविशेषता देखकर किसी अन्य धर्म से सब जगह (विपक्ष में भी) अविशेषता दिखला कर साध्य का आरोप करना अविशेषसमाजाति है जैसे– 'शब्द और घट में कृत्रिमता से अविशेषता होने से अनित्यता है तो सब पदार्थों में सत्त्व धर्म से अविशेषता है इसलिए सभी (आकाशादि विपक्ष भी) अनित्य होना चाहिए' यह असत्य उत्तर है कृत्रिमता का अनित्यता के साथ अविनाभाव सम्बन्ध है, लेकिन सत्त्व का अनित्यता के साथ नहीं है।

(१९) उपपत्तिसमा--साध्य और साध्यविरुद्ध, इन दोनों के कारण दिखला कर मिथ्या दोष देना उपपत्तिसमा जाति है। जैसे—यदि शब्द के अनित्यत्व में कृत्रिमता का कारण है तो उसके नित्यत्व में स्पर्श रहितता कारण है। जहाँ जातिवादी अपने शब्दों से अपनी बात का विरोध करता है। जब उसने शब्द के अनित्यत्व का कारण मान लिया तो फिर नित्यत्व का कारण कैसे मिल

सकता है? दूसरी बात यह है कि स्पर्श रहितता की नित्यत्व के साथ व्याप्ति नहीं है।

(२०) उपलब्धिसमा--निर्दिष्ट कारण (साधन) के अभाव में साध्य की उपलब्धि बता कर दोष देना उपलब्धिसमा जाति है। जैसे-प्रयत्न के बाद पैदा होने से शब्द को अनित्य कहते हो, लेकिन ऐसे बहुत से शब्द हैं जो प्रयत्न के बाद न होने पर भी अनित्य हैं। मेघ गर्जना आदि में प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है। यह दूषण मिथ्या है क्योंकि साध्य के अभाव में साधन के अभाव का नियम है, न कि साधन के अभाव में साध्य के अभाव का। अग्नि के अभाव में नियम से धुंआ नहीं रहता, लेकिन धुँए के अभाव में नियम से अग्नि का अभाव नहीं कहा जा सकता।

(२१) अनुपलब्धिसमा-उपलब्धि के अभाव में अनुपलब्धि का अभाव कह कर दूषण देना अनुपलब्धिसमा जाति है। जैसे किसी ने कहा कि उच्चारण के पहले शब्द नहीं था क्योंकि उपलब्ध नहीं होता था। यदि कहा जाय कि उस समय शब्द पर आवरण था इसलिए अनुपलब्ध था तो उसका आवरण तो उपलब्ध होना चाहिए। जैसे कपड़े से ढकी हुई चीज नहीं दीखती तो कपड़ा दीखता है, उसी तरह शब्द का आवरण उपलब्ध होना चाहिए। इसके उत्तर में जातिवादी कहता है, जैसे आवरण उपलब्ध नहीं होता वैसे आवरण की अनुपलब्धि (अभाव) भी तो उपलब्ध नहीं होती। यह उत्तर ठीक नहीं है, आवरण की उपलब्धि न होने से ही आवरण की अनुपलब्धि उपलब्ध हो जाती है।

(२२) अनित्यसमा-एक की अनित्यता से सब को अनित्य कह कर दूषण देना अनित्यसमा जाति है। जैसे-यदि किसी धर्म की समानता से आप शब्द को अनित्य सिद्ध करोगे तो सत्त्व की समानता से सब चीजें अनित्य सिद्ध हो जाएंगी। यह उत्तर ठीक

नहीं है। क्योंकि वादी प्रतिवादी के शब्दों में भी प्रतिज्ञा आदि की समानता तो है ही, इसलिए जिस प्रकार प्रतिवादी (जाति वादी) के शब्दों से ही वादी का खंडन होगा, उसी प्रकार प्रतिवादी का भी खंडन हो जायगा। इसलिए जहाँ जहाँ अविनाभाव हो, वहीं वहीं साध्य की सिद्धि माननी चाहिए, न कि सब जगह।

(२३) नित्यसमा--अनित्यत्व में नित्यत्व का आरोप करके खंडन करना नित्यसमा जाति है। जैसे शब्द को तुम अनित्य सिद्ध करते हो तो शब्द में रहने वाला अनित्यत्व नित्य है या अनित्य? अनित्यत्व अनित्य है तो शब्द भी नित्य कहा जाएगा (धर्म के नित्य होने पर भी धर्मी को नित्य मानना ही पड़ेगा)। यदि अनित्यत्व अनित्य है तो शब्द नित्य कहा जा सकेगा। यह असत्य उत्तर है क्योंकि जब शब्द में अनित्यत्व सिद्ध है तो उसी का अभाव कैसे कहा जा सकता है। दूसरी बात यह है कि इस तरह कोई भी वस्तु अनित्य सिद्ध नहीं हो सकेगी। तीसरी बात यह है कि अनित्यत्व एक धर्म है। यदि धर्म में भी धर्म की कल्पना की जायगी तो अनवस्था हो जायगी।

(२४) कार्यसमा--जाति कार्य को अभिव्यक्ति के समान मानना (क्योंकि दोनों में प्रयत्न की आवश्यकता होती है) और सिर्फ इतने से ही हेतु का खण्डन करना कार्यसमा जाति है। जैसे--प्रयत्न के बाद शब्द की उत्पत्ति भी होती है और अभिव्यक्ति (प्रकट होना) भी होता है फिर शब्द अनित्य कैसे कहा जा सकता है। यह उत्तर ठीक नहीं है क्योंकि प्रयत्न के अनन्तर होना इसका मतलब है स्वरूप लाभ करना। अभिव्यक्ति को स्वरूप लाभ नहीं कह सकते। प्रयत्न के पहले अगर शब्द उपलब्ध होता या उसका आवरण उपलब्ध होता तो अभिव्यक्ति कही जा सकती थी।

जातियों के विवेचन से मालूम पड़ता है कि इनसे परपक्ष का

बिल्कुल खण्डन नहीं होता। वादी को चक्कर में डालने के लिए यह शब्द जाल बिछाया जाता है, जिसका काटना कठिन नहीं है। इसलिए इनका प्रयोग न करना चाहिए। यदि कोई प्रतिवादी इनका प्रयोग करे तो वादी को बतला देना चाहिए कि प्रतिवादी मेरे पक्ष का खंडन नहीं कर पाया। इससे प्रतिवादी की पराजय हो जायगी। लेकिन यह पराजय इसलिए नहीं होगी कि उसने जाति का प्रयोग किया, बल्कि इसलिए होगी कि वह अपने पक्ष का मण्डन या परपक्ष का खण्डन नहीं कर सका।

(न्यायदर्शन वात्स्यायनभाष्य) (प्रमाणमीमांसा २ अ० १ आ० २६ सूत्र तथा अध्याय ५ आह्निक १) (न्यायप्रदीप, चौथा अध्याय)

पच्चीसवाँ बोल संग्रह

९३७--उपाध्याय के पचीस गुण

जो शिष्यों को सूत्र अर्थ सिखाते हैं वे उपाध्याय कहलाते हैं।

बारसंगो जिणक्खाओ सज्भाओ कहिउ' बुहे।
तं उवइसंति जम्हाओ-वज्झाया तेण वुच्चंति॥

अर्थ--जो सर्वज्ञभाषित और परम्परा से गणधरादि द्वारा उपदिष्ट बारह अङ्ग शिष्य को पढ़ाते हैं वे उपाध्याय कहलाते हैं। उपाध्याय पचीस गुणों के धारक होते हैं। ग्यारह अङ्ग, बारह उपाङ्ग, चरणसप्तति और करणसप्तति--ये पचीस गुण हैं।

ग्यारह अङ्ग और बारह उपाङ्ग के नाम ये हैं--(१) आचारांग (२) सूयगडांग (३) ठाणांग (४) समवायांग (५) विवाहपन्नत्ति (व्याख्याप्रज्ञप्ति या भगवती) (६) नायाधम्मकहाओ (ज्ञाता धर्म कथा) (७) उवासगदसा (८) अंतगडदसा (९) अणुत्तरोववाई (१०) पण्हावागरण (प्रश्नव्याकरण) (११) विवागसुय (विपाक-

श्रुत) (१२) उववाइ (१३) रायप्पसेणी (१४) जीवाभिगम (१५) पन्नवणा (१६) जम्बूद्वीप पराणत्ति (१७) चन्दपराणत्ति (१८) सूरपराणत्ति (१९) निरयावलिया (२०) कप्पवडंसिया (२१) पुप्फिया (२२) पुप्फचूलिया (२३) वरिहदसा।

नोट—ग्यारह अङ्ग और बारह उपाङ्ग का विषय परिचय इसी ग्रन्थ के चतुर्थ भाग के बोल नं० ७७६-७७७ में दिया गया है।

सदा काल जिन सित्तर बोलों का आचरण किया जाता है वे चरणसप्तति (चरणसत्तर) कहलाते हैं। वे ये हैं—

वय समणधम्म संजम वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ।
नाणाइतियं तव कोहणिग्गहा इइ चरणमेयं॥

अर्थ—पाँच महाव्रत, दस श्रमण धर्म, सत्रह सयम, दस प्रकार का वैयावच्च, नव ब्रह्मचर्य गुप्ति, रत्नत्रय—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बारह प्रकार का तप, क्रोध, मान, माया, लोभ का निग्रह।

नोट—पाँच महाव्रत, रत्नत्रय और चार कषाय का स्वरूप इसी ग्रन्थ के प्रथम भाग में क्रमशः बोल नं० ३१६, ७९, १५८ में दिया गया है। बारह तप का स्वरूप दूसरे भाग के बोल नं० ४७६ और ४७८ में व तीसरे भाग के बोल नं० ६६३ में दिया गया है। दस श्रमण धर्म, दस वैयावृत्य और नव ब्रह्मचर्य गुप्ति का वर्णन तीसरे भाग में क्रमशः बोल नं० ६६१, ७०७ और ६२८ में और सत्रह संयम का वर्णन पाँचवें भाग के बोल नं० ८८४ में दिया गया है।

प्रयोजन उपस्थित होने पर जिन सित्तर बोलों का आचरण किया जाता है वे करणसप्तति (करण सत्तरि) कहलाते हैं। वे ये हैं—

पिण्डविसोही समिई भावण पडिमा य इंदियनिरोहो।
पडिलेहणगुत्तीओ अभिग्गहा चेव करणं तु॥

अर्थ—पिण्डविशुद्धि के चार भेद—शास्त्रोक्त विधि के अनुसार बयालीस दोष से शुद्ध पिण्ड, पात्र, वस्त्र और शय्या ग्रहण करना,

पाँच समिति, बारह भावना, बारह पडिमा, पाँच इन्द्रियनिरोध, पच्चीस प्रतिलेखना, तीन गुप्ति और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भेद से चार प्रकार का अभिग्रह—ये सब मिला कर सित्तर भेद होते हैं।

नोट—पाँच समिति, तीन गुप्ति का स्वरूप इसी ग्रन्थ के तीसरे भाग के बोल नं० ५७० (आठ प्रवचन माता) में तथा बारह भावना और बारह पडिमा का स्वरूप चौथे भाग में क्रमशः बोल नं० ८१२ और ७९५ में दिया जा चुका है। पच्चीस प्रतिलेखना आगे बोल नं० ९३९ में है।

(प्रवचनसारोद्धार द्वार ६६–६७ गाथा ५५२–५६६)(धर्म संग्रह अधिकार ३ पृ० १३०)

९३८—पाँच महाव्रतों की पच्चीस भावनाएं

महाव्रतों का शुद्ध पालन करने के लिए शास्त्रों में प्रत्येक महाव्रत की पाँच २ भावनाएं बताई गई हैं। वे नीचे लिखे अनुसार हैं—

पहले अहिंसा महाव्रत की पाँच भावनाएं—(१) ईर्यासमिति (२) मनगुप्ति (३) वचन गुप्ति (४) आलोकित पान भोजन (५) आदानभण्डमात्र निक्षेपणा समिति। दूसरे सत्य महाव्रत की पाँच भावनाएं—(६) अनुविचिन्त्यभाषणता (७) क्रोध विवेक (८) लोभविवेक (९) भयविवेक (१०) हास्यविवेक। तीसरे अदत्तादान विरमण अर्थात् अचौर्य महाव्रत की पांच भावनाएं—(११) अवग्रहानुज्ञापना (१२) सीमापरिज्ञान (१३) अवग्रहानुग्रहणता (१४) आज्ञा लेकर साधर्मीकावग्रह भोगना (१५) आज्ञा लेकर साधारण भक्त पान का सेवन करना। चौथे ब्रह्मचर्य महाव्रत की पांच भावनाएं—(१६) स्त्री पशु पंडक संसक्त शयनासन वर्जन (१७) स्त्री कथा विवर्जन (१८) स्त्री इन्द्रियालोकन वर्जन (१९) पूर्वरत पूर्व क्रीडितानुस्मरण (२०) प्रणीताहार विवर्जन। पांचवें अपरिग्रह महाव्रत की पांच भावनाएं—(२१) श्रोत्रेन्द्रिय रागोपरति (२२) चक्षुरिन्द्रिय रागोपरति (२३) घ्राणेन्द्रिय रागोपरति (२४) जिह्वेन्द्रिय रागोपरति (२५) स्पर्शनेन्द्रिय रागोपरति।

इन सब की व्याख्या इसी ग्रन्थ के प्रथम भाग के बोल नं० ३१७ से ३२१ में दी गई है। (समवायांग २५) (आचारांग २ श्रुत० ३ चूला अ० २४ पृ० १७९) (हरिभद्रीयावश्यक प्रतिक्र० अ०पृ०६५८) (धर्म सग्रह ३ अधिकार श्लो० ४५ टी० पृ० १२५)(प्र० सा० द्वार ७२ गा० ६३६ से ६४०)

९३९—प्रतिलेखना के पचीस भेद

शास्त्रोक्त विधि से वस्त्र पात्र आदि उपकरणों को देखना प्रतिलेखना या पडिलेहणा है। इसके पचीस भेद हैं। प्रतिलेखना की विधि के छः भेद—(१) उड्ढं (२) थिरं (३) अतुरियं (४) पडिलेहे (५) पप्फोडे (६) पमज्जिज्जा। अप्रमादप्रतिलेखना के छः भेद— (७) अनर्तित (८) अवलित (९) अननुबन्धी (१०) अमोसली (११) षट्पुरिम नवस्फोटा (१२) पाणिप्राणविशोधन। प्रमाद प्रतिलेखना छह—(१३) आरभटा (१४) सम्मर्दा (१५) मोसली (१६) प्रस्फोटना (१७) विक्षिप्ता (१८) वेदिका। प्रमाद प्रतिलेखना सात-(१९) प्रशिथिल (२०) प्रलम्ब (२१) लोल (२२) एकामर्षा (२३) अनेक रूपधूना (२४) प्रमाद (२५) शंका।

इनका स्वरूप इसी ग्रंथ के द्वितीय भाग में क्रमशः बोल नं० ४४७, ४४८, ४४९, ५२१ में दिया गया है। (उत्त० अ० २६ गा० २४-२७

९४०—क्रिया पच्चीस

कर्म बन्ध के कारण को अथवा दुष्ट व्यापार विशेष को क्रिया कहते हैं। क्रियाएं पचीस हैं। उनके नाम ये हैं:—

(१) कायिकी (२) आधिकरणिकी (३) प्राद्वेषिकी (४) पारितापनिकी (५) प्राणातिपातिकी (६) आरम्भिकी (७) पारिग्रहिकी (८) मायाप्रत्यया (९) मिथ्या दर्शन प्रत्यया (१०) अप्रत्याख्यानिकी (११) दृष्टिजा (१२) पृष्टिजा (स्पर्शजा) (१३) प्रातीत्यिकी (१४) सामन्तोपनिपातिकी (१५) नैसृष्टिकी (१६) स्वाहस्तिकी (१७) आज्ञापनिका (आनायनी) (१८) वैदारिणी (१९) अनाभोग प्रत्यया

(२०) अनवकांक्षा प्रत्यया (२१) प्रायोगिकी २२) सामुदानिकी (२३) प्रेम प्रत्यया (२४) द्वेष प्रत्यया (२५) ईर्यापथिकी ।

इन क्रियाओं का अर्थ और विस्तृत विवेचन इसी ग्रन्थ के प्रथम भाग के बोल नं० २९२ से २९६ पृष्ठ २७६ से २८३ तक में दिया गया है। (ठाणांग २ उ० १ सूत्र ६०) (ठाणांग ५ उ० २ सूत्र ४१९)
(नव० गा० १७-१९) हरि० आवश्यक अ० ४ पृ० ६११)

९४१—सूयगडांग सूत्र के पाँचवें अध्ययन की पच्चीस गाथाएं

सूयगडांग सूत्र के पाँचवें अध्ययन का नाम 'नरयविभक्ति' है। उसके दो उद्देशे हैं। पहले में सत्ताईस और दूसरे में पच्चीस गाथाएं हैं। दोनों उद्देशों में नरक के दुःखों का वर्णन किया गया है। यहाँ दूसरे उद्देशे की पच्चीस गाथाओं का अर्थ दिया जाता है—

(१) श्री सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से फरमाते हैं—हे आयुष्मन् जम्बू! अब मैं निरन्तर दुःख देने वाले नरकों के विषय में कहूँगा। इस लोक में पाप कर्म करने वाले प्राणी जिस प्रकार अपने पाप का फल भोगते हैं सो मैं बताऊंगा।

(२) परमाधार्मिक देव नारकी जीवों के हाथ पैर बाँध कर गिरा देते हैं। उस्तरे या तलवार से उनका पेट चीर देते हैं। लाठी आदि के प्रहार से उनके शरीर को चूर चूर कर देते हैं। करुण क्रन्दन करते हुए नारकी जीवों को पकड़ कर परमाधार्मिक देव उनकी पीठ की चमड़ी उखाड़ लेते हैं।

(३) परमाधार्मिक देव नारकी जीवों की भुजा को समूल काट देते हैं। मुँह फाड़ कर उसमें तपा हुआ लोहे का गोला डाल कर जलाते हैं। गर्म सीसा पिलाते समय मद्यपान की, शरीर का माँस काटते समय माँस भक्षण की, इस प्रकार वेदना के अनुसार

परमाधार्मिक देव उन्हें पूर्वभव के पापों की याद दिलाते हैं। निष्कारण क्रोध करके चाबुक से उनकी पीठ पर मारते हैं।

(४) सुतप्त लोहे के गोले के समान जलती हुई पृथ्वी पर च·ाये जाते हुए नारकी जीव दीन स्वर से रुदन करते हैं। गर्म जुए ५ जोते हुए और बैल की तरह चाबुक आदि से मार कर चलने के लिए प्रेरित किये हुए नारकी जीव अत्यन्त करुण विलाप करते हैं।

(५) परमाधार्मिक देव नारकी जीवों को तपे हुए लोहे के गोले के समान उष्ण पृथ्वी पर चलने के लिए वाध्य करते हैं तथा खून और पीव से कीचड़ वाली भूमि पर चलने के लिए उन्हें मजबूर करते हैं। दुर्गमकुम्भी, शाल्मली आदि दुःख पूर्ण स्थानों में जाते हुए नारकी जीव यदि रुक जाते हैं तो परमाधार्मिक देव डण्डे और चाबुक मार कर उन्हें आगे बढ़ाते हैं।

(६) तीव्र वेदना वाले स्थानों में गये हुए नारकी जीवों पर शिलाएं गिराई जाती हैं जिससे उनके अङ्ग चूर चूर होजाते हैं। सन्तापनी नाम की कुम्भी दीर्घ स्थिति वाली है। पापी जीव यहाँ पर चिर काल तक दुःख भोगते रहते हैं।

(७) नरकपाल नारकी जीवों को गेंद के समान आकार वाली कुम्भी में पकाते हैं। पकते हुए उनमें से कोई जीव भाड़ के चने की तरह उछल कर ऊपर जाते हैं परन्तु वहां भी उन्हें सुख कहाँ? वैक्रिय शरीरधारी ढंक और काक पक्षी उन्हें खाने लगते हैं। दूसरी तरफ भागने पर वे सिंह और व्याघ्र द्वारा खाये जाते हैं।

(८) ऊँची चिता के समान वैक्रियकृत निर्धूम अग्नि का एक स्थान है। उसे प्राप्त कर नारकी जीव शोक संतप्त होकर करुण क्रन्दन करते हैं। परमाधार्मिक देव उन्हें सिर नीचा करके लटका देते हैं। उनका सिर काट डालते हैं तथा तलवार आदि शस्त्रों से उनके शरीर के टुकड़े टुकड़े कर देते हैं।

(६) परमाधार्मिक देव नारकी जीवों को अधोमुख लटका कर उनकी चमड़ी उतार लेते हैं और वज्र के समान चोंच वाले गीध और काक पक्षी उन्हें खा जाते हैं। इस प्रकार छेदन भेदन आदि का मरणान्त कष्ट पाकर भी नारकी जीव आयु शेष रहते मरते नहीं हैं इसलिए नरक भूमि संजीवनी कहलाती है। क्रूर कर्म करने वाले पापात्मा चिरकाल तक ऐसे नरकों में दुःख भोगते रहते हैं।

(१०) वश में आये हुए जंगली जानवर के समान नारकी जीवों को पाकर परमाधार्मिक देव तीखे शूलों से उन्हें बींध डालते हैं। भीतर और बाहर आनन्द रहित दुखी नारकी जीव दीनता पूर्वक करुण विलाप करते रहते हैं।

(११) नरक में एक ऐसा घात स्थान है जो सदा जलता रहता है और जिसमें बिना काठ की (वैक्रिय पुद्गलों) की अग्नि निरन्तर जलती रहती है। ऐसे स्थान में उन नारकी जीवों को बांध दिया जाता है। अपने पाप का फल भोगने के लिए चिर काल तक उन्हें वहाँ रहना पड़ता है। वेदना के मारे वे जोर जोर से चिल्लाते रहते हैं।

(१२) परमाधार्मिक देव विशाल चिता बना कर उसमें करुण क्रन्दन करते हुए नारकी जीवों को डाल देते हैं। अग्नि में डाले हुए घी के समान उन नारकी जीवों का शरीर पिघल कर पानी पानी हो जाता है किन्तु फिर भी वे मरते नहीं हैं।

(१३) निरन्तर जलने वाला एक दूसरा उष्ण स्थान है। निधत्त और निकाचित कर्म बांधने वाले प्राणी वहाँ उत्पन्न होते हैं। वह स्थान अत्यन्त दुःख देने वाला है। नरकपाल शत्रु की तरह नारकी जीवों के हाथ और पैर बांध कर उन्हें डण्डों से मारते हैं।

(१४) परमाधार्मिक देव लाठी से मार कर नारकी जीवों की कमर तोड़ देते हैं। लोह के घन से उनके सिर को तथा दूसरे अङ्गों को चूर चूर कर देते हैं। तपे हुए आरे से उन्हें काठ की तरह चीर

देते हैं तथा गर्म सीसा पीने आदि के लिए बाध्य करते हैं।

(१५) परमाधार्मिक देव, नारकी जीवों को बाण चुभा चुभा कर, हाथी और ऊंट के समान भारी भार ढोने के लिए प्रवृत्त करते हैं। उनकी पीठ पर एक दो अथवा अधिक नारकी जीवों को बिठा कर उन्हें चलने के लिए प्रेरित करते हैं। किन्तु भार अधिक होने से जब वे नहीं चल सकते हैं तब कुपित होकर उन्हें चाबुक से मारते हैं और मर्म स्थानों पर प्रहार करते हैं।

(१६) बालक के समान पराधीन नारकी जीव रक्त, पीव तथा अशुचि पदार्थों से पूर्ण और कण्टकाकीर्ण पृथ्वी पर परमाधार्मिक देवों द्वारा चलने के लिये बाध्य किये जाते हैं। कई नारकी जीवों के हाथ पैर बांध कर उन्हें मूर्च्छित कर देते हैं और उनके शरीर के टुकड़ करके नगरबलि के समान चारों दिशाओं में फेंक देते हैं।

(१७) परमाधार्मिक देव विक्रिया द्वारा आकाश में महान् ताप का देने वाला एक शिला का बना हुआ पर्वत बनाते हैं और उस पर चढ़ने के लिए नारकी जीवों को बाध्य करते हैं। जब वे उस पर नहीं चढ़ सकते तब उन्हें चाबुक आदि से मारते हैं। इस प्रकार वेदना सहन करते हुए वे चिर काल तक वहाँ रहते हैं।

(१८) निरन्तर पीड़ित किये जाते हुए पापी जीव रात दिन रोते रहते हैं। अत्यन्त दुःख देने वाली विस्तृत नरकों में पड़े हुए नारकी जीवों को परमाधार्मिक देव फाँसी पर लटका देते हैं।

(१९) पूर्व जन्म के शत्रु के समान परमाधार्मिक देव हाथ में मुद्गर और मूसल लेकर नारकी जीवों पर प्रहार करते हैं जिससे उनका शरीर चूर चूर हो जाता है, मुख से रुधिर का वमन करते हुए नारकी जीव अधोमुख होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं।

(२०) नरकों में परमाधार्मिक देवों से विक्रिया द्वारा बनाये हुए विशाल शरीर वाले रौद्र रूपधारी निर्भीक बड़े बड़े शृगाल

(गीदड़) होते हैं। वे बहुत ही क्रोधी होते हैं और सदा भूखे रहते हैं। पास में रहे हुए तथा जंजीरों में बंधे हुए नारकी जीवों को वे निर्दयतापूर्वक खा जाते हैं।

(२१) नरक में सदाजला (जिसमें हमेशा जल रहता है) नामक एक नदी है। वह बड़ी ही कष्टदायिनी है। उसका जल चार, पीव और रक्त से सदा मलिन तथा पिघले हुए लोहे के समान अति उष्ण होता है। परमाधार्मिक देव नारकी जीवों को उस पानी में डाल देते हैं और वे त्राण शरण रहित होकर उसमें तिरते रहते है।

२२) नारकी जीवों को इस प्रकार परमाधार्मिक देव कृत, पारस्परिक तथा स्वाभाविक दुःख चिरकाल तक निरन्तर होते रहते हैं। उनकी आयु बड़ी लम्बी होती है। अकेले ही उन्हें सभी दुःख भोगने पड़ते हैं। दुःख से छुड़ाने वाला वहाँ कोई नहीं होता।

(२३) जिस जीव ने जैसे कर्म किये हैं वे ही उसे दूसरे भव में प्राप्त होते हैं। एकान्त दुख रूप नरक योग्य कर्म करके जीव को नरक के अनन्त दुःख भोगने पड़ते हैं।

(२४) नरकों में होने वाले इन दुःखों को सुन कर जीवादि तत्त्वों में श्रद्धा रखता हुआ बुद्धिमान् पुरुष किसी भी प्राणी की हिंसा न करे। मृषावाद, अदत्तादान मैथुन और परिग्रह का त्याग करे तथा क्रोधादि कषायों का स्वरूप जानकर उनके वश में न हो।

(२५) अशुभ कर्म करने वाले प्राणियों को तिर्यञ्च, मनुष्य और देव भव में भी दुःख प्राप्त होता है। इस प्रकार यह चार गति वाला अनन्त संसार है जिसमें प्राणी कर्मानुसार फल भोगता रहता है। इन सब बातों को जानकर बुद्धिमान् पुरुष को चाहिए कि यावज्जीवन संयम का पालन करे। (सूयगडांग सूत्र अध्य० ५ उ० २)

९४२–आर्य क्षेत्र साढ़े पच्चीस

जिन क्षेत्रों में तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती आदि उत्तम पुरुषों का जन्म

होता है तथा जहाँ धर्म का अधिक प्रचार होता है उसे आर्य क्षेत्र कहते हैं। आर्य क्षेत्र साढ़े पच्चीस हैं:—

(१) मगधदेश और राजगृह नगर (२) अंगदेश और चम्पा नगरी (३) बंगदेश और ताम्रलिप्ती नगरी (४) कलिंगदेश और कांचनपुर नगर (५) काशीदेश और वाराणसी नगरी (६) कोशल देश और साकेतपुर (अयोध्या) नगर (७) कुरुदेश और गजपुर नगर (८) कुशावर्त देश और शौरिपुर नगर (९) पंचालदेश और कांपिल्यपुर नगर (१०) जंगलदेश और अहिच्छत्रा नगरी (११) सौराष्ट्रदेश और द्वारावती नगरी (१२) विदेहदेश और मिथिला नगरी (१३) कौशाम्बी देश और वत्सा नगरी* (१४) शांडिल्य देश और नन्दिपुर नगर (१५) मलयदेश और भद्दिलपुर नगर (१६) वत्सदेश और वैराटपुर नगर (१७) वरणदेश और अच्छा नगरी (१८) दशार्ण देश और मृत्तिकावती नगरी (१९) चेदि देश और शौक्तिकावती नगरी (२०) सिन्धु सौवीर देश और वीतभय नगर (२१) शूरसेनदेश और मथुरा नगरी (२२) भंग देश और पापा नगरी (२३) पुरावर्त देश और मापा नगरी (२४) कुणालदेश और श्रावस्ती नगरी (२५) लाटदेश और कोटिवर्ष नगर (२५॥) केकयार्द्ध देश और श्वेताम्बिका नगरी।

(प्रवचनसारोद्धार २७५ द्वार) (पन्नवणा १ पद ३७ सूत्र) (बृहत्कल्प उद्देशा १ निर्युक्ति गाथा ३२६३)

---

* प्रज्ञापना टीका में वत्सदेश और कौशाम्बी नगरी है और यही प्रचलित है पर इस प्रकार अर्थ करने से 'वत्स' नाम के दो देश हो जाते हैं। इसके सिवाय मूल पाठ के साथ में भी इस अर्थ की अधिक संगति मालूम नहीं होती। मूल पाठ में नगरी और फिर देश का नाम, यह क्रम है और यह क्रम कौशाम्बी देश और वत्सा नगरी अर्थ करने से ही कायम रहता है। कौशाम्बी नगरी और वत्स देश करने से यह क्रम भंग हो जाता है। इसलिये मूल पाठ के अनुसार ही यहाँ कौशाम्बी देश और वत्सा नगरी रखे गये हैं।

छब्बीसवां बोल संग्रह

६४३-छब्बीस बोलों की मर्यादा

सातवाँ उपभोग परिभोग परिमाण नाम का व्रत है। एक बार भोग करने योग्य पदार्थ उपभोग कहलाते हैं और बार बार भोगे जाने वाले पदार्थ परिभोग* कहलाते हैं (भगवती शतक ७ उ०२ टीका आव० अ० ६ सूत्र ७)

उपभोग परिभोग के पदार्थों की मर्यादा करना उपभोग परिभोग परिमाण व्रत कहलाता है। इस व्रत में छब्बीस पदार्थों के नाम गिनाये गये हैं। उन के नाम और अर्थ नीचे दिये जाते हैं।

(१) उल्लणियाविहि-गीले शरीर को पोंछने के लिए रुमाल (टुवाल, अंगोछा) आदि वस्त्रों की मर्यादा करना (२) दन्तवणविहि-दांतों को साफ करने के लिए दतौन आदि पदार्थों के विषय में मर्यादा करना (३) फलविहि-बाल और सिर को स्वच्छ और शीतल करने के लिये आंवले आदि फलों की मर्यादा करना (४) अब्भंगणविहि-शरीर पर मालिश करने के लिये तैल आदि की मर्यादा करना (५) उव्वट्टणविहि-शरीर पर लगे हुए तैल का चिकनापन तथा मैल को हटाने के लिए उवटन (पीठी आदि) की मर्यादा करना (६) मज्जणविहि-स्नान के लिए स्नान की संख्या और जल का परिमाण करना (७) वत्थविहि-पहनने योग्य वस्त्रों की मर्यादा करना (८) विलेवणविहि-लेपन करने योग्य चन्दन, केसर, कुंकुम आदि पदार्थों की मर्यादा करना (९) पुप्फविहि-फूलों की तथा फूल माला की मर्यादा करना (१०) आभरणविहि-आभूषणों (गहनों) की मर्यादा करना (११) धूवविहि-धूप के पदार्थों की मर्यादा करना (१२) पेज्जविहि-पीने योग्य पदार्थों की मर्यादा करना

* बार बार भोगे जाने वाले पदार्थ उपभोग और एक ही बार भोगे जाने वाले पदार्थ परिभोग हैं। टीकाकारों ने ऐसा अर्थ भी किया है। (उपासकदशाङ्ग अ०१ टीका)

(१३) भक्खविहि–भोजन के लिए घेवर आदि पक्वान्नकी मर्यादा करना (१४) ओदणविहि–रन्धे हुए चावल, थूली खीचड़ी आदि की मर्यादा करना (१५) सूवविहि–मूँग, चने आदि की दाल की मर्यादा करना (१६) घयविहि (विगयविहि–घी, तैल आदि की मर्यादा करना (१७) सागविहि–शाक भाजी की मर्यादा करना (१८) माहुरयविहि–पके हुए मधुर फलों की मर्यादा करना (१९) जेमणविहि–क्षुधा निवृत्ति के लिये खाये जाने वाले पदार्थों की मर्यादा करना (२०) पाणियविहि–पीने के लिए पानी की मर्यादा करना (२१) मुखवासविहि–भोजन के पश्चात् मुख शुद्धि के लिये खाये जाने वाले पदार्थों की मर्यादा करना (२२) वाहण विहि–जिन पर चढ़ कर भ्रमण या प्रवास किया जाता है ऐसी सवारियों की मर्यादा करना (२३) उवाणहविहि–पैर की रक्षा के लिए पहने जाने वाले जूते, मौजे आदि की मर्यादा करना (२४) सयणविहि–सोने और बैठने के काम में आने वाले शय्या पलग आदि पदार्थों की मर्यादा करना (२५) सचित्तविहि–सचित्त वस्तुओं की मर्यादा करना (२६) दव्वविहि–खाने, पीने आदि के काम में आने वाले सचित्त या अचित्त पदार्थों की मर्यादा करना। जो वस्तु स्वाद की भिन्नता के लिए अलग अलग खाई जाती है अथवा एक ही वस्तु स्वाद की भिन्नता के लिये दूसरी दूसरी वस्तु के संयोग के साथ खाई जाती है उसकी गणना भिन्न भिन्न द्रव्य में होती है।

नोट–उपासकदशा में २१ बोलों की मर्यादा का वर्णन है। वाहणविहि, उवाणहविहि, सयणविहि, सचित्तविहि और दव्वविहि ये पांच बोल धर्म संग्रह श्रावक के चौदह नियमों में हैं। श्रावक प्रतिक्रमण के सातवें गुणव्रत में छब्बीस बोलों की मर्यादा की परिपाटी है। इसलिये यहां छब्बीस बोल दिये गए हैं। (उपासकदशा १ दशा सू० ६) धर्म संग्रह अधिकार २ पृ० ८० श्लो० ३४ टी०) (श्रावक प्रतिक्रमण)

६४४–वैमानिक देवों के छब्बीस भेद

रत्नों के बने हुए, स्वच्छ, निर्मल विमानों में रहने वाले देव वैमानिक देव कहलाते हैं। मुख्य रूप से वैमानिक देवों के दो भेद है–कल्पोपपन्न और कल्पातीत। कल्प का अर्थ है आचार, मर्यादा। जिन देवों में इन्द्र, सामानिक आदि की मर्यादा बँधी हुई है, अर्थात् छोटे बड़े आदि का व्यवहार होता है उन्हें कल्पोपपन्न कहते हैं। कल्पोपपन्न देवों के बारह भेद हैं:—

(१) सौधर्म देवलोक (२) ईशान देवलोक (३) सनत्कुमार देवलोक (४) माहेन्द्र देवलोक (५) ब्रह्म देवलोक (६) लान्तक देवलोक (७) महाशुक्र देवलोक (८) सहस्रार देवलोक (९) आणत देवलोक (१०) प्राणत देवलोक (११) आरण देवलोक (१२) अच्युत देवलोक। इन बारह देवलोकों का विस्तृत वर्णन इसी ग्रन्थ के चौथे भाग के बोल नं० ८०८ में दिया गया है।

जिन में इन्द्र, सामानिक आदि की मर्यादा नहीं होती यानी छोटे बड़े का भाव नहीं होता, सभी अहमिन्द्र होते हैं उन्हें कल्पातीत कहते हैं। कल्पातीत के दो भेद हैं–ग्रैवेयक और अनुत्तरोपपातिक।

लोक पुरुषाकार है। वह चौदह राजू परिमाण है। नीचे तेरहवें राजू का बहुत हिस्सा छोड़ कर ऊपर के हिस्से में ग्रीवा के स्थान पर जो देव रहते हैं उन्हें ग्रैवेयक कहते। ग्रैवेयक देवों के नौ भेद हैं। इन देवों के विमान तीन त्रिकों (पंक्तियों) में विभक्त हैं। आरण और अच्युत देवलोक से कुछ ऊपर जाने पर अधस्तन ग्रैवेयक देवों की पहली त्रिक आती है। उसके ऊपर मध्यम ग्रैवेयक देवों की दूसरी त्रिक है। उसके ऊपर उपरितन ग्रैवेयक देवों की तीसरी त्रिक है। ये सब विमान समान दिशा में स्थित हैं। ये विमान पूर्व पश्चिम में लम्बे और उत्तर दक्षिण में चौड़े हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) अधस्तन अधस्तन (२) अधस्तन मध्यम (३) अधस्तन उपरितन (४) मध्यम अधस्तन (५) मध्यम मध्यम (६) मध्यम उपरितन (७) उपरितन अधस्तन (८) उपरितन मध्यम (९) उपरितन उपरितन।

नीचे की त्रिक में कुल विमान १११ हैं। मध्यम त्रिक में १०७ और ऊपर की त्रिक में १०० विमान हैं।

जिन देवों के स्थिति, प्रभाव, सुख, द्युति (क्रान्ति), लेश्या आदि अनुत्तर प्रधान) हैं अथवा स्थिति, प्रभाव आदि में जिन से बढ़ कर कोई दूसरे देव नहीं हैं वे अनुत्तरोपपातिक कहलाते हैं। इनके पाँच भेद हैं-(१) विजय (२) वैजयन्त (३) जयन्त (४) अपराजित (५) सर्वार्थसिद्ध। चारों दिशाओं में विजय आदि चार विमान हैं और बीच में सर्वार्थसिद्ध विमान है।

नव ग्रैवेयक देवों की उत्कृष्ट स्थिति क्रमशः तेईस, चौवीस, पच्चीस छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस सागरोपम की है। प्रत्येक की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट स्थिति से एक सारोपम कम है। विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित-इन चार की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम और जघन्य स्थिति इकतीस सागरोपम की है। सर्वार्थसिद्ध की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है। (पन्नवणा पद १ सू० ३८) (उत्तराध्ययन अध्ययन ३६ गा० २०७ से २१४) (भगवती शतक ८ उद्देशा १ सू० ३१०)

सत्ताईसवाँ बोल संग्रह

९४५—साधु के सत्ताईस गुण

सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र द्वारा जो मोक्ष की साधना करे वह साधु है। साधु के सत्ताईस गुण बतलाये गये हैं। वे इस प्रकार हैं-

वयछक्क मिंदियाणं च निग्गहो भावकरण सच्चं च ।
खमया विरागया वि य, मण माईणं निरोहो य ॥
कायाण छक्क जोगाण जुत्तया वेयणा हियासणया ।
तह मारणंतिया हियासणया य एए अणगार गुणा ॥

भावार्थ-(१-५) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच महाव्रतों का सम्यक् पालन करना। (६) रात्रि-भोजन का त्याग करना। (७-११) श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय इन पाँच इन्द्रियों को वश में रखना अर्थात् इन्द्रियों के इष्ट विषयों की प्राप्ति होने पर उनमें राग न करना और अनिष्ट विषयों से द्वेष न करना। (१२) भाव सत्य अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धि (१३) करण सत्य, अर्थात् वस्त्र, पात्र आदि की प्रतिलेखना तथा अन्य बाह्य क्रियाओं को शुद्ध उपयोग पूर्वक करना (१४) क्षमा-क्रोध और मान का निग्रह अर्थात् इन दोनों को उदय में ही न आने देना (१५) विरागता-निर्लोभता अर्थात् माया और लोभ को उदय में ही न आने देना (१६) मन की शुभ प्रवृत्ति (१७) वचन की शुभ प्रवृत्ति (१८) काया की शुभ प्रवृत्ति (१९-२४) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पति काय और त्रसकाय रूप छः काय के जीवों की रक्षा करना (२५) योग सत्य-मन, वचन और काया रूप तीन योगों की अशुभ प्रवृत्ति को रोक कर शुभ प्रवृत्ति करना (२६) वेदनातिसहनता शीत, ताप आदि वेदना को समभाव से सहन करना (२७) मारणान्तिकातिसहनता-मृत्यु के समय आने वाले कष्टों को समभाव से सहन करना और ऐसा विचार करना कि ये मेरे कल्याण के लिये हैं।

समवायांग सूत्र में सत्ताईस गुण ये हैं-पाँच महाव्रत, पाँच इन्द्रियों का निरोध, चार कषायों का त्याग, भाव सत्य, करण सत्य, योग सत्य, क्षमा, विरागता, मन समाहरणता, वचन समा-

हरणता, काया समाहरणता, ज्ञान संपन्नता, दर्शन संपन्नता, चारित्र-संपन्नता, वेदनातिसहनता, मारणान्तिकातिसहनता। (हारिभद्रीयावश्यक प्रतिक्रमणाध्ययन पृ० ६५९)(समवायांग २७)(उत्तराध्ययन अ० ३१ गा० १८)

९४६--सूयगडांग सूत्र के चौदहवें अध्य० की सत्ताईस गाथाएं

ग्रन्थ (परिग्रह) दो प्रकार का है--बाह्य और आभ्यन्तर। दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़ने से ही पुरुष समाधि को प्राप्त कर सकता है। यह बात सूयगडांग सूत्र के चौदहवें अध्ययन में वर्णन की गई है। उसमें सत्ताईस गाथाएं हैं। उनका भावार्थ इस प्रकार है:--

(१) संसार की असारता को जान कर मोक्षाभिलाषी पुरुष को चाहिए कि परिग्रह का त्याग कर गुरु के पास दीक्षा लेकर सम्यक् प्रकार से शिक्षा प्राप्त करे और ब्रह्मचर्य का पालन करे। गुरु की आज्ञा का भले प्रकार से पालन करता हुआ विनय सीखे और संयम पालन में किसी प्रकार प्रमाद न करे।

(२) जिस पक्षी के बच्चे के पूरे पंख नहीं आये हैं वह यदि उड़ कर अपने घोंसले से दूर जाने का प्रयत्न करता है तो वह उड़ने में समर्थ नहीं होता अपने कोमल पंखों द्वारा फड़ फड़ करता हुआ वह ढंक आदि मांसाहारी पक्षियों द्वारा मार दिया जाता है।

(३) जिस प्रकार अपने घोंसले से बाहर निकले हुए पङ्खरहित पक्षी के बच्चे को हिंसक पक्षी मार देते हैं उसी प्रकार गच्छ से निकल कर अकेले विचरते हुए, सूत्र के अर्थ में अनिपुण तथा धर्म तत्त्व को अच्छी तरह न जानने वाले नव दीक्षित शिष्य को पाखण्डी लोग बहका कर धर्म भ्रष्ट कर देते हैं।

(४) जो पुरुष गुरुकुल (गुरु की सेवा) में निवास नहीं करता। वह कर्मों का नाश नहीं कर सकता। ऐसा जान कर मोक्षाभिलाषी

पुरुष को सदा गुरु की सेवा में ही रहना चाहिए किन्तु गच्छ को छोड़ कर कदापि बाहर न जाना चाहिए।

(५) सदा गुरु की चरण सेवा में रहने वाला साधु स्थान, शयन, आसन आदि में उपयोग रखता हुआ, उत्तम एवं श्रेष्ठ साधुओं के समान आचारवाला हो जाता है। वह समिति और गुप्ति के विषय में पूर्ण रूप से प्रवीण हो जाता है। वह स्वयं संयम में स्थिर रहता है और उपदेशद्वारा दूसरों को भी संयम में स्थिर करता है।

(६) समिति और गुप्ति से युक्त साधु अनुकूल और प्रतिकूल शब्दों को सुन कर राग द्वेष न करे अर्थात् वीणा, वेणु आदि के मधुर शब्दों को सुन कर उनमें राग न करे तथा अपनी निन्दा आदि के कर्णकटु तथा पिशाचादि के भयंकर शब्दों को सुन कर द्वेष न करे। निद्रा तथा विकथा, कषायादि प्रमादों का सेवन न करते हुए संयम मार्ग की अराधना करे। किसी विषय में शङ्का होने पर गुरु से पूछ कर उसका निर्णय करे।

(७) कभी प्रमादवश भूल हो जाने पर अपने से बड़े, छोटे अथवा रत्नाधिक या समान अवस्था वाले साधु द्वारा भूल सुधारने के लिए कहे जाने पर जो साधु अपनी भूल को स्वीकार नहीं करता प्रत्युत शिक्षा देने वाले पर क्रोध करता है, वह संसार के प्रवाह में बह जाता है पर संसार को पार नहीं कर सकता।

(८) शास्त्रविरुद्ध कार्य करने वाले साधु को छोटे, बड़े, गृहस्थ या अन्यतीर्थिक शास्त्रोक्त शुभ आचरण की शिक्षा दें यहाँ तक कि निन्दित आचार वाली घटदासी भी कुपित होकर साध्वाचार का पालन करने के लिए कहे तो भी साधु को क्रोध न करना चाहिए। 'जो कार्य आप करते हैं वह तो गृहस्थों के योग्य भी नहीं है' इस प्रकार कठोर शब्दों से भी यदि कोई अच्छी शिक्षा दे तो साधु को मन में कुछ भी दुःख न मान कर ऐसा समझना

चाहिए कि यह मेरे कल्याण की ही बात कहता है।

(६) पूर्वोक्त प्रकार से शिक्षा दिया गया एवं शास्त्रोक्त आचार की ओर प्रेरित किया गया साधु शिक्षा देने वालों पर किञ्चिन्मात्र भी क्रोध न करे, उन्हें पीड़ित न करे तथा उन्हें किसी प्रकार के कटु वचन भी न कहे किन्तु उन्हें ऐसा कहे कि मैं भविष्य में प्रमाद न करता हुआ शास्त्रानुकूल आचरण करूँगा।

(१०) जङ्गल में जब कोई व्यक्ति मार्ग भूल जाता है तब यदि कोई मार्ग जानने वाला पुरुष उसे ठीक मार्ग बता दे तो वह प्रसन्न होता है और उस पुरुष का उपकार मानता है, इसी तरह साधु को चाहिये कि हितशिक्षा देने वाले पुरुषों का उपकार माने और समझे कि ये लोग जो शिक्षा देते हैं इसमें मेरा ही कल्याण है।

(११) फिर इसी अर्थ की पुष्टि के लिये शास्त्रकार कहते हैं— जैसे मार्ग भ्रष्ट पुरुष मार्ग बताने वाले का विशेषरूप से सत्कार करता है इसी तरह साधु को चाहिये कि सन्मार्ग का उपदेश एवं हित शिक्षा देने वाले पुरुष पर क्रोध न करे किन्तु उसका उपकार माने और उसके वचनों को अपने हृदय में स्थापित करे। तीर्थङ्कर देव का और गणधरों का यही उपदेश है।

(१२) जैसे मार्ग का जानने वाला पुरुष भी अँधेरी रात में मार्ग नहीं देख सकता है किन्तु सूर्योदय होने के पश्चात् प्रकाश फैलने पर मार्ग को जान लेता है।

(१३) इसी प्रकार सूत्र और अर्थ को न जानने वाला धर्म में अनिपुण शिष्य धर्म के स्वरूप को नहीं जानता किन्तु गुरुकुल में रहने से वह जिन वचनों का ज्ञाता बन कर धर्म को ठीक उसी प्रकार जान लेता है जैसे सूर्योदय होने पर नेत्रवान् पुरुष घट पटादि पदार्थों को देख लेता है।

(१४) ऊँची, नीची तथा तिर्छी दिशाओं में जो त्रस और

स्थावर प्राणी रहे हुए हैं उनकी यतना पूर्वक किसी प्रकार हिंसा न करता हुआ साधु संयम का पालन करे तथा मन से भी उनके प्रति द्वेष न करता हुआ संयम में दृढ़ रहे।

(१५) साधु अवसर देख कर श्रेष्ठ आचार वाले आचार्य महाराज से प्राणियों के सम्बन्ध में प्रश्न करे और सर्वज्ञ के आगम का उपदेश देने वाले आचार्य का सन्मान करे। आचार्य की आज्ञानुसार प्रवृत्ति करता हुआ साधु उनके द्वारा कहे हुए सर्वज्ञोक्त मोक्ष मार्ग को हृदय में धारण करे।

(१६) गुरु की आज्ञानुसार कार्य करता हुआ साधु मन, वचन और काया से प्राणियों की रक्षा करे क्योंकि समिति और गुप्ति का यथावत् पालन करने से ही कर्मों का क्षय और शान्ति लाभ होता है। त्रिलोकदर्शी, सर्वज्ञ देवों का कथन है कि साधु को फिर कभी प्रमाद का सेवन न करना चाहिए।

(१७) गुरु की सेवा करने वाला विनीत साधु उत्तम पुरुषों का आचार सुन कर और अपने इष्ट अर्थ मोक्ष को जान कर बुद्धिमान् और सिद्धान्त का वक्ता हो जाता है। सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप मोक्ष मार्ग का अर्थी वह साधु तप और शुद्ध संयम प्राप्त कर शुद्ध आहार से निर्वाह करता हुआ शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

(१८) गुरु की सेवा में रहने वाला साधु धर्म के मर्म को समझ कर दूसरों को उपदेश देता है तथा त्रिकालदर्शी होकर वह कर्मों का अन्त कर देता है। वह स्वयं संसार सागर से पार होता है और दूसरों को भी संसार सागर से पार कर देता है। किसी विषय में पूछने पर वह सोच विचार कर यथार्थ उत्तर देता है।

(१९) किसी के प्रश्न पूछने पर साधु शास्त्र के अनुकूल उत्तर दे किन्तु शास्त्र के अर्थ को छिपावे नहीं और उत्सूत्र की प्ररूपणा न करे अर्थात् शास्त्रविरुद्ध अर्थ न कहे। मैं बड़ा विद्वान् हूँ, मैं

बड़ा तपस्वी हूँ इस प्रकार अभिमान् न करे तथा अपने ही मुँह से अपनी प्रशंसा न करे। अर्थ की गहनता अथवा और किसी कारण से श्रोता यदि उसके उपदेश को न समझ सके तो उसकी हँसी न करे। साधु को किसी को आशीर्वाद न देना चाहिए।

(२०) प्राणियों की हिंसा की शंका से, पाप से घृणा करने वाला साधु किसी को आशीर्वाद न दे तथा मन्त्र विद्या का प्रयोग करके अपने संयम को निःसार न बनावे। साधु लाभ, पूजा या सत्कार आदि की इच्छा न करे तथा हिंसाकारी उपदेश न दे।

(२१) जिससे अपने को या दूसरे को हास्य उत्पन्न हो ऐसा वचन साधु न बोले तथा हँसी में भी पापकारी उपदेश न दे। छः काय के जीवों का रक्षक साधु प्रिय और सत्य वचन का उच्चारण करे। किन्तु ऐसा सत्य वचन जो दूसरे को दुःखित करता हो, न कहे। पूजा सत्कार पाकर साधु मान न करे, न अपनी प्रशंसा करे। कषाय रहित साधु व्याख्यान के समय लाभ की अपेक्षा न करे।

(२२) सूत्र और अर्थ के विषय में शंका रहित भी साधु कभी निश्चयकारी भाषा न बोले। किन्तु सदा अपेक्षा वचन कहे। धर्माचरण में समुद्यत साधुओं के बीच रहता हुआ साधु दो भाषाओं यानी सत्य और व्यवहार भाषा का ही प्रयोग करे तथा सम्पन्न और दरिद्र सभी को समभाव से धर्मकथा सुनावे।

(२३) पूर्वोक्त दो भाषाओं का आश्रय लेकर धर्म की व्याख्या करते हुए साधु के कथन को कोई बुद्धिमान् पुरुष ठीक ठीक समझ लेते हैं और कोई मन्दबुद्धि पुरुष उस अर्थ को नहीं समझते अथवा विपरीत समझ लेते हैं। साधु उन मन्द बुद्धि पुरुषों को मधुर और कोमल शब्दों से समझावे किन्तु उनकी हँसी या निन्दा न करे। जो अर्थ संक्षेप में कहा जा सकता है उसे व्यर्थ शब्दाडम्बर से विस्तृत न करे। इसके लिए टीकाकार ने कहा है—

सो अत्थो वत्तव्वो जो भएणइ अक्खरेहिं थोवेहिं ।
जो पुण थोवो वहुं अक्खरेहिं सो होइ निस्सारो ॥

अर्थ—साधु वही अर्थ कहे जो अल्प अक्षरों में कहा जाय। जो अर्थ थोड़ा होकर बहुत अक्षरों में कहा जाता है वह निस्सार है।

(२४) जो अर्थ थोड़े शब्दों में कहने योग्य नहीं है उसे साधु विस्तृत शब्दों से कह कर समझावे। गहन अर्थ को सरल हेतु और युक्तियों से इस प्रकार समझावे कि अच्छी तरह श्रोता की समझ में आजाय। गुरु से यथावत् अर्थ को समझ कर साधु आज्ञा से शुद्ध वचन बोले तथा पाप का विवेक रखे।

(२५) साधु तीर्थङ्कर कथित वचनों का सदा अभ्यास करता रहे, उनके उपदेशानुसार ही बोले तथा साधु मर्यादा का अतिक्रमण न करे। श्रोता की योग्यता देख कर साधु को इस प्रकार धर्म का उपदेश देना चाहिए जिससे उसका सम्यक्त्व दृढ़ हो और वह अपसिद्धान्त को छोड़ दे। जो साधु उपरोक्त प्रकार से उपदेश देना जानता है वही सर्वज्ञोक्त भाव समाधि को जानता है।

(२६) साधु आगम के अर्थ को दूषित न करे तथा शास्त्र के सिद्धान्त को न छिपावे। गुरु भक्ति का ध्यान रखते हुए जिस प्रकार गुरु से सुना है उसी प्रकार दूसरे के प्रति सूत्र की व्याख्या करे किन्तु अपनी कल्पना से सू[illegible] एवं अर्थ को अन्यथा न कहे।

(२७) अध्ययन को समाप्त करते हुए शास्त्रकार कहते हैं— जो साधु शुद्ध सूत्र आर अर्थ का कथन करता है अर्थात् उत्सर्ग के स्थान म उत्सग [illegible] धर्म [illegible] और अपवाद के स्थान में अपवाद रूप धर्म का कथन करता है वही पुरुष ग्राह्यवाक्य है अर्थात् उसी की बात मानने योग्य है। इस प्र[illegible]र सूत्र और अर्थ में निपुण और विना विचारे कार्य न करने वाला पुरुष ही सर्वज्ञोक्त भाव समाधि को प्राप्त करता है। (सूयगडांग सूत्र अध्ययन १४)

६४७—सूयगडांग सूत्र के पाँचवें अध्ययन की सत्ताईस गाथाएं

सूयगडांग सूत्र के पाँचवें अध्ययन का नाम नरयविभत्ति है। उसमें नरक सम्बन्धी दुःखों का वर्णन किया गया है। इसके दो उद्देशे हैं। पहले उद्देशे में सत्ताईस गाथाएं हैं और दूसरे उद्देशे में पचीस गाथाएं हैं। पचीस गाथाओं का अर्थ पचीसवें बोल संग्रह में दिया जा चुका है। यहाँ पहले उद्देशे की सत्ताईस गाथाओं का अर्थ दिया जाता है।

(१) जम्बूस्वामी ने श्री सुधर्मास्वामी से पूछा–हे भगवन्! नरक भूमि कैसी है? किन कर्मों से जीव वहाँ उत्पन्न होते हैं? और वहाँ कैसी पीड़ा भोगनी पड़ती है? ऐसा पूछने पर सुधर्मास्वामी फरमाने लगे–हे आयुष्मन् जम्बू! तुम्हारी तरह मैंने भी केवल ज्ञानी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछा था कि भगवन्! आप केवलज्ञान से नरकादि के स्वरूप को जानते हैं किन्तु मैं नहीं जानता। इसलिए नरक का क्या स्वरूप है और किन कर्मों से जीव वहाँ उत्पन्न होते हैं? यह बात मुझे आप कृपा करके बतलाइये।

(२) श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि इस प्रकार पूछने पर चौंतीस अतिशयों से सम्पन्न, सब वस्तुओं में सदा उपयोग रखने वाले, काश्यप गोत्रीय भगवान् महावीर स्वामी ने कहा कि नरक स्थान बड़ा ही दुःखदायी और दुरुत्तर है। वह पापी जीवों का निवासस्थान है। नरक का स्वरूप आगे बताया जायगा।

(३) प्राणियों को भय देने वाले जो अज्ञानी जीव अपने जीवन की रक्षा के लिये हिंसादि पाप कर्म करते हैं वे तीव्र पाप तथा घोर अन्धकार युक्त महा दुःखद नरक में उत्पन्न होते हैं।

(४) जो जीव अपने सुख के लिए त्रस और स्थावर प्राणियों

का तीव्रता के साथ विनाश और उपमर्दन करते हैं, दूसरों की चीजों को बिना दिये ग्रहण करते हैं और सेवन करने योग्य संयम का किंचित् भी सेवन नहीं करते वे नरक में उत्पन्न होते हैं।

(५) जो जीव प्राणियों की हिंसा करने में बड़े ढीठ हैं, धृष्टता के साथ प्राणियों की हिंसा करते हैं और सदा क्रोधाग्नि से जलते रहते हैं वे अज्ञानी जीव मरण के समय तीव्र वेदना से पीड़ित होकर नीचा सिर करके महा अन्धकार युक्त नरक में उत्पन्न होते हैं।

(६) मारो, काटो, भेदन करो, जलाओ, इस प्रकार परमाधार्मिक देवों के वचन सुन कर नारकी जीव भयभीत होकर संज्ञाहीन हो जाते हैं। वे चाहते हैं कि इस दुख से बचने के लिए किसी दिशा में भाग जायें।

(७) जलती हुई अंगार राशि अथवा ज्वालाकुल पृथ्वी के समान अत्यन्त उष्ण और तप्त नरक भूमि में चलते हुए नारकी जीव जलने लगते हैं और अत्यन्त करुण स्वर में विलाप करते हैं। इन वेदनाओं से उनका शीघ्र ही छुटकारा नहीं होता किन्तु बहुत लम्बे काल तक उन्हें वहाँ रहना पड़ता है।

(८) उस्तरे के समान तेज धार वाली वैतरणी नदी के विषय में शायद तुमने सुना होगा। वह नदी बड़ी दुर्गम है। परमाधार्मिक देवों से बाण तथा भालों से विद्ध और शक्ति द्वारा मारे गये नारकी जीव घबरा कर उस वैतरणी में कूद पड़ते हैं। किन्तु वहाँ पर भी उन्हें शान्ति नहीं मिलती।

(९) वैतरणी नदी के खारे, गर्म और दुर्गन्ध युक्त जल से सन्तप्त होकर नारकी जीव परमाधार्मिक देवों द्वारा चलाई जाती हुई काँटेदार नाव में चढ़ने के लिए नाव की तरफ दौड़ते हैं। ज्यों ही वे नाव के समीप पहुँचते हैं त्यों ही नाव में पहले से चढ़े हुए परमाधार्मिक देव उनके गले में कील चुभा देते हैं जिससे वे

संज्ञाहीन हो जाते हैं। उन्हें कोई शरण दिखाई नहीं देती। कई परमाधार्मिक देव अपने मनोविनोद के लिए शूल और त्रिशूल से वेध कर उन्हें नीचे पटक देते हैं।

(१०) परमाधार्मिक देव किन्हीं किन्हीं नारकी जीवों को गले में बड़ी बड़ी शिलाएं बांध कर अगाध जल में डुबा देते हैं। फिर उन्हें खींच कर तप्त बालुका तथा मुर्मुराग्नि में फेंक देते हैं और चने की तरह भूनते हैं। कई परमाधार्मिक देव शूल में बींधे हुए मांस की तरह नारकी जीवों को अग्नि में डाल कर पकाते हैं।

(११) सूर्य रहित, महान् अन्धकार से परिपूर्ण, अत्यन्त ताप वाली, दुःख से पार करने योग्य, ऊपर, नीचे और तिर्छे अर्थात् सब दिशाओं में अग्नि से प्रज्वलित नरकों में पापी जीव उत्पन्न होते हैं।

(१२) ऊंट के आकार वाली नरक की कुम्भियों में पड़े हुए नारकी जीव अग्नि से जलते रहते हैं। तीव्र वेदना से पीड़ित होकर वे संज्ञा हीन बन जाते हैं। नरक भूमि करुणाप्राय और ताप का स्थान है। वहां उत्पन्न पापी जीव को क्षणभर भी सुख प्राप्त नहीं होता किन्तु निरन्तर दुःख ही दुःख भोगना पड़ता है।

(१३) परमाधार्मिक देव चारों दिशाओं में अग्नि जला कर नारकी जीवों को तपाते हैं। जैसे जीती हुई मछली को अग्नि में डाल देने पर वह तड़फती है किन्तु बाहर नहीं निकल सकती, इसी तरह वे नारकी जीव भी वहीं पड़े हुए जलते रहते हैं किन्तु बाहर नहीं निकल सकते।

(१४) संतक्षण नामक एक महानरक है। वह प्राणियों को अत्यन्त दुःख देने वाली है। वहां क्रूर कर्म करने वाले परमाधार्मिक देव अपने हाथों में कुठार लिये हुए रहते हैं। वे नारकी जीवों को हाथ पैर बांध कर डाल देते हैं और कुठार द्वारा काठ की तरह उनके अङ्गोपाङ्ग काट डालते हैं।

(१५) नरकपाल नारकी जीवों का मस्तक चूर चूर कर देते हैं और विष्ठा से भरे हुए और सूजन से फूले हुए अंगवाले उन नारकी जीवों को कड़ाही में डाल कर उन्हीं के खून में ऊपर नीचे करते हुए पकाते हैं। सुतप्त लोहे की कड़ाही में डाली हुई जीवित मछली जैसे छटपटाती है उसी प्रकार नारकी जीव भी तीव्र वेदना से विकल होकर तड़फते रहते हैं।

(१६) परमाधार्मिक देव नारकी जीवों को अग्नि में जलाते हैं किन्तु वे जल कर भस्म नहीं होते और नरक की तीव्र पीड़ा से वे मरते भी नहीं हैं किन्तु स्वकृत पापों के फल रूप नरक की पीड़ा को भोगते हुए वहां चिर काल तक दुःख पाते रहते हैं।

(१७) शीत से पीड़ित नारकी जीव अपना शीत मिटाने के लिए जलती हुई अग्नि के पास जाते हैं किन्तु उन बेचारों को वहां भी सुख प्राप्त नहीं होता। वे उस प्रदीप्त अग्नि में जलने लगते हैं। अग्नि में जलते हुए उन नारकी जीवों पर गर्म तैल डाल कर परमाधार्मिक देव उन्हें और अधिक जलाते हैं।

(१८) जैसे नगर वध के समय नगर निवासी लोगों का करुणा युक्त हाहाकारपूर्ण महान् आक्रन्दन शब्द सुनाई देता है उसी प्रकार नरक में परमाधार्मिक देव द्वारा पीड़ित किये जाते हुए नारकी जीवों का हाहाकारपूर्ण भयानक रुदन शब्द सुनाई देता है। हा मात! हा तात! मैं अनाथ हूं, मैं तुम्हारा शरणागत हूं, मेरी रक्षा करो, इस प्रकार नारकी जीव करुण विलाप करते रहते हैं। मिथ्यात्व हास्य और रति आदि के उदय से प्रेरित होकर परमाधार्मिक देव उन्हें उत्साहपूर्वक विविध दुःख देते हैं।

(१९) पाप कर्म करने वाले परमाधार्मिक देव नारकी जीवों के नाक कान आदि अङ्गों को काट काट कर अलग कर देते हैं। इस दुःख का यथार्थ कारण मैं तुम लोगों से कहूंगा। परमाधार्मिक

देव उन्हें विविध वेदना देते हैं और साथ ही पूर्वकृत कर्मों का स्मरण कराते हैं। जैसे तू बड़े हर्ष के साथ प्राणियों का मांस खाता था, मद्य पान करता था, परस्त्री सेवन करता था, अब उन्हीं का फल भोगता हुआ तू क्यों चिल्ला रहा है ?

(२०) परमाधार्मिक देवों द्वारा मारे जाते हुए वे नारकी जीव नरक के एक स्थान से उछल कर विष्ठा, मूत्र आदि अशुचि पदार्थों से परिपूर्ण महादुःखदायी दूसरे स्थानों में गिर पड़ते हैं किन्तु वहाँ भी उन्हें शान्ति प्राप्त नहीं होती। अशुचि पदार्थों का आहार करते हुए वे वहाँ बहुत काल तक रहते हैं। परमाधार्मिक देव कृत अथवा परस्पर कृत कृमि उन नारकी जीवों को बुरी तरह काटते हैं।

(२१) नारकी जीवों के रहने का स्थान अत्यन्त उष्ण है। निधत्त और निकाचित कर्मों के फल रूप वह उन्हें प्राप्त होता है। अत्यन्त दुःख देना ही उस स्थान का स्वभाव है। परमाधार्मिक देव नारकी जीवों को खोड़ा बेड़ी में डाल देते हैं, उनके अङ्गों को तोड़ मरोड़ देते हैं और मस्तक में कील से छेद कर घोर दुःख देते हैं।

(२२) नरकपाल स्वकृत कर्मों से दुःख पाते हुए नारकी जीवों के ओठ, नाक और कान तेज उस्तरे से काट लेते हैं। उनकी जीभ को बाहर खींचते हैं और तीक्ष्ण शूल चुभा कर दारुण दुःख देते हैं।

(२३) नाक, कान, ओठ आदि के कट जाने से उन नारकी जीवों के अङ्गों से खून टपकता रहता है। सूखे तालपत्र के समान दिन रात वे जोर जोर से चिल्लाते रहते हैं। उनके अङ्गों को अग्नि में जलाकर ऊपर खार छिड़क दिया जाता है जिससे उन्हें अत्यन्त वेदना होती है एवं उनके अङ्गों से निरन्तर खून और पीव झरता रहता है।

(२४) सुधर्मास्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—रक्त और पीव को पकाने वाली कुम्भी नामक नरक भूमि को कदाचित् तुमने सुना होगा। वह अत्यन्त उष्ण है। पुरुष प्रमाण से भी वह अधिक

बड़ी है। ऊंट के समान आकार वाली वह कुम्भी ऊंची रही हुई है और रक्त और पीव से भरी हुई है।

(२५) आर्त्तनाद पूर्वक करुण क्रन्दन करते हुए नारकी जीवों को परमाधार्मिक देव रक्त और पीव से भरी हुई उस कुम्भी के अन्दर डाल कर पकाते हैं। प्यास से पीड़ित होकर जब वे पानी मांगते हैं तब परमाधार्मिक देव उन्हें मद्यपान की याद दिलाते हुए तपाया हुआ सीसा और तांबा पिला देते हैं जिससे वे और भी ऊंचे स्वर में आर्त्तनाद करते हैं।

(२६) इस उद्देशे के अर्थ को समाप्त करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि इस मनुष्य भव में जो जीव दूसरों को ठगने में प्रवृत्ति करते हैं वास्तव में वे अपनी आत्मा को ही ठगते हैं। अपने थोड़े सुख के लिए जो जीव प्राणि वध आदि पाप कार्यों में प्रवृत्ति करते हैं वे लुब्धक आदि नीच योनियों में सैकड़ों और हजारों बार जन्म लेते हैं। अन्त में बहुत पाप उपार्जन कर वे नरक में उत्पन्न होते हैं। वहां उन्हें चिर काल तक दुःख भोगने पड़ते हैं। पूर्व जन्म में उन्होंने जैसे पाप किये हैं उन्हीं के अनुरूप वहां उन्हें वेदना होती है।

(२७) प्राणी अपने इष्ट और प्रियजनों के खातिर हिंसादि अनेक पाप कर्म करता है, किन्तु अन्त में कर्मों के वश वह अपने इष्ट और प्रियजनों से अलग होकर अकेला ही अत्यन्त दुर्गन्ध और अशुभ स्पर्श वाले तथा मांस रुधिरादि से पूर्ण नरक में उत्पन्न होता है और चिर काल तक वहां दारुण दुःख भोगता रहता है।

(सूयगडाग सूत्र अध्ययन ५ उद्देशा १)

६४८—आकाश के सत्ताईस नाम

जो जीवादि द्रव्यों को रहने के लिए अवकाश दे उसे आकाश कहते हैं। भगवती सूत्र में आकाश के सत्ताईस पर्यायवाची शब्द दिये

हैं और कहा है कि इसी प्रकार के और भी जो शब्द हैं वे आकाश के पर्यायवाची हैं। सत्ताईस पर्याय शब्द ये हैं:-

(१) आकाश (२) अकाशास्तिकाय (३) गगन (४) नभ (५) सम (६) विषम (७) खह (८) विहायस् (९) वीचि (१०) विचर (११) अंबर (१२) अंबरस (१३) छिद्र (१४) शुषिर (१५) मार्ग (१६) विमुख (१७) अर्द (१८) व्यर्द (१९) आधार (२०) व्योम (२१) भाजन (२२) अन्तरिक्ष (२३) श्याम (२४) अवकाशांतर (२५) अगम (२६) स्फटिक (२७) अनन्त। भगवती शतक २० उ० ३ सू० ६६४

९४९-औत्पत्तिकी बुद्धि के सत्ताईस दृष्टान्त

औत्पत्तिकी बुद्धि का लक्षण इस प्रकार है-

पुव्वमदिट्ठमस्सुयमवेइय, तक्खणविसुद्धगहियत्था।
अव्वाहय फल जोगा, बुद्धी उप्पत्तिया नाम ॥

अर्थ-पहले बिना देखे, बिना सुने और बिना जाने हुए पदार्थों को तत्काल यथार्थ रूप से ग्रहण करने वाली तथा अबाधित (निश्चित) फल को देने वाली बुद्धि औत्पत्तिकी कहलाती है।

इस बुद्धि के सत्ताईस दृष्टान्त हैं। वे नीचे दिये जाते हैं-

भरह सिल पणिय रुक्खे, खुड्डग पड सरड काय उच्चारे।
गय घयण गोल खंभे, खुड्डग मग्गित्थि पइपुत्ते ॥
महुसित्थ, मुद्दि अंके य, नाणए भिक्खु चेडगणिहाणे।
सिक्खा य अत्थसत्थे, इच्छा य महं सय सहस्से ॥

अर्थ-(१) भरत (२) पणित (शर्त) (३) वृक्ष (४) खुड्डग (अंगूठी) (५) पट (६) शरट (गिरगिट) (७) कौआ (८) उच्चार (९) हाथी (१०) घयण (११) गोलक (१२) स्तम्भ (१३) क्षुल्लक (१४) मार्ग (१५) स्त्री (१६) पति (१७) पुत्र (१८) मधुसिक्थ (१९) मुद्रिका (२०) अंक (२१) नाणक (२२) भिक्षु (२३) चेटकनिधान

(२४) शिक्षा (२५) अर्थशास्त्र (२६) इच्छा महं (२७) शतसहस्र।

(१) भरतशिला–इसके अन्तर्गत रोहक की बुद्धि के चौदह दृष्टान्त हैं वे इस प्रकार हैं–

भरह सिल मिढ कुक्कुड़ तिल वालुअ हत्थी अगड़ वणसंडे।
पायस अइया पत्ते, खाडहिला पच पिअरो अ ॥ ६४ ॥

अर्थ–(१) भरत (२) शिला (३) मेंढा (४) कुर्कुट (५) तिल (६) बालू (७) हाथी (८) कुआ (९) वनखण्ड (१०) खीर (११) अजा (१२) पत्र (१३) गिलहरी (१४) पाँच पिता।

(१) भरत–उज्जयिनी नगरी के पास नटों का एक गांव था। उसमें भरत नाम का नट रहता था। वह अपनी पत्नी के साथ आनन्द पूर्वक समय व्यतीत करता था। कुछ समय पश्चात् उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम रोहक रक्खा गया। जब वह छोटा ही था कि उसकी माता का देहान्त होगया। पुत्र की उम्र छोटी देख कर उसके लालन पालन तथा अपनी सेवा के लिए भरत ने दूसरी शादी कर ली। सौतेली माता का व्यवहार रोहक के साथ प्रेम पूर्ण नहीं था। उसके कठोर व्यवहार से रोहक दुःखी हो गया। एक दिन उसने अपनी माँ से कहा–माँ! तू मेरे साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार नहीं करती है, यह अच्छा नहीं है। माँ ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने उपेक्षापूर्वक कहा–रे रोहक! यदि मैं अच्छा व्यवहार नहीं करूं तो तू मेरा क्या कर लेगा? रोहक ने कहा– माँ! मैं ऐसा कार्य करूँगा जिससे तुझे मेरे पैरों पर गिरना पड़ेगा। माँ ने कहा–रे रोहक! तू अभी बच्चा है। छोटे मुँह बड़ी बात बनाता है। अच्छा! मैं देखती हूं तू मेरा क्या कर लेगा? यह कह कर वह सदा की भांति अपने कार्य में लग गई।

रोहक अपनी बात को पूरी करने का अवसर देखने लगा। एक दिन रात्रि के समय वह अपने पिता के साथ बाहर सोया हुआ

था। उसकी माँ मकान में सोई हुई थी। अर्द्ध रात्रि के समय रोहक यकायक चिल्लाने लगा—पिताजी! उठिये। घर में से निकल कर कोई पुरुष भागा जा रहा है। भरत एक दम उठा और बालक से पूछने लगा—किधर? बालक ने कहा—पिताजी! वह अभी इधर से भाग गया है। बालक की बात सुन कर भरत को अपनी स्त्री के प्रति शंका हो गई। वह सोचने लगा स्त्री का आचरण ठीक नहीं है। यहां कोई जार पुरुष आता है। इस प्रकार स्त्री को दुराचारिणी समझ कर भरत ने उसके साथ सारे सम्बन्ध तोड़ दिये। यहां तक की उसने उसके साथ सम्भाषण करना भी छोड़ दिया। इस प्रकार निष्कारण पति को रूठा देख कर वह समझ गई कि यह सब करामात बालक रोहक की ही है। इसको प्रसन्न किये बिना मेरा काम नहीं चलेगा। ऐसा सोचकर उसने प्रेम पूर्वक अनुनय विनय करके और भविष्य में अच्छा व्यवहार करने का विश्वास दिला कर बालक रोहक को प्रसन्न किया। रोहक ने कहा—माँ! अब मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि तुम्हारे प्रति पिताजी की अप्रसन्नता शीघ्र ही दूर हो जायगी।

एक दिन वह पूर्ववत् अपने पिता के साथ सोया हुआ था कि अर्द्ध रात्रि के समय सहसा चिल्लाने लगा—पिताजी! उठिये। कोई पुरुष घर में से निकल कर बाहर जा रहा है। भरत एकदम उठा और हाथ में तलवार लेकर कहने लगा—बतला, वह पुरुष कहाँ है? उस जार पुरुष का सिर मैं अभी तलवार से काट डालता हूं। बालक ने अपनी छाया दिखाते हुए कहा—यह वह पुरुष है। भरत ने पूछा—क्या उस दिन भी ऐसा ही पुरुष था? बालक ने कहा—हाँ। भरत सोचने लगा—बालक के कहने से व्यर्थ ही (निर्णय किये बिना ही) मैंने अपनी स्त्री से अप्रीति का व्यवहार किया। इस प्रकार पश्चात्ताप करके वह अपनी स्त्री से पूर्ववत् प्रेम करने लगा।

रोहक ने सोचा—मेरे दुर्व्यवहार से अप्रसन्न हुई माता कदाचित् मुझे विष देकर मार दे, इसलिए अब मुझे अकेले भोजन न करना चाहिए किन्तु पिता के साथ ही भोजन करना चाहिए। ऐसा सोच कर रोहक सदा पिता के साथ ही भोजन करने लगा और सदा पिता के साथ ही रहने लगा।

एक समय भरत किसी कार्यवश उज्जयिनी गया। रोहक भी उसके साथ गया। नगरी देवपुरी के समान शोभित थी। उसे देख कर रोहक बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपने मन में नगरी का पूर्ण चित्र खींच लिया। कार्य करके भरत वापिस अपने गांव की ओर रवाना हुआ। जब वह शहर से निकल कर शिप्रा नदी के किनारे पहुंचा तब भरत को भूली हुई चीज की याद आई। रोहक को वहीं बिठाकर वह वापिस नगरी से गया। इधर रोहक ने शिप्रा नदी के किनारे की बालू रेत पर राजमहल तथा कोट किले सहित उज्जयिनी नगरी का हुबहू चित्र खींच दिया। संयोगवश घोड़े पर सवार हुआ राजा उधर आ निकला। राजा को अपनी चित्रित की हुई नगरी की ओर आते देख कर रोहक बोला—ऐ राजपुत्र! इस रास्ते से मत आओ। राजा बोला—क्यों ? क्या है ? रोहक बोला—देखते नहीं ? यह राजभवन है। यहां हर कोई प्रवेश नहीं कर सकता। यह सुन कर कौतुकवश राजा घोड़े से नीचे उतरा। उसके चित्रित किये हुए नगरी के हूबहू चित्र को देख कर राजा बहुत विस्मित हुआ। उसने बालक से पूछा—तुमने पहले कभी इस नगरी को देखा है ? बालक ने कहा—नहीं। आज ही मैं गांव से आया हूं। बालक की अपूर्व धारणा शक्ति देख कर राजा चकित हो गया। वह मन ही मन उसकी बुद्धि की प्रशंसा करने लगा। राजा ने उससे पूछा—वत्स ! तुम्हारा नाम क्या है और तुम कहां रहते हो ? बालक ने कहा—मेरा नाम रोहक है और मैं इस पास वाले नटों के गांव

में रहता हूं। इतने में रोहक का पिता वहां आ पहुंचा। रोहक अपने पिता के साथ रवाना हो गया।

राजा भी अपने महल में चला आया और सोचने लगा कि मेरे ४९९ मन्त्री हैं। यदि कोई अतिशय बुद्धिशाली प्रधान मन्त्री बना दिया जाय तो मेरा राज्य सुख पूर्वक चलेगा। ऐसा विचार कर राजा ने रोहक की बुद्धि की परीक्षा करने का निश्चय किया। रोहक की औत्पत्तिकी बुद्धि की यह पहली कथा है।

(४) शिला—एक दिन राजा ने नटों के उस गांव में यह आदेश भेजा कि तुम सब लोग राजा के योग्य मण्डप तय्यार करो। मण्डप ऐसी चतुराई से बनना चाहिए कि गांव की बाहर वाली बड़ी शिला, बिना निकाले ही छत के रूप बन जाय।

राजा के उपरोक्त आदेश को सुन कर गांव के सब लोग बड़े असमञ्जस में पड़ गये। गांव के बाहर सभा करके सब लोग परस्पर विचार करने लगे कि किस प्रकार राजा की इस कठिन आज्ञा का पालन किया जाय ? आज्ञा का पालन न होने पर राजा कुपित होकर अवश्य ही भारी दण्ड देगा। इस तरह चिन्तित होकर विचार करते करते दोपहर हो गया किन्तु कोई उपाय न सूझा।

रोहक पिता के बिना भोजन नहीं करता था। इसलिए भूख से व्याकुल हो वह भरत के पास आया और कहने लगा—पिताजी ! मुझे बहुत भूख लगी है। भोजन के लिए जल्दी घर चलिए। भरत ने कहा—वत्स ! तुम सुखी हो। गांव के कष्ट को तुम नहीं जानते। रोहक ने कहा—पिताजी ! गांव पर क्या कष्ट आया है ? भरत ने रोहक को राजा की आज्ञा कह सुनाई। सब बात सुन लेने पर हँसते हुए रोहक ने कहा—पिताजी ! आप लोग चिन्ता न कीजिए। यदि गांव पर यही कष्ट है तो यह सहज ही दूर किया जा सकता है। मण्डप बनाने के लिए शिला के चारों तरफ जमीन खोद

डालो। यथास्थान चारों कोनों पर खम्भे लगा कर बीच की मिट्टी को भी खोद डालो। फिर चारो तरफ दीवार बना दो, मण्डप तय्यार हो जायगा।

रोहक का बताया हुआ उपाय सब लोगों को ठीक जँचा। उनकी चिन्ता दूर हो गई। सब लोग भोजन करने के लिये अपने अपने घर गये। भोजन करने के पश्चात् उन्होंने मण्डप बनाना आरम्भ किया। कुछ ही दिनों में सुन्दर मण्डप बन कर तय्यार हो गया। इसके पश्चात् उन्होंने राजा की सेवा में निवेदन किया कि स्वामिन्! आपकी आज्ञानुसार मण्डप बन कर तय्यार है। उस पर शिला की छत लगा दी है। राजा ने पूछा—कैसे ? तब उन्होंने मण्डप बनाने की सारी हकीकत कह सुनाई। राजा ने पूछा यह किसकी बुद्धि है ? गाँव के लोगों ने कहा—देव ! यह भरत के पुत्र रोहक की बुद्धि है। उसी ने यह सारा उपाय बताया था। लोगों की बात सुन कर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। रोहक की बुद्धि का यह दूसरा उदाहरण हुआ।

(३) मेंढा—कुछ समय पश्चात् रोहक की बुद्धि की परीक्षा के लिए राजा ने एक मेंढा भेजा और गांव वालों को आदेश दिया कि पन्द्रह दिन के बाद हम इस मेंढे को वापस मंगायेंगे। आज इसका जितना वजन है उतना ही पन्द्रह दिन के बाद रहना चाहिए। मेंढा वजन में न घटना चाहिए, न बढ़ना ही चाहिए।

राजा के उपरोक्त आदेश को सुन कर गांव वाले लोग पुनः चिन्तित हुए। वे विचारने लगे—यह कैसे होगा ? यदि मेंढे को खाने के लिए दिया जायगा तो वह वजन में बढ़ेगा और यदि खाने को न दिया जायगा तो वजन में अवश्य घट जायगा। इस प्रकार राजाज्ञा को पूरा करने का उन्हें कोई उपाय न सूझा, तब रोहक को बुला कर कहने लगे—वत्स ! तुमने पहले भी गांव

के कष्ट को दूर किया था। आज फिर गांव पर कष्ट आया है। तुम अपने बुद्धिबल से इसे दूर करो। ऐसा कह कर उन्होंने रोहक को राजाज्ञा कह सुनाई। रोहक ने कहा–खाने के लिए मेंढे को घास जव आदि यथा समय दिया करो किन्तु इसके सामने वृक (व्याघ्र की जाति का एक हिंसक प्राणी) बांध दो। यथा समय दिया जाने वाला भोजन और वृक का भय–दोनों मिल कर इसे वजन में न घटने देंगे और न बढ़ने देंगे।

रोहक की बात सब लोगों को पसन्द आगई। उन्होंने रोहक के कथनानुसार मेंढे की व्यवस्था कर दी। पन्द्रह दिन बाद लोगों ने मेंढा वापिस राजा को लौटा दिया। राजा ने उसे तोल कर देखा तो उसका वजन पूरा निकला, न घटा, न बढ़ा. राजा के पूछने पर उन लोगों ने सारा वृत्तान्त कह दिया। रोहक की बुद्धि का यह तीसरा उदाहरण हुआ।

(४) कुक्कुट–एक समय राजा ने उस गांव के लोगों के पास एक मुर्गा भेजा और यह आदेश दिया कि दूसरे मुर्गे के बिना ही इस मुर्गे को लड़ना सिखाओ और लड़ाकू बना कर वापिस भेज दो।

राजा के उपरोक्त आदेश का पालन करने के लिए गांव के लोग उपाय सोचने लगे पर जब उन्हें कोई उपाय न मिला तब उन्होंने रोहक से इसके विषय में पूछा। रोहक ने कहा–इस मुर्गे के सामने एक बड़ा दर्पण (काच) रख दो। दर्पण में पड़ने वाली अपनी परछाई को दूसरा मुर्गा समझ कर यह उसके साथ लड़ने लगेगा। गांव के लोगों ने रोहक के कथनानुसार कार्य किया। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में वह मुर्गा लड़ाकू बन गया। लोगों ने वह मुर्गा वापिस राजा को लौटा दिया। अकेला मुर्गा लड़ाकू बन गया है इस बात की राजा ने परीक्षा की। युक्ति के लिये पूछने पर लोगों ने सच्ची हकीकत कह सुनाई। इससे राजा बहुत खुश

हुआ। रोहक की बुद्धि का यह चौथा उदाहरण हुआ।

तिल—कुछ दिनों बाद राजा ने तिलों से भरी हुई कुछ गाड़ियाँ उस गांव के लोगों के पास भेजीं और कहलाया कि इनमें कितने तिल हैं इसका जल्दी जवाब दो, अधिक देर न लगनी चाहिए।

राजा का आदेश सुन कर सभी लोग चिन्तित हो गये, उन्हें कोई उपाय न सूझा। रोहक से पूछने पर उसने कहा-तुम सब लोग राजा के पास जाओ और कहो—महाराज! हम गणितज्ञ तो हैं नहीं, जो इन तिलों की संख्या बता सकें। किन्तु आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके उपमा से कहते हैं कि आकाश में जितने तारे हैं, उतने ही ये तिल हैं। यदि आपको विश्वास न हो तो राजपुरुषों द्वारा तिलों की और तारों की गिनती करवा लीजिये।

लोगों को रोहक की बात पसन्द आ गई। राजा के पास जाकर उन्होंने वैसा ही उत्तर दिया। सुन कर राजा खुश हुआ। उसने पूछा यह उत्तर किसने बताया है? लोगों ने उत्तर में रोहक का नाम लिया। रोहक की बुद्धि का यह पांचवाँ उदाहरण हुआ।

बालू—कुछ समय पश्चात् गांव के लोगों के पास यह आज्ञा पहुंची कि तुम्हारे गांव के पास जो नदी है उसकी बालू बहुत बढ़िया है। उस बालू की एक रस्सी बना कर शीघ्र भेज दो।

राजा के उपरोक्त आदेश को सुन कर गांव के लोग बहुत असमञ्जस में पड़े। इस विषय में भी उन्होंने रोहक से पूछा। रोहक ने कहा—तुम सभी राजा के पास जाकर अर्ज करो—स्वामिन्! हम तो नट हैं, नाचना जानते हैं, रस्सी बनाना हम क्या जानें? किन्तु आपकी आज्ञा का पालन करना हमारा कर्तव्य है। इसलिये प्रार्थना है कि राजभण्डार बहुत प्राचीन है, उसमें बालू की बनी हुई कोई रस्सी हो तो दे दीजिये। हम उसे देख बालू की नई रस्सी बना भेज देंगे।

गांव के लोगों ने राजा के पास जाकर रोहक के कथनानुसार

निवेदन किया। यह उत्तर सुन कर राजा मन में बहुत लज्जित हुआ। उसने उनसे पूछा–तुम्हें यह युक्ति किसने बताई ? लोगों ने रोहक का नाम बताया। रोहक की बुद्धि से राजा बहुत खुश हुआ। रोहक की बुद्धि का यह छठा उदाहरण हुआ।

हाथी–एक समय राजा ने एक बूढ़ा बीमार हाथी गाँव वालों के पास भेजा और आदेश दिया कि हाथी मर गया है यह खबर मुझे न देना। किन्तु हाथी की दिनचर्या की सूचना प्रतिदिन देते रहना अन्यथा सारे गाँव को भारी दण्ड दिया जायगा।

गाँव वाले लोग हाथी को धान, घास तथा पानी आदि देकर उसकी खूब सेवा करने लगे किन्तु हाथी की बीमारी बहुत बढ़ चुकी थी। इसलिये वह थोड़े ही दिनों में मर गया। प्रातःकाल गाँव के सब लोग इकट्ठे हुए और विचारने लगे कि राजा को हाथी के मरने की सूचना किस प्रकार दी जाय। पर उन्हें कोई उपाय न सूझा। वे बहुत चिन्तित हुए। आखिर रोहक को बुला कर उन्होंने सारी हकीकत कही। रोहक ने उन्हें तुरन्त एक युक्ति बता दी जिससे सब लोगों की चिन्ता दूर हो गई। उन्होंने राजा के पास जाकर निवेदन किया–राजन् ! आज हाथी न उठता है, न बैठता है, न खाता है, न पीता है, न हिलता है, न डुलता है, यहाँ तक की श्वासोच्छ्वास भी नहीं लेता, विशेष क्या, सचेतनता की एक भी चेष्टा आज उसमें दिखाई नहीं देती। राजा ने पूछा–क्या हाथी मर गया है ? गाँव वालों ने कहा–देव ! आप ही ऐसा कह सकते हैं, हम लोग नहीं। गाँव वालों का उत्तर सुन कर राजा निरुत्तर हो गया। राजा के उत्तर बताने वाले का नाम पूछने पर लोगों ने कहा–रोहक ने हमें यह उत्तर बतलाया है। रोहक की बुद्धि का यह सातवाँ उदाहरण हुआ।

अगड (कुआ)–कुछ दिनों बाद राजा ने उस गाँव के लोगों

के पास कुछ राजपुरुषों के साथ यह आदेश भेजा कि तुम्हारे गाँव में एक मीठे जल का कुआ है उसे शहर में भेज दो।

राजा के उपरोक्त आदेश को सुन कर सब लोग चकित हुए। वे सब विचार में पड़ गये कि इस आज्ञा को किस तरह से पूरी की जाय। इस विषय में भी उन्होंने रोहक से पूछा। रोहक ने उन्हें एक युक्ति बता दी। उन्होंने कुआ लेने के लिये आये हुए राजपुरुषों से कहा—ग्रामीण कुआ स्वभाव से ही डरपोक होता है। सजातीय के सिवाय वह किसी पर विश्वास नहीं करता। इसलिए इसको लेने के लिए किसी शहर के कुए को यहाँ भेज दो। उस पर विश्वास करके यह उसके साथ शहर में चला आयेगा। राजपुरुषों ने लौट कर राजा से गाँव वालों की बात कही। सुन कर राजा निरुत्तर हो गया। रोहक की बुद्धि का यह आठवाँ उदाहरण हुआ।

वनखण्ड—कुछ दिनों बाद राजा ने गाँव के लोगों के पास यह आदेश भेजा कि तुम्हारे गाँव के पूर्व दिशा में एक वनखण्ड (उद्यान) है। उसे पश्चिम दिशा में कर दो।

राजा के इस आदेश को सुनकर लोग चिन्ता में पड़ गये। उन्होंने रोहक से पूछा। रोहक ने उन्हें एक युक्ति बता दी। उसके अनुसार गाँव के लोगों ने वनखण्ड के पूर्व की ओर अपने मकान बना लिये और वे वहीं रहने लगे। इस प्रकार राजाज्ञा पूरी हुई देख कर राजपुरुषों ने राजा की सेवा में निवेदन कर दिया। राजा ने उनसे पूछा—गांव वालों को यह युक्ति किसने बतलाई ? राजपुरुषों ने कहा—रोहक नामक एक बालक ने उन्हें यह युक्ति बताई थी। रोहक की बुद्धि का यह नवां उदाहरण हुआ।

खीर—एक समय राजा ने गांव के लोगों के पास यह आज्ञा भेजी कि बिना अग्नि खीर पका कर भेजो। राजा के इस अपूर्व आदेश को सुन कर सभी लोग चिन्तित हुए। उन्होंने इस

विषय में भी रोहक से पूछा। रोहक ने कहा—चाँवलों को पहले पानी में खूब अच्छी तरह भिगो कर गर्म किये हुए दूध में डाल दो। फिर सूर्य की किरणों से खूब तपे हुए कोयलों या पत्थरों पर उस चाँवल की थाली को रख दो। इससे खीर पक कर तैयार हो जायगी। लोगों ने रोहक के कथनानुसार कार्य किया। खीर पक कर तैयार हो गई। उसे ले जाकर उन लोगों ने राजा की सेवा में उपस्थित की। राजा ने पूछा—बिना अग्नि खीर कैसे पकाई? लोगों ने सारी हकीकत कही। राजा ने पूछा—तुम लोगों को यह तरकीब किसने बताई? लोगों ने कहा रोहक ने हमें यह तरकीब बताई। रोहक की बुद्धि का यह दसवाँ उदाहरण हुआ।

अजा—रोहक ने अपनी तीव्र (औत्पत्तिकी) बुद्धि से राजा के सारे आदेशों को पूरा कर दिया। इससे राजा बहुत खुश हुआ। राज-पुरुषों को भेज कर राजा ने रोहक को अपने पास बुलाया। साथ ही यह आदेश दिया कि रोहक न शुक्लपक्ष में आवे न कृष्ण पक्ष में, न रात्रि में आवे न दिन में, न धूप में आवे न छाया में, न आकाश से आवे न पैदल चल कर, न मार्ग से आवे न उन्मार्ग से, न स्नान करके आवे न बिना स्नान किये, किन्तु आवे जरूर।

राजा के उपरोक्त आदेश को सुन कर रोहक ने कण्ठ तक स्नान किया और अमावस्या और प्रतिपदा के संयोग में संध्या के समय सिर पर चालनी का छत्र धारण करके, मेंढे पर बैठ कर गाड़ी के पहिये के बीच के मार्ग से राजा के पास पहुँचा। राजा, देवता और गुरु के दर्शन खाली हाथ न करना चाहिये, इस लोकोक्ति का विचार कर रोहक ने एक मिट्टी का ढेला हाथ में ले लिया। राजा के पास जाकर उसने विनय पूर्वक राजा को प्रणाम किया और उसके सामने मिट्टी का ढेला रख दिया। राजा ने रोहक से पूछा—यह क्या है? रोहक ने कहा—देव! आप पृथ्वीपति हैं,

इसलिये मैं पृथ्वी लाया हूँ। प्रथम दर्शन में यह मंगल वचन सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। रोहक के साथ में आये हुए गाँव के लोग भी बहुत खुश हुए। राजा ने रोहक को वहीं रख लिया और गाँव के लोग घर लौट गये।

राजा ने रोहक को अपने पास में सुलाया। पहला पहर बीत जाने पर राजा ने रोहक को आवाज दी–रे रोहक! जागता है या सोता है? रोहक ने जवाब दिया–देव! जागता हूँ। राजा ने पूछा–तू क्या सोच रहा है? रोहक ने जवाब दिया–देव! मैं इस बात पर विचार कर रहा हूँ कि बकरी के पेट में गोल गोल गोलियाँ (मिंगनियाँ) कैसे बनती हैं? रोहक की बात सुन कर राजा भी विचार में पड़ गया। उसने पुनः रोहक से पूछा–अच्छा तुम्हीं बताओ, ये कैसे बनती हैं? रोहक ने कहा–देव! बकरी के पेट में संवर्त्तक नाम का वायु विशेष होता है। उसीसे ऐसी गोल गोल मिंगनियाँ बन कर बाहर गिरती हैं। यह कह कर रोहक सो गया। रोहक की बुद्धि का यह ग्यारहवाँ उदाहरण हुआ।

पत्र–दो पहर रात बीतने पर राजा ने पुनः आवाज दी–रोहक! क्या सो रहा है या जाग रहा है? रोहक ने कहा—स्वामिन्! जाग रहा हूँ। राजा ने कहा—क्या सोच रहा है? रोहक ने जवाब दिया–मैं यह सोच रहा हूँ कि पीपल के पत्ते का दण्ड बड़ा होता है या शिखा। रोहक का कथन सुन कर राजा भी सन्देह में पड़ गया। उसने पूछा–रोहक! तुमने इस विषय में क्या निर्णय किया है? रोहक ने कहा–देव! जब तक शिखा का भाग नहीं सूखता तब तक दोनों बराबर होते हैं। राजा ने आस पास के लोगों से पूछा तो उन्होंने भी रोहक का समर्थन किया। रोहक वापिस सो गया। यह रोहक की बुद्धि का बारहवाँ उदाहरण हुआ।

खाडहिला (गिलहरी)—रात का तीसरा पहर बीत जाने

पर राजा ने फिर वही प्रश्न किया-रोहक ! सोता है या जागता है ? रोहक ने कहा-स्वामिन् ! जाग रहा हूँ । राजा ने फिर पूछा-क्या सोच रहा है ? रोहक ने कहा-मैं यह सोच रहा हूँ कि गिलहरी का शरीर जितना बड़ा होता है उतनी ही बड़ी पूँछ होती है या कम ज्यादा ? रोहक की बात सुन कर राजा स्वयं सोचने लगा । किन्तु जब वह कुछ भी निर्णय न कर सका तब उसने रोहक से पूछा-तू ने क्या निर्णय किया है ? रोहक ने कहा-देव ! दोनों बराबर होते हैं । यह कह कर वह सो गया । रोहक की बुद्धि का यह तेरहवाँ उदाहरण हुआ ।

पाँच पिता-रात्रि व्यतीत होने पर प्रातःकालीन मंगलमय वाद्य सुन कर राजा जागृत हुआ । उसने रोहक को आवाज दी किन्तु रोहक गाढ़ निद्रा में सोया हुआ था । तब राजा ने अपनी छड़ी से उसके शरीर का स्पर्श किया जिससे वह एक दम जग गया । राजा ने कहा-रोहक क्या सोता है ? रोहक ने कहा- नहीं, मैं जागता हूँ । राजा ने कहा तो फिर बोला क्यों नहीं ? रोहक ने कहा-मैं एक गम्भीर विचार में तल्लीन था । राजा ने पूछा-किस बात पर गम्भीर विचार कर रहा था ? रोहक ने कहा-मैं इस विचार में लगा हुआ था कि आपके कितने पिता हैं यानी आप कितनों से पैदा हुए हैं ? रोहक के कथन को सुन कर राजा कुछ लज्जित हो गया । थोड़ी देर चुप रह कर राजा ने फिर पूछा-अच्छा तो बतला मैं कितनों से पैदा हुआ हूँ ? रोहक ने कहा आप पाँच से पैदा हुए हैं । राजा ने पूछा-किन किन से ? रोहक ने कहा--एक तो वैश्रवण (कुबेर) से, क्योंकि आप में कुबेर के समान ही दानशक्ति है । दूसरे चाण्डाल से, क्योंकि वैरियों के लिये आप चाण्डाल के समान ही क्रूर हैं । तीसरे धोबी से, क्योंकि जैसे धोबी गीले कपड़े को खूब निचोड़ कर सारा पानी निकाल लेता है उसी

प्रकार आप भी दूसरों का सर्वस्व हर लेते हैं। चौथे बिच्छू से, क्योंकि जिस प्रकार बिच्छू निर्दयता पूर्वक डंक मार कर दूसरों को पीड़ा पहुंचाता है। उसी प्रकार सुखपूर्वक निद्रा में सोये हुए मुझ बालक को भी आपने छड़ी के अग्रभाग से जगा कर कष्ट दिया। पाँचवें अपने पिता से, क्योंकि अपने पिता के समान ही आप भी प्रजा का न्यायपूर्वक पालन कर रहे हैं।

रोहक की उपरोक्त बात सुन कर राजा विचार में पड़ गया। आखिर शौचादि से निवृत्त हो राजा अपनी माता के पास गया। प्रणाम करने के पश्चात् राजा ने एकान्त में माता से कहा--माँ! मेरे कितने पिता हैं? माता ने लज्जित होकर कहा--पुत्र! तुम यह क्या प्रश्न कर रहे हो? इस पर राजा ने रोहक की कही हुई सारी बात कह सुनाई और कहा--माँ! रोहक का कथन मिथ्या नहीं हो सकता। इसलिये तुम मुझे सच सच कह दो। माता ने कहा--पुत्र! यदि किसी को देखने आदि से मानसिक भाव का विकृत हो जाना भी तेरे संस्कार का कारण हो सकता है तब तो रोहक का कथन ठीक ही है। जब तू गर्भवास में था उस समय मैं वैश्रवण देव की पूजा के लिये गई थी। उसकी सुन्दर मूर्ति को देख कर तथा वापिस लौटते समय रास्ते में धोबी और चाण्डाल युवक को देख कर मेरी भावना विकृत हो गई थी। घर आने पर आटे के बिच्छू को मैंने हाथ पर रखा और उसका स्पर्श पाकर भी मेरी भावना विकृत हो गई थी। वैसे तो जगत्प्रसिद्ध पिता ही तुम्हारे वास्तविक जनक हैं। यह सुन कर राजा को रोहक की बुद्धि पर बड़ा आश्चर्य हुआ। माता को प्रणाम कर वह अपने महल लौट आया उसने रोहक को प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त किया।

उपरोक्त चौदह कथाएँ रोहक की औत्पात्तिकी बुद्धि की हैं ये सब औत्पत्तिकी बुद्धि के प्रथम उदाहरण के अन्तर्गत हैं

(२) पणित (शर्त, होड)—एक समय कोई ग्रामीण किसान अपने गांव से ककड़ियां लेकर बेचने के लिये नगर को गया। द्वार पर पहुँचते ही उसे एक धूर्त नागरिक मिला। उसने ग्रामीण को भोला समझ कर ठगना चाहा। धूर्त नागरिक ने ग्रामीण से कहा—यदि मैं तुम्हारी सब ककड़ियां खा जाऊँ तो तुम मुझे क्या दोगे? ग्रामीण ने कहा—यदि तुम सब ककड़ियां खा जाओ तो मैं तुम्हें इस द्वार में न आवे ऐसा लड्डू इनाम दूँगा। दोनों में यह शर्त तय हो गई और उन्होंने कुछ आदमियों को साक्षी बना लिया। इसके बाद धूर्त नागरिक ने ग्रामीण की सारी ककड़ियां जूंठी करके (थोड़ी थोड़ी खा कर) छोड़ दीं और ग्रामीण से कहा कि मैंने तुम्हारी सारी ककड़ियां खा ली हैं, इसलिये शर्त के अनुसार अब मुझे इनाम दो। ग्रामीण ने कहा—तुमने सारी ककड़ियां कहां खाई हैं? इस पर नागरिक बोला—मैंने तुम्हारी सारी ककड़ियाँ खा ली हैं। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो चलो, इन ककड़ियों को बेचने के लिये बाजार में रखो। ग्राहकों के कहने से तुम्हें अपने आप विश्वास हो जायगा। ग्रामीण ने यह बात स्वीकार की और सारी ककड़ियाँ उठा कर बाजार में बेचने के लिये रख दीं। थोडी देर में ग्राहक आये। ककड़ियाँ देख कर वे कहने लगे—ये ककड़ियां तो सभी खाई हुई हैं। ग्राहकों के ऐसा कहने पर ग्रामीण तथा साक्षियों को नागरिक की बात पर विश्वास हो गया। अब ग्रामीण घबराया कि शर्त के अनुसार लड्डू कहां से लाकर दूँ? नागरिक से अपना पीछा छुड़ाने के लिये उसने उसे एक रुपया देना चाहा किन्तु धूर्त कहाँ राजी होने वाला था। आखिर ग्रामीण ने सौ रुपया तक देना स्वीकार कर लिया किन्तु धूर्त इस पर भी राजी न हुआ। उसे इससे भी अधिक मिलने की आशा थी। निदान ग्रामीण सोचने लगा—धूर्त लोग सरलता से नहीं मानते। वे धूर्तता से ही मानते

हैं। इसलिये मुझे भी किसी धूर्त की ही शरण लेनी चाहिए। ऐसा सोच कर ग्रामीण ने उस धूर्त नागरिक से कुछ समय का अवकाश मांगा। शहर में घूम कर उसने किसी धूर्त नागरिक से मित्रता कर ली और सभी घटना सुना कर उचित सम्मति मांगी। उसने ग्रामीण को धूर्त से छुटकारा पाने का उपाय बता दिया। बाजार में आकर ग्रामीण ने हलवाई की दूकान से एक लड्डू खरीदा और अपने प्रतिपक्षी नागरिक तथा साक्षियों को साथ लेकर वह दरवाजे के पास आया। लड्डू को बाहर रख कर वह दरवाजे के भीतर खड़ा हो गया और लड्डू को सम्बोधन कर कहने लगा-'ओ लड्डू! अन्दर चले आओ, चले आओ!' ग्रामीण के बार बार कहने पर भी लड्डू अपनी जगह से तिल भर भी नहीं हटा। तब ग्रामीण ने उपस्थित साक्षियों से कहा-मैंने आप लोगों के सामने यही शर्त की थी कि मैं ऐसा लड्डू दूंगा जो दरवाजे में न आवे। यह लड्डू भी दरवाजे में नहीं आता। यदि आप लोगों को विश्वास न हो तो आप भी बुला कर देख सकते हैं। यह लड्डू देकर अब मैं अपनी शर्त से मुक्त हो गया हूँ। साक्षियों ने तथा उपस्थित अन्य सभी लोगों ने ग्रामीण की बात स्वीकार की। यह देख धूर्त नागरिक बहुत लज्जित हुआ और चुपचाप अपने घर चला गया। धूर्त से पीछा छूट जाने से प्रसन्न होता हुआ ग्रामीण अपने गांव को लौट गया। शर्त लगाने वाले तथा ग्रामीण को सम्मति देने वाले धूर्त नागरिक की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(३) वृक्ष-कई पथिक यात्रा कर रहे थे। रास्ते में फलों से लदे हुए आम के वृक्ष को देख कर वे आम लेने के लिये ठहर गये। पेड़ पर बहुत से बन्दर बैठे हुए थे। वे पथिकों को आम लेने में रुकावट डालने लगे। इस पर पथिक आम लेने का उपाय सोचने लगे। आखिर उन्होंने बुद्धिबल से वस्तुस्थिति का विचार कर बन्दरों

की ओर पत्थर फेंकना शुरू किया। बन्दर कुपित हो गये और उन्होंने पत्थरों का जवाब आम के फलों से दिया। इस प्रकार पथिकों का अपना प्रयोजन सिद्ध हो गया। आम प्राप्त करने की यह पथिकों की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(४) खुड्डग (अंगूठी)—मगध देश में राजगृह नाम का सुन्दर और रमणीय नगर था। उसमें प्रसेनजित नाम का राजा राज्य करता था उसके बहुत से पुत्र थे। उन सब में श्रेणिक बहुत बुद्धिमान् था। उसमें राजा के योग्य समस्त गुण विद्यमान् थे। दूसरे राजकुमार ईर्षावश कहीं उसे मार न दें, यह सोच कर राजा उसे न कोई अच्छी वस्तु देता था और न लाड प्यार ही करता था। पिता के इस व्यवहार से खिन्न होकर एक दिन श्रेणिक, पिता को सूचना दिये बिना ही, वहाँ से निकल गया चलते चलते वह बेन्नातट नामक नगर में पहुंचा। उस नगर में एक सेठ रहता था। उसका वैभव नष्ट हो चुका था। श्रेणिक उसी सेठ की दूकान पर पहुँचा और वहाँ एक तरफ बैठ गया।

सेठ ने उसी रात स्वप्न में अपनी लड़की नन्दा का विवाह किसी रत्नाकर के साथ होते देखा था। यह शुभ स्वप्न देखने से सेठ विशेष प्रसन्न था। जब सेठ दूकान पर आकर बैठा तो श्रेणिक के पुण्य प्रभाव स सेठ के यहां कई दिनों की खरीद कर रखी हुई पुरानी चीजें बहुत ऊँची कीमत में बिकीं। इसके सिवाय रत्नों की परीक्षा न जानने वाले लोगों द्वारा लाये हुए कई बहुमूल्य रत्न भी बहुत थोड़े मूल्य में सेठ को मिल गये। इस प्रकार अचिन्त्य लाभ देख कर सेठ को बड़ी प्रसन्नता हुई। इसका कारण सोचते हुए उसे ख्याल आया कि दूकान पर बैठे हुए इस महात्मा पुरुष के अतिशय पुण्य का ही यह प्रभाव प्रतीत होता है। विस्तीर्ण ललाट और भव्य आकार इसके पुण्यातिशय की साक्षी दे रहे हैं। मैंने गत रात्रि में अपनी कन्या

का विवाह रत्नाकर के साथ होने का स्वप्न देखा था। प्रतीत होता है, वास्तव में वही यह रत्नाकर है। ऐसा सोच कर सेठ श्रेणिक के पास आया और विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर पूछने लगा–महाभाग ! आप किसके यहाँ पाहुने पधारे हैं ? श्रेणिक ने जवाब दिया–अभी तो आप ही के यहाँ आया हूँ। श्रेणिक का यह उत्तर सुन कर सेठ बहुत प्रसन्न हुआ। आदर और बहुमान के साथ श्रेणिक को वह अपने घर ले गया और आदर के साथ उसे भोजन कराया। अब श्रेणिक वहीं रहने लगा।

श्रेणिक के पुण्य प्रताप से सेठ के यहाँ प्रतिदिन धन की वृद्धि होने लगी। कुछ दिन बीतने पर शुभ मुहूर्त में सेठ ने अपनी पुत्री का विवाह श्रणिक के साथ कर दिया। श्रेणिक नन्दा के साथ सुखपूर्वक रहने लगा। कुछ समय पश्चात् नन्दा गर्भवती हुई। यथाविधि गर्भ का पालन करती हुई वह समय व्यतीत करने लगी।

श्रेणिक के चले जाने से राजा प्रसेनजित को बड़ी चिन्ता रहती थी। नौकरों को भेज कर उसने इधर उधर श्रेणिक की बहुत खोज करवाई। किन्तु कहीं पता न लगा। अन्त में उसे मालूम हुआ कि श्रेणिक बेन्नातट शहर चला गया है। वहाँ किसी सेठ की कन्या से उसका विवाह हो गया है और वह वहीं सुखपूर्वक रहता है।

एक समय राजा प्रसेनजित अचानक बीमार हो गया। अपना अन्त समय समीप देख उसने श्रेणिक को बुलाने के लिये सवार भेजे। बेन्नातट पहुँच कर उन्होंने श्रेणिक से कहा–राजा प्रसेनजित आपको शीघ्र बुलाते हैं। पिता की आज्ञा को स्वीकार कर श्रेणिक ने राजगृह जाना निश्चय किया। अपनी पत्नी नन्दा को पूछ कर श्रेणिक राजगृह की ओर रवाना हो गया। जाते समय अपनी पत्नी की जानकारी के लिये उसने अपना परिचय भींत के एक भाग पर लिख दिया।

गर्भ के तीन मास पूरे होने पर, अच्युत देवलोक से चव कर आये हुए महापुण्यशाली गर्भस्थ आत्मा के प्रभाव से, नन्दा को यह दोहला उत्पन्न हुआ—क्या ही अच्छा हो कि श्रेष्ठ हाथी पर सवार हो मैं सभी लोगों को धन का दान देती हुई अभयदान दूं अर्थात् भयभीत प्राणियों का भय दूर कर उन्हें निर्भय बनाऊँ। जब दोहले की बात नन्दा के पिता को मालूम हुई तो उसने राजा की अनुमति लेकर उसका दोहला पूर्ण करा दिया। गर्भकाल पूर्ण होने पर नन्दा की कुक्षि से एक प्रतापी और तेजस्वी बालक का जन्म हुआ। दोहले के अनुसार बालक का नाम अभयकुमार रखा गया। बालक नन्दन वन के वृक्ष की तरह सुखपूर्वक बढ़ने लगा। यथासमय विद्याध्ययन कर बालक सुयोग्य बन गया।

एक समय अभयकुमार ने अपनी मां से पूछा—मां! मेरे पिता का क्या नाम है और वे कहाँ रहते हैं? मां ने आदि से लेकर अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया तथा भींत पर लिखा हुआ परिचय भी उसे दिखा दिया। सब देख सुन कर अभयकुमार ने समझ लिया कि मेरे पिता राजगृह के राजा हैं। उसने सार्थ के साथ राजगृह चलने के लिये मां के साथ सलाह की। मां के हां भरने पर वह अपनी मां को साथ लेकर सार्थ के साथ राजगृह की ओर रवाना हुआ। राजगृह पहुंच कर उसने अपनी मां को शहर के बाहर एक बाग में ठहरा दिया और आप स्वयं शहर में गया।

शहर में प्रवेश करते ही अभयकुमार ने एक जगह बहुत से लोगों की भीड़ देखी। नजदीक जाकर उसने पूछा कि यहाँ पर इतनी भीड़ क्यों इकट्ठी हो रही है? तब राजपुरुषों ने कहा—इस जल रहित कुए में राजा की अंगूठी गिर पड़ी है। राजा ने यह आदेश दिया है कि जो व्यक्ति बाहर खड़ा रह कर ही इस अंगूठी को निकाल देगा उसको बहुत बड़ा इनाम दिया जायगा।

राजपुरुषों की बात सुन कर अभयकुमार ने कहा—मैं इस अंगूठी को राजा की आज्ञा अनुसार बाहर निकाल दूँगा। तत्काल उसे एक युक्ति सूझ गई। पास में पड़ा हुआ गीला गोबर उठा कर उसने अंगूठी पर गिरा दिया जिससे वह गोबर में मिल गई। कुछ समय पश्चात् जब गोबर सूख गया तो उसने कुए को पानी से भरवा दिया। इससे गोबर में लिपटी हुई वह अंगूठी भी जल पर तैरने लगी। उसी समय अभयकुमार ने बाहर खड़े ही अंगूठी निकाल ली और राजपुरुषों को दे दी। राजा के पास जाकर राजपुरुषों ने निवेदन किया—देव! एक विदेशी युवक ने आपके आदेशानुसार अंगूठी निकाल दी है। राजा ने उस युवक को अपने पास बुलाया और पूछा—वत्स! तुम्हारा नाम क्या है और तुम किसके पुत्र हो? युवक ने कहा—देव! मेरा नाम अभयकुमार है और मैं आपका ही पुत्र हूँ। राजा ने आश्चर्य के साथ पूछा—यह कैसे? तब अभयकुमार ने पहले का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुन राजा को बहुत हर्ष हुआ और स्नेहपूर्वक उसने उसे अपने हृदय से लगा लिया। इसके बाद राजा ने पूछा—वत्स! तुम्हारी माता कहाँ है? अभयकुमार ने कहा—मेरी माता शहर के बाहर उद्यान में ठहरी हुई है। कुमार की बात सुन कर राजा उसी समय नन्दा रानी को लाने के लिये उद्यान की ओर रवाना हुआ। राजा के पहुंचने के पहले ही अभयकुमार अपनी माँ के पास लौट आया और उसने उसे सारा वृत्तान्त सुना दिया। राजा के आने के समाचार पाकर नन्दा ने शृङ्गार करना चाहा कि अभयकुमार ने यह कह कर मना कर दिया कि पति से वियुक्त हुई कुलस्त्रियों को अपने पति के दर्शन किये बिना शृङ्गार न करना चाहिये। थोड़ी देर में राजा भी उद्यान में आ पहुंचा। नन्दा राजा के चरणों में गिरी। राजा ने भूषण वस्त्र देकर उसका सम्मान किया। रानी

और अभयकुमार को साथ लेकर बड़ी धूमधाम के साथ राजा अपने महलों में लौट आया। अभयकुमार की विलक्षण बुद्धि को देख कर राजा ने उसे प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त कर दिया। वह न्याय नीतिपूर्वक राज्य कार्य चलाने लगा।

बाहर खड़े रह कर ही कुए से अंगूठी को निकाल लेना अभयकुमार की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(५) पट (वस्त्र)-दो आदमी किसी तालाब पर जाकर एक साथ स्नान करने लगे। उन्होंने अपने कपड़े उतार कर किनारे पर रख दिये। एक के पास ओढ़ने के लिये ऊनी कम्बल था और दूसरे के पास ओढ़ने के लिये सूती कपड़ा था। सूती कपड़े वाला आदमी जल्दी स्नान करके बाहर निकला और कम्बल लेकर रवाना हुआ। यह देख कर कम्बल का स्वामी शीघ्रता के साथ पानी से बाहर निकला और पुकार कर कहने लगा-भाई! यह कम्बल तुम्हारा नहीं किन्तु मेरा है। अतः मुझे दे दो। पर वह देने को राजी न हुआ। आखिर वे अपना न्याय कराने के लिये राज दरबार में पहुंचे। किसी का कोई साक्षी न होने से निर्णय होना कठिन समझ कर न्यायाधीश ने अपने बुद्धिबल से काम लिया। उसने दोनों के सिर के बालों में कंघी करवाई। इस पर कम्बल के वास्तविक स्वामी के मस्तक से ऊन के तन्तु निकले। उसी समय न्यायाधीश ने उसे कम्बल दिलवा दी और दूसरे पुरुष को उचित दण्ड दिया। कंघी करवा कर ऊन के कम्बल के असली स्वामी का पता लगाने में न्यायाधीश की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(६) शरट (गिरगिट)-एक समय एक सेठ शौच निवृत्ति के लिये जंगल में गया। असावधानी से वह एक बिल पर बैठ गया। सहसा एक शरट (गिरगिट) दौड़ता हुआ आया। बिल में प्रवेश करते हुए उस की पूँछ का स्पर्श उस सेठ के गुदाभाग से हो गया। सेठ के मन

में वहम हो गया कि यह गिरगिट मेरे पेट में चला गया है। इसी वहम के कारण वह अपने आप को रोगी समझ कर प्रतिदिन दुर्बल होने लगा। एक समय वह एक वैद्य के पास गया। वैद्य ने उसको बीमारी का सारा हाल पूछा। सेठ ने आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वैद्य ने अच्छी तरह परीक्षा करके देखा किन्तु उसे कोई बीमारी प्रतीत नहीं हुई। वैद्य को यह निश्चय हो गया कि इसे केवल भ्रम हुआ है। कुछ सोच कर वैद्य ने कहा- मैं तुम्हारी बीमारी मिटा दूँगा किन्तु सौ रुपये लूँगा। सेठ ने वैद्य की बात स्वीकार कर ली। वैद्य ने उसको विरेचक औषधि दी। इधर उसने लाख के रस से लिपटा हुआ गिरगिट मिट्टी के बर्तन में रख दिया। फिर उसी मिट्टी के बर्तन में सेठ को शौच जाने को कहा। शौच निवृत्ति के पश्चात् वैद्य ने सेठ को मिट्टी के बर्तन में पड़े हुए गिरगिट को दिखला कर कहा-देखो! तुम्हारे पेट से गिरगट निकल गया है। उसे देख कर सेठ की शंका दूर हो गई। वह अपने आपको नीरोग अनुभव करने लगा जिससे थोड़े ही दिनों में उसका शरीर पहले की तरह पुष्ट हो गया। वैद्य की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(७) काक-वेन्नातट ग्राम में एक समय एक बौद्ध भिक्षु ने किसी जैन साधु से पूछा-तुम्हारे अर्हन्त सर्वज्ञ हैं और तुम उनकी सन्तान हो तो बतलाओ इस गाँव में कितने कौए हैं? उसका शठतापूर्ण प्रश्न सुन कर जैन साधु ने विचारा कि सरल भाव से उत्तर देने से यह नहीं मानेगा। इस धूर्त को धूर्तता से ही जवाब देना चाहिए। ऐसा सोच कर उसने अपने बुद्धि बल से जवाब दिया कि इस गाँव में साठ हजार कौए हैं। बौद्ध भिक्षु ने कहा यदि इससे कम ज्यादा हो तो? जैन ने उत्तर दिया-यदि कम हों तो जानना चाहिये कि यहाँ के कौए बाहर मेहमान गये हुए हैं और यदि

अधिक हों तो जानना चाहिए कि बाहर के कौए यहाँ मेहमान आये हुए हैं यह उत्तर सुन कर बौद्ध भिक्षु निरुत्तर होकर चुपचाप चला गया। जैन साधु की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(८) उच्चार (मल परीक्षा)–किसी शहर में एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री रूप और यौवन में भरपूर थी। एक बार वह अपनी स्त्री को साथ लेकर दूसरे गाँव जा रहा था। रास्ते में उन्हें एक धूर्त पथिक मिला। ब्राह्मणी का उसके साथ प्रेम हो गया। फिर क्या था, धूर्त ने ब्राह्मणी को अपनी पत्नी कहना शुरू कर दिया। इस पर ब्राह्मण ने उसका विरोध किया। धीरे धीरे दोनों में ब्राह्मणी के लिये विवाद बढ़ गया। अन्त में वे दोनों इसका फैसला कराने के लिये न्यायालय में पहुंचे। न्यायाधीश ने दोनों से अलग अलग पूछा कि कल तुमने और तुम्हारी स्त्री ने क्या क्या खाया था। ब्राह्मण ने कहा–मैंने और मेरी स्त्री ने कल तिल के लड्डू खाये थे। धूर्त ने और कुछ ही बतलाया। इस पर न्यायाधीश ने ब्राह्मणी को जुलाब दिलाया। जुलाब लगने पर मल देखा गया तो तिल दिखाई दिये। न्यायाधीश ने ब्राह्मण को उसकी स्त्री सौंप दी और धूर्त को निकाल दिया। न्यायाधीश की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(९) गज–वसन्तपुर का राजा अतिशय बुद्धि सम्पन्न प्रधान मन्त्री की खोज में था। बुद्धि की परीक्षा के लिये उसने एक हाथी चौराहे पर बँधवा दिया और यह घोषणा करवाई–जो इस हाथी को तोल देगा, राजा उसको बहुत बड़ा इनाम देगा। राजा की घोषणा सुन कर एक बुद्धिमान् पुरुष ने हाथी को तोलना स्वीकार किया। उसने एक बड़े सरोवर में हाथी को नाव पर चढ़ाया। हाथी के चढ़ जाने पर उसके वजन से नाव जितनी पानी में डूबी वहाँ उसने एक रेखा (लकीर) खींच दी फिर नाव को किनारे लाकर हाथी को उतार दिया और उसमें बड़े बड़े पत्थर भरना शुरू किया।

उसने नाव में इतने पत्थर भरे कि रेखाङ्कित भाग तक नाव पानी में डूब गई। इसके बाद उसने पत्थरों को तोल लिया। सभी पत्थरों का जो वजन हुआ वही उसने हाथी का तोल बता दिया। राजा उसकी बुद्धिमत्ता पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसे अपना प्रधान मन्त्री बना दिया।

(१०) घयण (भॉड)–एक भॉड था। वह राजा के बहुत मुँह लगा हुआ था। राजा उसके सामने अपनी रानी की बहुत प्रशंसा किया करता था। एक दिन राजा ने कहा–मेरी रानी पूर्ण आज्ञा-कारिणी है। भॉड ने कहा–महाराज! रानीजी आज्ञाकारिणी तो होंगी किन्तु अपने स्वार्थ के लिये। राजा ने कहा–ऐसा नहीं हो सकता, वह मेरे लिये अपने स्वार्थ को भी छोड़ सकती है। भाँड ने कहा–आपका फरमाना ठीक होगा पर मैंने कहा है उसकी भी परीक्षा करके देख लीजिये। राजा ने पूछा–किस तरह परीक्षा करनी चाहिये? उत्तर में भॉड ने कहा–महाराज! आप रानीजी से कहिये कि मैं दूसरा विवाह करना चाहता हूँ। उसी को मैं पटरानी बनाऊँगा और उसके पुत्र को राजगद्दी दूँगा।

राजा ने दूसरे दिन रानी से ऐसा ही कहा। राजा की बात सुन कर रानी ने कहा–देव! यदि आप दूसरा विवाह करना चाहते हैं तो यह आपकी इच्छा की बात है किन्तु राजगद्दी का अधिकारी तो वही रहेगा जो सदा से रहता आया है। इसमें कोई भी दखल नहीं दे सकता। रानी की बात सुन कर राजा कुछ मुस्क-राया। रानी ने मुस्कराने का कारण पूछा किन्तु असली बात न बता कर राजा ने उसे टाल देना चाहा। जब रानी ने बहुत आग्रह पूर्वक मुस्कराहट का कारण पूछा तो राजा ने भॉड की कही हुई बात रानी से कह दी। रानी उस पर बहुत कुपित हुई। उसने उसे देशनिकाले का हुक्म दे दिया। रानी का हुक्म सुन कर वह बहुत

घबराया और सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। उसने अपनी बुद्धि से एक उपाय सोचा। उसने जूतों की एक बड़ी गठड़ी बांधी। उसे सिर पर धर कर वह रानी के महलों में गया और कहलाया कि आज्ञानुसार दूसरे देश जा रहा हूँ। सिर पर गठड़ी देख कर रानी ने उससे पूछा—यह क्या है ? उसने कहा—यह जूतों की गठड़ी है। रानी ने कहा—यह क्यों ली है ? उसने कहा—इन जूतों को पहनता हुआ जहाँ तक जा सकूंगा जाऊँगा और आप की कीर्ति का खूब विस्तार करूंगा। रानी अपकीर्ति से डर गई और उसने देशनिकाले के हुक्म को रद्द करवा दिया। भाँड की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(११) गोलक (लाख की गोली)—एक बार किसी बालक के नाक में लाख की गोली फँस गई। बालक को श्वास लेने में कष्ट होने लगा। बालक के माता पिता बहुत चिन्तित हुए। वे उसे एक सुनार के पास ले गये। सुनार ने अपने बुद्धिबल से काम लिया। उसने लोहे की एक पतली शलाका के अग्रभाग को तपा कर सावधानी पूर्वक उसे बालक के नाक में डाला और लाख की गोली को गर्म करके उससे खींच ली। बालक स्वस्थ हो गया। उसके माता पिता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सुनार को बहुत इनाम दिया। सुनार की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(१२) स्तम्भ—किसी समय एक राजा को अतिशय बुद्धिशाली मन्त्री की आवश्यकता हुई। बुद्धि की परीक्षा करने के लिये राजा ने तालाब के बीच में एक स्तम्भ गड़वा दिया और यह घोषणा करवाई कि जो व्यक्ति तालाब के किनारे पर खड़ा रह कर इस स्तम्भ को रस्सी से बांध देगा उसे राजा की ओर से एक लाख रुपये इनाम में दिये जायँगे। यह घोषणा सुन कर एक बुद्धिमान् पुरुष ने तालाब के किनारे पर लोहे की एक कील गाड़ दी

और उसमें रस्सी बांध दी। उसी रस्सी को साथ लेकर वह तालाब के किनारे किनारे चारों ओर घूमा। ऐसा करने से बीच का स्तम्भ रस्सी से बँध गया। उसकी बुद्धिमत्ता पर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। राजा ने उसे अपना मन्त्री बना दिया। स्तम्भ को बांधने की उस पुरुष की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(१३) क्षुल्लक—किसी नगर में एक परिव्राजिका रहती थी। वह प्रत्येक कार्य में बड़ी कुशल थी। एक समय उसने राजा के सामने प्रतिज्ञा की—देव ! जो काम दूसरे कर सकते हैं वे सभी मैं कर सकती हूँ। कोई काम ऐसा नहीं है जो मेरे लिये अशक्य हो।

राजा ने नगर में परिव्राजिका की प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में घोषणा करवा दी। नगर में भिक्षा के लिये घूमते हुए एक क्षुल्लक ने यह घोषणा सुनी। उसने राजपुरुषों से कहा—मैं परिव्राजिका को हरा दूंगा। राजपुरुषों ने घोषणा बन्द कर दी और लौट कर राजा से निवेदन कर दिया।

निश्चित समय पर क्षुल्लक राजसभा में उपस्थित हुआ। उसे देख कर मुँह बनाती हुई परिव्राजिका अवज्ञापूर्वक कहने लगी—इससे किस कार्य में बराबरी करना होगा। क्षुल्लक ने कहा—जो मैं करूँ वही तुम करती जाओ। यह कह कर उसने अपनी लंगोटी हटा ली। परिव्राजिका ऐसा नहीं कर सकी। बाद में क्षुल्लक ने इस प्रकार पेशाब किया कि कमलाकार चित्र बन गया। परिव्राजिका ऐसा करने में भी असमर्थ थी। परिव्राजिका हार गई और वह लज्जित हो राज सभा से चली गई। क्षुल्लक की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(१४) मार्ग—एक पुरुष अपनी स्त्री को साथ ले, रथ में बैठ कर दूसरे गाँव को जा रहा था। रास्ते में स्त्री को शरीर चिन्ता हुई। इसलिये वह रथ से उतरी। वहाँ व्यन्तर जाति की एक देवी रहती थी। वह पुरुष के रूप सौन्दर्य को देख कर उस पर

आसक्त हो गई। स्त्री के शरीरचिन्ता-निवृत्ति के लिये जंगल में कुछ दूर चली जाने पर वह स्त्री का रूप बना कर रथ में आकर पुरुष के पास बैठ गई। जब स्त्री शरीरचिन्ता से निवृत्त हो रथ की तरफ आने लगी तो उसने पति के पास अपने सरीखे रूपवाली दूसरी स्त्री को देखा। इधर स्त्री को आती हुई देख कर व्यन्तरी ने पुरुष से कहा—यह कोई व्यन्तरी मेरे सरीखा रूप बना कर तुम्हारे पास आना चाहती है। इसलिये रथ को जल्दी चलाओ। व्यन्तरी के कथनानुसार पुरुष ने रथ को हाँक दिया। रथ हाँक देने से स्त्री जोर जोर से रोने लगी और रोती रोती भाग कर रथ के पीछे आने लगी। उसे इस तरह रोती हुई देख पुरुष असमञ्जस में पड़ गया और उसने रथ को धीमा कर दिया। थोड़ी देर में वह स्त्री रथ के पास आ पहुँची। अब दोनों में झगड़ा होने लगा। एक कहती थी कि मैं इसकी स्त्री हूँ और दूसरी कहती थी—मैं इसकी स्त्री हूँ। आखिर लड़ती झगड़ती वे दोनों गांव तक पहुँच गईं। वहाँ न्यायालय में दोनों ने फरियाद की। न्यायाधीश ने पुरुष से पूछा—तुम्हारी स्त्री कौनसी है? उत्तर में उसने कहा—दोनों का एक सरीखा रूप होने से मैं निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकता। तब न्यायाधीश ने अपने बुद्धिबल से काम लिया। उसने पुरुष को दूर बिठा दिया और फिर उन दोनों स्त्रियों से कहा—तुम दोनों में जो पहले अपने हाथ से उस पुरुष को छू लेगी वही उसकी स्त्री समझी जायगी। न्यायाधीश की बात सुन कर व्यन्तरी बहुत खुश हुई। उसने तुरन्त वैक्रिय शक्ति से अपना हाथ लम्बा करके पुरुष को छू लिया। इससे न्यायाधीश समझ गया कि यह कोई व्यन्तरी है। उसने उसे वहाँ से निकलवा दिया और पुरुष को उसकी स्त्री सौंप दी। इस प्रकार निर्णय करना न्यायाधीश की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(१५) स्त्री—मूलदेव और पुण्डरीक नाम के दो मित्र थे। एक

दिन वे कहीं जा रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक दम्पति (पति पत्नी) को जाते हुए देखा। स्त्री के अद्भुत रूप लावण्य को देख कर पुण्डरीक उस पर मुग्ध हो गया। उसने मूलदेव से कहा–मित्र! यदि इस स्त्री से मुझे मिला दो तो मैं जीवित रह सकूँगा अन्यथा मर जाऊँगा। मूलदेव ने कहा–मित्र! घबराओ मत। मैं जरूर तुम्हें इससे मिला दूँगा। इसके बाद वे दोनों उस दम्पति से नजर बचाते हुए शीघ्र ही बहुत दूर निकल गये। आगे जाकर मूलदेव ने पुण्डरीक को वननिकुञ्ज में बिठा दिया और स्वयं रास्ते पर आकर खड़ा हो गया। जब पति पत्नी वहाँ पहुँचे तो मूलदेव ने पति से कहा-महाशय! इस वननिकुञ्ज में मेरी स्त्री प्रसव वेदना से कष्ट पा रही है। थोड़ी देर के लिये आप अपनी स्त्री को वहाँ भेज दें तो बड़ी कृपा होगी। पति ने पत्नी को वहाँ जाने के लिये कह दिया। स्त्री बड़ी चतुर थी। वह गई और वननिकुञ्ज में पुरुष को बैठा हुआ देख कर क्षण मात्र में लौट आई। आकर उसने मूलदेव से हँसते हुए कहा–आपकी स्त्री ने सुन्दर बालक को जन्म दिया है। दोनों की यानी मूलदेव और उस स्त्री की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(१६) पइ (पति का दृष्टान्त)–किसी गाँव में दो भाई रहते थे। उन दोनों के एक ही स्त्री थी। वह स्त्री दोनों से प्रेम करती थी। लोगों को आश्चर्य होता था कि यह स्त्री अपने दोनों पतियों से एकसा प्रेम कैसे करती है? यह बात राजा के कानों तक भी पहुँची। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने मन्त्री से इसका जिक्र किया। मन्त्री ने कहा–देव! ऐसा कदापि नहीं हो सकता। दोनों भाइयों में से छोटे या बड़े किसी एक पर उसका अवश्य विशेष प्रेम होगा। राजा ने कहा–यह कैसे मालूम किया जाय? मन्त्री ने कहा–देव! मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि शीघ्र इसका पता लग जायगा।

एक दिन मन्त्री ने उस स्त्री के पास यह आदेश भेजा कि कल प्रातः

काल तुम अपने दोनों पतियों को दो गाँवों में भेज देना। एक को पूर्व दिशा के अमुक गाँव में और दूसरे को पश्चिम दिशा के अमुक गाँव में भेजना। उन्हें यह भी कह देना कि कल शाम को ही वे दोनों वापिस लौट आवें।

दोनों भाइयों में से एक पर स्त्री का अधिक प्रेम था और दूसरे पर कुछ कम। इसलिये उसने अपने विशेष प्रिय पति को पश्चिम की तरफ भेजा और दूसरे को पूर्व की तरफ। पूर्व की तरफ जाने वाले पुरुष के जाते समय और आते समय सूर्य सामने रहता था और पश्चिम की तरफ जाने वाले के पीठ पीछे। इस पर से मन्त्री ने यह निर्णय किया कि पश्चिम की तरफ भेजा गया पुरुष उस स्त्री को अधिक प्रिय है और पूर्व की तरफ भेजा हुआ उससे कम प्रिय है। मन्त्री ने अपना निर्णय राजा को सुनाया। राजा नें मन्त्री के निर्णय को स्वीकार नहीं किया और कहा कि एक को पूर्व में और दूसरे को पश्चिम में भेजना उसके लिये अनिवार्य था क्योंकि हुक्म ऐसा ही था। इसलिये कौन अधिक प्रिय है और कौन कम, इस बात का निर्णय इससे कैसे किया जा सकता है।

मन्त्री ने दूसरी बार फिर उस स्त्री के पास आदेश भेजा कि तुम अपने दोनों पतियों को फिर उन्हीं गाँवों को भेजो। मन्त्री के आदेशानुसार स्त्री ने अपने दोनों पतियों को पहले की तरह ही गाँवों में भेज दिया। इसके बाद मन्त्री ने ऐसी व्यवस्था की कि दो आदमी उस स्त्री के पास एक ही साथ पहुँचे। दोनों ने कहा कि तुम्हारे पति रास्ते में अस्वस्थ हो गये हैं। दोनों पतियों के अस्वस्थ होने के समाचार सुन स्त्री ने एक के लिये, जिस पर कम प्रेम था, कहा- ये तो सदा ऐसे ही रहा करते हैं। फिर दूसरे के लिए, जिस पर अधिक प्रेम था, कहा-ये बहुत घबरा रहे होंगे। इसलिये पहले उन्हें देख लूँ। यह कह कर वह अपने विशेष प्रिय पति की खबर

लेने के लिये रवाना हो गई।

दोनों पुरुषों ने मन्त्री के पास जाकर सारा हाल कह दिया और मन्त्री ने राजा से निवेदन किया। राजा मन्त्री की बुद्धिमत्ता पर बहुत प्रसन्न हुआ। यह मन्त्री की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(१७) पुत्र—एक सेठ के दो स्त्रियाँ थीं। उनमें एक पुत्रवती और दूसरी वन्ध्या थी। वन्ध्या स्त्री भी बालक को बहुत प्यार करती थी। इसलिये बालक दोनों को ही माँ समझता था। वह यह नहीं जानता था कि यह मेरी सगी माँ है और यह नहीं है। कुछ समय पश्चात् सेठ सपरिवार परदेश चला गया। वहाँ पहुँचते ही सेठ की मृत्यु हो गई। तब दोनों स्त्रियाँ परस्पर झगड़ने लगीं। एक ने कहा—यह पुत्र मेरा है, इसलिये गृहस्वामिनी मैं हूँ। इस पर दूसरी ने कहा—यह पुत्र तेरा नहीं, मेरा है, अतः गृहस्वामिनी मैं हूँ। इस विषय पर दोनों में कलह होता रहा। अन्त में दोनों राजदरबार में फरियाद लेकर गईं। दोनों स्त्रियों का कथन सुन कर मन्त्री ने अपने नौकरों को बुला कर कहा—इनका सब धन लाकर दो भागों में बाँट दो। इसके बाद इस लड़के के भी करवत से दो टुकड़े कर डालो और एक एक टुकड़ा दोनों को दे दो।

मन्त्री का निर्णय सुन कर पुत्र की सच्ची माता का हृदय काँप उठा। वज्राहत की तरह दुखी होकर वह मन्त्री से कहने लगी—मन्त्रीजी! यह पुत्र मेरा नहीं है। मुझे धन भी नहीं चाहिये। यह पुत्र भी इसी का रखिये और इसी को घर की मालकिन बना दीजिये। मैं तो किसी के यहाँ नौकरी करके अपना निर्वाह कर लूँगी और इस बालक को दूर ही से देख कर अपने को कृतकृत्य समझूँगी पर इस प्रकार पुत्र के न रहने से तो अभी ही मेरा सारा संसार अन्धकार पूर्ण हो जायगा। पुत्र के जीवन के लिये एक स्त्री इस प्रकार चिल्ला रही थी पर दूसरी स्त्री ने कुछ नहीं कहा। इससे

मन्त्री ने समझ लिया कि पुत्र का खरा दर्द इसी को है इसलिये यही इसकी सच्ची माता है। तदनुसार उसने उस स्त्री को पुत्र दे दिया और उसी को घर की मालकिन कर दी। दूसरी स्त्री तिरस्कार पूर्वक वहाँ से निकाल दी गई। यह मन्त्री की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(१८) मधुसिक्थ (मधुच्छत्र)-एक नदी के दोनों किनारों पर धीवर (मछुए) लोग रहते थे। दोनों किनारों पर बसने वाले धीवरों में पारस्परिक जातीय सम्बन्ध होने पर भी आपस में कुछ वैमनस्य था। इसलिये उन्होंने अपनी स्त्रियों को विरोधी पक्ष वाले किनारे पर जाने के लिये मना कर रखा था। किन्तु जब धीवर लोग काम पर चले जाते थे तब स्त्रियाँ दूसरे किनारे पर चली जाती थीं और आपस में मिला करती थीं। एक दिन एक धीवर की स्त्री विरोधी पक्ष के किनारे गई हुई थी। उसने वहाँ से अपने घर के पास कुञ्ज में एक मधुच्छत्र (शहद से भरा हुआ मधुमक्खियों का छत्ता) देखा। उसे देख कर वह घर चली आई।

कुछ दिनों बाद धीवर को औषधि के लिये शहद की आवश्यकता हुई। वह शहद खरीदने बाजार जाने लगा तो उसकी स्त्री ने उसको कहा-बाजार से शहद क्यों खरीदते हो? घर के पास ही तो मधुच्छत्र है। चलो, मैं तुमको दिखाती हूँ। यह कह कर वह पति को साथ लेकर मधुच्छत्र दिखाने गई। किन्तु इधर उधर ढूँढने पर भी उसे मधुच्छत्र दिखाई नहीं दिया। तब स्त्री ने कहा-उस तीर से बराबर दिखाई देता है। चलो, वहाँ चलें। वहाँ से मैं तुम्हें जरूर दिखा दूँगी। यह कह कर वह पति के साथ दूसरे तीर पर आई और वहाँ से उसने मधुच्छत्र दिखा दिया। इससे धीवर ने अनायास ही यह समझ लिया कि मेरी स्त्री मना करने पर भी इस किनारे आती जाती रहती है। यह उसकी औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(१९) मुद्रिका-किसी नगर में एक पुरोहित रहता था। लोगों

में वह सत्यवादिता और ईमानदारी के लिये प्रसिद्ध था। लोग कहते थे कि वह किसी की धरोहर नहीं दबाता। बहुत समय से रखी हुई धरोहर को भी वह ज्यों की त्यों लौटा देता है। इसी विश्वास पर एक गरीब आदमी ने अपनी धरोहर उस पुरोहित के पास रखी और वह परदेश चला गया। बहुत समय के बाद वह परदेश से लौट कर आया और पुरोहित के पास जाकर उसने अपनी धरोहर मांगी। पुरोहित बिल्कुल अनजान सा बनकर कहने लगा– तुम कौन हो? मैं तुम्हें नहीं जानता। तुमने मेरे पास धरोहर कब रखी थी? पुरोहित का उत्तर सुन कर वह बड़ा निराश हुआ। धरोहर ही उसका सर्वस्व था। उसके चले जाने से वह शून्यचित्त होकर इधर उधर भटकने लगा।

एक दिन उसने प्रधान मन्त्री को जाते देखा। वह उसके पास पहुंचा और कहने लगा–पुरोहितजी! एक हजार मोहरों की मेरी धरोहर मुझे वापिस कर दीजिये। उसके ये वचन सुन कर मन्त्री सारी बात समझ गया। उसे उस पुरुष पर बड़ी दया आई। उस ने इस विषय में राजा से निवेदन किया और उस गरीब को भी हाजिर किया। राजा ने पुरोहित को बुला कर कहा– इस पुरुष की धरोहर तुम वापिस क्यों नहीं लौटाते? पुरोहित ने कहा– राजन्! मैंने इसकी धरोहर ही नहीं रखी। इस पर राजा चुप रह गया। पुरोहित के वापिस लौट जाने पर राजा ने उस आदमी से पूछा–बतलाओ, सच बात क्या है? तुमने पुरोहित के यहाँ किस समय और किस के सामने धरोहर रखी थी? इस पर उस आदमी ने स्थान, समय और उपस्थित व्यक्तियों के नाम बता दिये।

दूसरे दिन राजा ने पुरोहित के साथ खेलना शुरू किया। खेलते खेलते उन्होंने आपस में अपने नाम की अंगूठियां बदल लीं। इसके पश्चात् अपने एक नौकर को बुला कर राजा ने उसे

पुरोहित की अंगूठी दी और कहा-पुरोहित के घर जाकर इनकी स्त्री से कहना कि पुरोहितजी अमुक दिन अमुक समय धरोहर में रखी हुई उस गरीब की एक हजार मोहरों की नोली मँगा रहे हैं। आपके विश्वास के लिये उन्होंने अपनी अंगूठी भेजी है।

पुरोहित के घर जाकर नौकर ने उसकी स्त्री से ऐसा ही कहा। पुरोहित की अंगूठी देख कर तथा अन्य बातों के मिल जाने से स्त्री को विश्वास हो गया और उसने आये हुए पुरुष को उस गरीब की नोली दे दी। नौकर ने जाकर वह नोली राजा को दे दी। राजा ने दूसरी अनेक नोलियों के बीच वह नोली रख दी और उस गरीब को भी वहाँ बुला कर बिठा दिया। पुरोहित भी पास ही में बैठा था। अनेक नोलियों के बीच अपनी नोली देख कर गरीब बहुत प्रसन्न हुआ। उसने वह नोली दिखाते हुए राजा से कहा-स्वामिन्! मेरी नोली ठीक ऐसी ही थी। यह सुन कर राजा ने वह नोली उसे दे दी और पुरोहित को जिह्वाछेद का कठोर दण्ड दिया। धरोहर का पता लगाने में राजा की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(२०) अङ्क-एक नगर में एक प्रतिष्ठित सेठ रहता था। लोग उसे बहुत विश्वासपात्र समझते थे। एक समय एक आदमी ने उसके पास एक हजार रुपयों से भरी हुई एक नोली रखी और वह परदेश चला गया। सेठ ने उस नोली के नीचे के भाग को काट कर उसमें से रुपये निकाल लिये और बदले में नकली रुपये भर दिये। नोली के कटे हुए भाग को सावधानी पूर्वक सिला कर उसने उसे ज्यों की त्यों रख दी।

कुछ दिनों बाद वह आदमी परदेश से लौट कर आया। सेठ के पास जाकर उसने अपनी नोली मांगी तब सेठ ने उसकी नोली दे दी। घर आकर उसने नोली को खोला और देखा तो सभी खोटे रुपये निकले। उसने जाकर सेठ से कहा। सेठ ने जवाब दिया-

मैंने तो तुम्हें अपनी नोली ज्यों की त्यों लौटा दी है। अब मैं कुछ नहीं जानता। अन्त में उस आदमी ने राजदरबार में फरियाद की। न्यायाधीश ने पूछा–तुम्हारी नोली में कितने रुपये थे? उसने जवाब दिया–एक हजार रुपये। न्यायाधीश ने उसमें खरे रुपये डाल कर देखा तो जितना भाग कटा हुआ था उतने रुपये बाकी बच गये, शेष सब समा गये। न्यायाधीश को उस आदमी की बात सच्ची मालूम पड़ी। उसने सेठ को बुलाया और अनुशासन पूर्वक असली रुपये दिलवा दिये। न्यायाधीश की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(२१) नाणक–एक आदमी किसी सेठ के यहाँ मोहरों से भरी हुई थैली रख कर देशान्तर गया। कई वर्षों के बाद सेठ ने उस थैली में से असली मोहरें निकाल लीं और गिन कर उतनी ही नकली मोहरें वापिस भर दीं तथा थैली को ज्यों की त्यों सिला कर रख दी। कई वर्षों के पश्चात् उक्त धरोहर का स्वामी देशान्तर से लौट आया। सेठ के पास जाकर उसने थैली माँगी। सेठ ने उसकी थैली दे दी। वह उसे लेकर घर चला आया। जब थैली को खोल कर देखा तो असली मोहरों की जगह नकली मोहरें निकलीं। उसने जाकर सेठ से कहा। सेठ ने जवाब दिया–तुमने मुझे जो थैली दी थी, मैंने वही तुम्हें वापिस लौटा दी है। नकली असली के विषय में मैं कुछ नहीं जानता। सेठ की बात सुन कर वह बहुत निराश हुआ। कोई उपाय न देख उसने न्यायालय में फरियाद की। न्याया-धीश ने उससे पूछा–तुमने सेठ के पास थैली कब रखी थी? उसने थैली रखने का ठीक समय बता दिया।

न्यायाधीश ने मोहरों पर का समय देखा तो मालूम हुआ कि वे पिछले कुछ वर्षों की नई बनी हुई हैं, जब कि थैली मोहरों के समय से कई वर्ष पहले रखी गई थी। उसने सेठ को झूठा ठह-राया। धरोहर के मालिक को असली मोहरें दिलवाईं और सेठ को

दण्ड दिया। न्यायाधीश की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(२२) भिक्षु—किसी जगह एक बावाजी रहते थे। उन्हें विश्वास-पात्र समझ कर एक व्यक्ति ने उनके पास अपनी मोहरों की थैली अमानत रखी और वह परदेश चला गया। कुछ समय पश्चात् वह लौट कर आया। बावाजी के पास जाकर उसने अपनी थैली माँगी। बावाजी टालाटूली करने के लिये उसे आज कल बताने लगे। आखिर उसने कुछ जुआरियों से मित्रता की और उनसे सारी हकीकत कही। उन्होंने कहा—तुम चिन्ता मत करो, हम तुम्हारी थैली दिलवा देंगे। तुम अमुक दिन, अमुक समय बावाजी के पास आकर तकाजा करना। हम वहाँ आगे तैयार मिलेंगे।

जुआरियों ने गेरुए वस्त्र पहन कर संन्यासी का वेश बनाया। हाथ में सोने की खूँटियाँ लेकर वे बावाजी के पास आये और कहने लगे—हम लोग यात्रा करने जाते हैं। आप बड़े विश्वासपात्र हैं, इसलिये ये सोने की खूँटियाँ वापिस लौटने तक हम आपके पास रखना चाहते हैं।

यह बातचीत हो ही रही थी कि पूर्व संकेत के अनुसार वह व्यक्ति बावाजी के पास आया और थैली माँगने लगा। सोने की खूँटियाँ धरोहर रखने वाले सन्यासियों के सन्मुख अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिये बावाजी ने उसी समय उसकी थैली लौटा दी। वह अपनी थैली लेकर रवाना हुआ। अपना प्रयोजन सिद्ध हो जाने से संन्यासी वेषधारी जुआरी लोग भी कोई बहाना बना कर सोने की खूँटियाँ ले अपने स्थान पर लौट आये। बबाजी से धरोहर दिलवाने की जुआरियों की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(२३) चेटकनिधान (बालक और खजाने का दृष्टान्त)—एक गाँव में दो आदमी थे। उनमें आपस में मित्रता हो गई। एक बार उन दोनों को एक निधान (खजाना) प्राप्त हुआ। उसे देख

कर एक ने मायापूर्वक कहा–मित्र ! अच्छा हो कि हम कल शुभ नक्षत्र में इस निधान को ग्रहण करें। दूसरे ने सरल भाव से उसकी बात मान ली। निधान को छोड़ कर वे दोनों अपने अपने घर चले गये। रात को मायावी मित्र निधान की जगह गया। उसने वहाँ से सारा धन निकाल लिया और बदले में कोयले भर दिये।

दूसरे दिन प्रातःकाल दोनों मित्र वहाँ जाकर निधान को खोदने लगे तो उसमें से कोयले निकले। कोयले देखते ही मायावी मित्र सिर पीट पीट कर जोर से रोने लगा–मित्र ! हम बड़े अभागे हैं। दैव ने हमें आँखें देकर वापिस छीन लीं जो निधान दिखला कर कोयले दिखलाये। इस प्रकार बनावटी रोते चिल्लाते हुए वह बीच बीच में अपने मित्र के चेहरे की ओर देख लेता था कि कहीं उसे मुझ पर शक तो नहीं हुआ है। उसका यह ढोंग देख कर दूसरा मित्र समझ गया कि इसी की यह करतूत है। पर अपने भाव छिपा कर उसने आश्वासन देते हुए उससे कहा–मित्र ! अब चिन्ता करने से क्या लाभ ? चिन्ता करने से निधान थोड़े ही मिलता है। क्या किया जाय अपना भाग्य ही ऐसा है। इस प्रकार उसने उसे सान्त्वना दी। फिर दोनों अपने अपने घर चले गये।

कपटी मित्र से बदला लेने के लिये दूसरे मित्र ने एक उपाय सोचा। उसने मायावी मित्र की एक मिट्टी की प्रतिमा बनवाई और उसे घर में रख दी। फिर उसने दो बन्दर पाले। एक दिन उसने प्रतिमा की गोद में, हाथों पर, कन्धों पर तथा अन्य जगह बन्दरों के खाने योग्य चीजें डाल दीं और फिर उन बन्दरों को छोड़ दिया। बन्दर भूखे थे। प्रतिमा पर चढ़ कर उन चीजों को खाने लगे। बन्दरों को अभ्यास कराने के लिये वह प्रतिदिन इसी तरह करने लगा और बन्दर भी प्रतिमा पर चढ़ चढ़ कर वहाँ रही हुई चीजों को खाने लगे। धीरे धीरे बन्दर प्रतिमा से यों भी खेलने

लगे। इसके बाद किसी पर्व के दिन उसने मायावी मित्र के दोनों लड़कों को अपने घर जीमने के लिये निमन्त्रण दिया। उसने अपने दोनों पुत्रों को मित्र के घर जीमने के लिये भेज दिया। घर आने पर उसने उन दोनों को अच्छी तरह भोजन कराया। इसके पश्चात् उसने उन्हें किसी दूसरी जगह पर छिपा दिया।

जब बालक लौट कर नहीं आये तो दूसरे दिन लड़कों का पिता अपने मित्र के घर आया और उससे दोनों लड़कों के लिये पूछा। उसने कहा—उस घर में हैं। उस घर में मित्र के आने से पहले ही उसने प्रतिमा को हटा कर आसन बिछा रखा था। वहीं पर उसने मित्र को बिठाया। इसके बाद उसने दोनों बन्दरों को छोड़ दिया। वे किलकिलाहट करते हुए आये और मायावी मित्र को प्रतिमा समझ कर उसके अङ्गों पर सदा की तरह उछलने कूदने लगे। यह लीला देख कर वह बड़े आश्चर्य में पड़ा। तब दूसरा मित्र खेद प्रदर्शित करते हुए कहने लगा—मित्र! यही तुम्हारे दोनों पुत्र हैं। बहुत दुःख की बात है कि ये दोनों बन्दर हो गये हैं। देखो! किस तरह ये तुम्हारे प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित कर रहे हैं। तब मायावी मित्र बोला—मित्र! तुम क्या कह रहे हो? क्या मनुष्य भी कहीं बन्दर हो सकते हैं? इस पर दूसरे मित्र ने कहा—मित्र! भाग्य की बात है। जिस प्रकार अपने भाग्य के फेर से निधान (खजाना से कोयला हो गया उसी प्रकार भाग्य के फेर से एवं कर्म की प्रतिकूलता से तुम्हारे पुत्र भी बन्दर हो गये हैं। इसमें आश्चर्य जैसी क्या बात है?

मित्र की बात सुन कर उसने समझ लिया कि इसे निधान विषयक मेरी चालाकी का पता लग गया है। अब यदि मैं अपने पुत्रों के लिये झगड़ा करूँगा तो मामला बहुत बढ़ जायगा। राजदरबार में मामला पहुँचने पर तो निधान न मेरा रहेगा, न इसका ही। ऐसा सोच कर उसने उसे निधान विषयक सच्ची हकीकत

कह दी और अपनी गलती के लिये क्षमा माँगी। निधान का आधा हिस्सा भी उसने उसे दे दिया। इस पर इसने भी उसके दोनों पुत्रों को उसे सौंप दिया। अपने पुत्रों को लेकर मायावी मित्र अपने घर चला आया। यह मित्र की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(२४) शिक्षा-एक पुरुष धनुर्विद्या में बड़ा दक्ष था। घूमते हुए वह एक गाँव में पहुँचा और वहाँ सेठों के लड़कों को धनुर्विद्या सिखाने लगा। लड़कों ने उसे बहुत धन दिया। जब यह बात सेठों को मालूम हुई तो उन्होंने सोचा कि इसने लड़कों से बहुत धन ले लिया है। इसलिये जब यह यहाँ से अपने गाँव को रवाना होगा तो इसे मार कर सारा धन वापिस ले लेंगे।

किसी प्रकार इन विचारों का पता कलाचार्य को लग गया। उसने दूसरे गाँव में रहने वाले अपने सम्बन्धियों को खबर दी कि अमुक रात को मैं गोबर के पिण्ड नदी में फेंकूँगा, आप उन्हें ले लेना। इसके पश्चात् कलाचार्य ने गोबर के कुछ पिण्डों में द्रव्य मिला कर उन्हें धूप में सुखा दिया। कुछ दिनों बाद उसने लड़कों से कहा-अमुक तिथि पर्व को रात्रि के समय हम लोग नदी में स्नान करते हैं और मन्त्रोच्चारणपूर्वक गोबर के पिण्डों को नदी में फेंकते हैं ऐसी हमारी कुलविधि है। लड़कों ने कहा-ठीक है। हम भी योग्य सेवा करने के लिये तैयार हैं।

आखिर वह पर्व भी आ पहुँचा। रात्रि के समय कलाचार्य लड़कों के सहयोग से गोबर के उन पिण्डों को नदी के किनारे ले आया। कलाचार्य ने स्नान करके मन्त्रोच्चारण पूर्वक उन गोबर के पिण्डों को नदी में फेंक दिया। पूर्व संकेतानुसार कलाचार्य के सम्बन्धी जनों ने नदी में से उन गोबर के पिण्डों को ले लिया और अपने घर ले गये।

कलाचार्य ने कुछ दिनों बाद विद्यार्थियों को विद्याध्ययन समाप्त

करवा दिया। फिर विद्यार्थी और उनके पिताओं से मिल कर वह अपने गाँव को रवाना हुआ। जाते समय जरूरी वस्त्रों के सिवाय उस ने अपने साथ कुछ नहीं लिया। जब सेठों ने देखा कि इसके पास कुछ नहीं है तो उन्होंने उसे मारने का विचार छोड़ दिया। कलाचार्य सकुशल अपने घर लौट आया। अपने तन और धन दोनों की रक्षा कर ली, यह कलाचार्य की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(२५) अर्थशास्त्र—एक सेठ के दो स्त्रियाँ थीं। एक पुत्रवती थी और दूसरी वन्ध्या। वन्ध्या स्त्री भी उस पुत्र को बहुत प्यार करती थी। इसलिये बालक यह नहीं जानता था कि मेरी सगी माँ कौन है? एक समय सेठ व्यापार के निमित्त भगवान् सुमतिनाथ स्वामी की जन्मभूमि हस्तिनापुर में पहुँचा। संयोगवश वह वहाँ पहुँचते ही मर गया। तब दोनों स्त्रियों में पुत्र के लिये झगड़ा होने लगा। एक कहती थी कि यह पुत्र मेरा है इसलिये गृहस्वामिनी मैं बनूँगी। दूसरी कहती थी—यह मेरा पुत्र है अतः घर की मालकिन मैं बनूँगी। आखिर इन्साफ कराने के लिये दोनों राजदरबार में पहुँचीं। महारानी मङ्गला देवी को जब इस झगड़े की बात मालूम हुई तो उन्होंने उन दोनों को अपने पास बुलाया और कहा—कुछ दिनों बाद मेरी कुक्षि से एक प्रतापी पुत्र होने वाला है। बड़ा होने पर इस अशोकवृक्ष के नीचे बैठ कर वह तुम्हारा न्याय करेगा। इसलिये तब तक तुम शान्ति पूर्वक प्रतीक्षा करो।

वन्ध्या ने सोचा, अच्छा हुआ, इतने समय तक तो आनन्द पूर्वक रहूँगी फिर जैसा होगा देखा जायगा। यह सोच कर उसने महारानीजी की बात सहर्ष स्वीकार कर ली। इससे महारानीजी समझ गईं कि वास्तव में यह पुत्र की माँ नहीं है। इसलिये उन्होंने दूसरी स्त्री को, जो वास्तव में पुत्र की माता थी, उसका पुत्र दे दिया और गृहस्वामिनी भी उसी को बना दिया। झूठा विवाद

करने के कारण उस वन्ध्या स्त्री को निरादरपूर्वक वहाँ से निकाल दिया गया। यह महारानी की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(२६) इच्छा महं (जो इच्छा हो सो मुझे देना)-किसी शहर में एक सेठ रहता था। वह बहुत धनी था। उसने अपना बहुत सा रुपया ब्याज पर कर्ज दे रखा था। अकस्मात् सेठ का देहान्त हो गया। सेठानी लोगों से रुपया वसूल नहीं कर सकती थी। इसलिये उसने अपने पति के मित्र से रुपये वसूल करने के लिये कहा। उसने कहा-यदि मेरा हिस्सा रखो तो मैं कोशिश करूँगा। सेठानी ने कहा तुम रुपये वसूल करो फिर तुम्हारी इच्छा हो सो मुझे देना। सेठानी की बात सुन कर वह प्रसन्न हो गया। उसने वसूली का काम प्रारम्भ किया और थोड़े ही समय में उसने सेठ के सभी रुपये वसूल कर लिये। जब सेठानी ने रुपये माँगे तो वह थोड़ा सा हिस्सा सेठानी को देने लगा। सेठानी इस पर राजी न हुई। उसने राजदरबार में फरियाद की। न्यायाधीश ने रुपये वसूल करने वाले व्यक्ति को बुलाया और पूछा-तुम दोनों में क्या शर्त हुई थी? उसने बतलाया, सेठानी ने मुझ से कहा था कि तुम मेरे रुपये वसूल करो। फिर तुम्हारी इच्छा हो सो मुझे देना। उसकी बात सुन कर न्यायाधीश ने वसूल किया हुआ सारा द्रव्य वहाँ मँगवाया और उसके दो भाग करवाये-एक बड़ा और दूसरा छोटा। फिर रुपये वसूल करने वाले से पूछा- कौन सा भाग लेने की तुम्हारी इच्छा है? उसने कहा-मेरी इच्छा यह बड़ा भाग लेने की है। तब न्यायाधीश ने कहा-तुम्हारी शर्त के अनुसार यह बड़ा भाग सेठानी को दिया जायगा और छोटा तुम्हें। सेठानी ने तुम्हें यही कहा था कि तुम्हारी इच्छा हो सो मुझे देना। तुम्हारी इच्छा बड़े भाग की है इसलिये यह बड़ा भाग सेठानी को मिलेगा। न्यायाधीश की यह औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(२७) शत सहस्र (एक लाख)–किसी जगह एक परिव्राजक रहता था। उसके पास चांदी का एक बड़ा पात्र था। परिव्राजक बड़ा कुशाग्र बुद्धि था। वह एक बार जो बात सुन लेता था वह उसे ज्यों की त्यों याद हो जाती थी। उसे अपनी तीव्र बुद्धि का का बड़ा गर्व था। एक बार उसने वहाँ की जनता के सामने यह प्रतिज्ञा की–यदि कोई मुझे अश्रुत पूर्व (पहले कभी नहीं सुनी हुई) बात सुनावेगा तो मैं उसे यह चांदी का पात्र इनाम में दूँगा।

परिव्राजक की प्रतिज्ञा सुन कई लोग उसे नई बात सुनाने के लिये आये किन्तु कोई भी चाँदी का पात्र प्राप्त करने में सफल न हो सका। जो भी नई बात सुनाता वह परिव्राजक को याद हो जाती और वह उसे ज्यों की त्यों वापिस सुना देता और कह देता कि यह बात तो मेरी सुनी हुई है।

परिव्राजक की यह प्रतिज्ञा एक सिद्धपुत्र ने सुनी। उसने लोगों से कहा–यदि परिव्राजक अपनी प्रतिज्ञा पर कायम रहे तो मैं अवश्य उसे नई बात सुना दूँगा। आखिर राजा के सामने वे दोनों पहुँचे और जनता भी बड़ी तादाद में इकट्ठी हुई। सिद्ध-पुत्र की ओर सभी की दृष्टि लगी हुई थी। राजा की आज्ञा पाकर सिद्धपुत्र ने परिव्राजक को उद्देश्य करके निम्नलिखित श्लोक पढ़ा–

तुज्झ पिया मह पिउणा, धारेइ अणूणगं सयसहस्सं।
जइ सुयपुव्वं दिज्जउ, अह न सुयं खोरयं देसु॥

अर्थ–मेरे पिता तुम्हारे पिता में पूरे एक लाख रुपये माँगते हैं। अगर यह बात तुमने पहले सुनी है तो अपने पिता का कर्ज चुका दो और यदि नहीं सुनी है तो चाँदी का पात्र मुझे दे दो।

सिद्धपुत्र की बात सुन परिव्राजक बड़े असमञ्जस में पड़ गया। निरुपाय हो उसने हार मान ली और प्रतिज्ञानुसार चांदी का पात्र सिद्धपुत्र को दे दिया। यह सिद्धपुत्र की औत्पत्तिकी बुद्धि थी।

(नन्दी सूत्र टीका सू० २७ गा० ६२-६५ तक) (नन्दीसूत्र पू० श्री हस्तीमलजी म० द्वारा संशोधित व अनुवादित)

अट्ठाईसवाँ बोल संग्रह

९५०—मतिज्ञान के अट्ठाईस भेद

इन्द्रिय और मन की सहायता से योग्य देश में रही हुई वस्तु को जानने वाला ज्ञान मतिज्ञान (आभिनिबोधिक ज्ञान) कहलाता है। मतिज्ञान के मुख्य चार भेद हैं—अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। इन चारों का लक्षण इस प्रकार है—

अवग्रह—इन्द्रिय और पदार्थ के योग्य स्थान में रहने पर सामान्य प्रतिभास रूप दर्शन के बाद होने वाला अवान्तर सत्ता सहित वस्तु का सर्व प्रथम ज्ञान अवग्रह कहलाता है।

ईहा—अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विषय में विशेष जानने की इच्छा को ईहा कहते हैं।

अवाय—ईहा से जाने हुए पदार्थ के विषय में 'यह वही है, अन्य नहीं है' इस प्रकार के निश्चयात्मक ज्ञान को अवाय कहते हैं।

धारणा—अवाय से जाने हुए पदार्थों का ज्ञान इतना दृढ़ हो जाय कि कालान्तर में भी उसका विस्मरण न हो, धारणा कहलाता है।

अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये चारों पाँच इन्द्रिय और मन से होते हैं इसलिये इन चारों के चौवीस भेद हो जाते हैं। अवग्रह दो प्रकार का है—व्यञ्जनावग्रह और अर्थावग्रह। पदार्थ के अव्यक्त ज्ञान को अर्थावग्रह कहते हैं। अर्थावग्रह से पहले होने वाला अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान व्यञ्जनावग्रह कहलाता है। व्यञ्जनावग्रह श्रोत्रेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय—चार इन्द्रियों द्वारा होता है। इसलिये इसके चार भेद होते हैं। उपरोक्त चौवीस में ये चार मिलाने पर कुल अट्ठाईस भेद होते हैं।

(१) श्रोत्रेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह (२) घ्राणेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह (३) रसनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह (४) स्पर्शनेन्द्रिय व्यञ्जनावग्रह (५)

श्रोत्रेन्द्रिय अर्थावग्रह (६) चक्षुरिन्द्रिय अर्थावग्रह (७) घ्राणेन्द्रिय अर्थावग्रह (८) रसनेन्द्रिय अर्थावग्रह (९) स्पर्शनेन्द्रिय अर्थावग्रह (१०) नोइन्द्रिय (मन) अर्थावग्रह (११) श्रोत्रेन्द्रिय ईहा (१२) चक्षुरिन्द्रिय ईहा (१३) घ्राणेन्द्रिय ईहा (१४) रसनेन्द्रिय ईहा (१५) स्पर्शनेन्द्रिय ईहा (१६) नोइन्द्रिय ईहा (१७) श्रोत्रेन्द्रिय अवाय (१८) चक्षुरिन्द्रिय अवाय (१९) घ्राणेन्द्रिय अवाय (२०) रसनेन्द्रिय अवाय (२१) स्पर्शनेन्द्रिय अवाय (२२) नोइन्द्रिय अवाय (२३) श्रोत्रेन्द्रिय धारणा (२४) चक्षुरिन्द्रिय धारणा (२५) घ्राणेन्द्रिय धारणा (२६) रसनेन्द्रिय धारणा (२७) स्पर्शनेन्द्रिय धारणा (२८) नोइन्द्रिय धारणा।

मतिज्ञान के उपरोक्त अट्ठाईस मूल भेद हैं। इन अट्ठाईस भेदों में प्रत्येक के निम्नलिखित बारह भेद होते हैं:—

(१) बहु (२) अल्प (३) बहुविध (४ एकविध (५) क्षिप्र (६) अक्षिप्र–चिर (७) निश्रित (८) अनिश्रित (९) सन्दिग्ध (१०) असन्दिग्ध (११) ध्रुव (१२) अध्रुव। इनकी व्याख्या इसी ग्रन्थ के चौथे भाग में बोल नं० ७८७ में दी गई है।

इस प्रकार प्रत्येक के बारह भेद होने से मतिज्ञान के २८×१२=३३६ भेद हो जाते हैं। उपरोक्त सब भेद श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के हैं। अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान के चार भेद हैं–(१) औत्पत्तिकी बुद्धि (२) वैनयिकी (३) कार्मिकी (४) पारिणामिकी। ये चार भेद और मिलाने से मतिज्ञान के कुल ३४० भेद हो जाते हैं। जहाँ ३४१ भेद किये जाते हैं वहाँ जाति स्मरण का एक भेद और माना जाता है। (समवायांग २८) (कर्म ग्रन्थ पहला गाथा ४-५)

९५१–मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियाँ

जो कर्म आत्मा को मोहित करता है अर्थात् आत्मा को हित अहित के ज्ञान से शून्य बना देता है वह मोहनीय है। यह कर्म मदिरा

के समान है। जैसे मदिरा पीने से मनुष्य को हित, अहित एवं भले बुरे का ज्ञान नहीं रहता उसी प्रकार मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा को हित, अहित एवं भले बुरे का विवेक नहीं रहता। यदि कदाचित् अपने हित अहित की परीक्षा कर सके तो भी वह जीव मोहनीय कर्म के प्रभाव से तदनुसार आचरण नहीं कर सकता। इसके मुख्यतः दो भेद हैं—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय।

जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही समझना दर्शन है यानी तत्त्वार्थ श्रद्धान को दर्शन कहते हैं। यह आत्मा का गुण है। आत्मा के इस गुण की घात करने वाले कर्म को दर्शन मोहनीय कहते हैं।

जिसके आचरण से आत्मा अपने असली स्वरूप को प्राप्त कर सके वह चारित्र कहलाता है, यह भी आत्मा का गुण है। इस गुण को घात करने वाले कर्म को चारित्रमोहनीय कहते हैं।

दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं—मिथ्यात्व मोहनीय, मिश्र मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय। मिथ्यात्व मोहनीय के दलिक अशुद्ध हैं, मिश्र मोहनीय के अर्द्ध विशुद्ध हैं और सम्यक्त्व मोहनीय के दलिक शुद्ध होते हैं। जैसे चश्मा आँखों का आवारक होने पर भी देखने में रुकावट नहीं डालता उसी प्रकार शुद्ध दलिक रूप होने से सम्यक्त्व मोहनीय भी तत्त्वार्थ श्रद्धान में रुकावट नहीं करता परन्तु चश्मे की तरह वह आवरण रूप तो है ही। इसके सिवाय सम्यक्त्व मोहनीय में अतिचारों का सम्भव है तथा औपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व के लिये यह मोह रूप भी है। इसीलिये यह दर्शनमोहनीय के भेदों में गिना गया है। इन तीनों का स्वरूप इसी ग्रन्थ के प्रथम भाग बोल नं० ७७ में दिया है।

चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं—कषाय मोहनीय और नोकषाय मोहनीय। क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय हैं। अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन के

भेद से प्रत्येक के चार चार भेद होते हैं। कषाय के ये कुल १६ भेद हैं। इनका स्वरूप इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में बोल नं० १५६ से १६२ तक दिया गया है।

हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद-ये नौ भेद नोकषाय मोहनीय के हैं। इनका स्वरूप इसी ग्रन्थ के तीसरे भाग में बोल नं० ६२५ में दिया गया है।

दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियाँ, मोहनीय की सोलह और नोकषाय मोहनीय की नौ प्रकृतियाँ-इस प्रकार कुल मिला कर मोहनीय कर्म की २८ प्रकृतियाँ हैं। इनका वर्णन इसी ग्रन्थ के तीसरे भाग के बोल नं० ५६० में दिया जा चुका है।

उपरोक्त अट्ठाईस प्रकृतियों में से सम्यक्त्व मोहनीय और मिश्र-मोहनीय इन दो को छोड़ कर शेष २६ प्रकृतियाँ अभव्य जीवों के सत्ता में रहती हैं। वेदक सम्यक्त्व वाले जीव के सत्ताईस प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं। (कर्मग्रन्थ भाग १ गा०१३-२२) (समवायांग २८)

६५१-अनुयोग देने वाले के अट्ठाईस गुण

अनुयोग अर्थात् शास्त्र की वाचना देने वाले साधु में नीचे लिखे अट्ठाईस गुण होने चाहियेः—

(१) देशयुत-जो साढ़े पचीस आर्यदेशों में उत्पन्न हुआ हो। आर्य देशों की भाषा का जानकार होने से उसके पास शिष्य सुख-पूर्वक शास्त्र पढ़ सकते हैं। (२) कुलयुत-पितृवंश को कुल कहते है। इक्ष्वाकु, नाग आदि उत्तम कुलों में पैदा हुआ व्यक्ति कुलयुत कहा जाता है। (३) जातियुत-मातृपक्ष को जाति कहते हैं। उत्तम जाति में उत्पन्न व्यक्ति विनय आदि गुणों वाला होता है। (४) रूपयुत-सुन्दर रूप वाला। सुन्दर आकृति होने पर लोग उसके गुणों की ओर विशेष आकृष्ट होते हैं। कहा भी है-'यत्राकृतिस्तत्र

गुणाः वसन्ति' अर्थात् जहाँ आकृति है वहीं गुण रहते हैं। (५) संहनन युत-दृढ़ संहनन वाला। ऐसा व्यक्ति वाचना देता हुआ या व्याख्या करता हुआ थकता नहीं है। (६) धृतियुत-धैर्यशाली, जिसे अति गम्भीर बातों में भी भ्रम न हो। (७) अनाशंसी-श्रोताओं से वस्त्र आदि किसी वस्तु की इच्छा न रखने वाला। (८) अविकत्थन-बहुत अधिक नहीं बोलने वाला अथवा आत्मप्रशंसा नहीं करने वाला। (९) अमायी-माया न करने वाला। शिष्यों को कपट रहित हो कर शुद्ध हृदय से पढ़ाने वाला। (१०) स्थिरपरिपाटी-निरन्तर अभ्यास के कारण जिसे अनुयोग की परिपाटी (मूल और अर्थ) बिल्कुल स्थिर हो गई हो। ऐसा व्यक्ति सूत्र और अर्थ कभी नहीं भूलता। (११) गृहीतवाक्य-जिसका वचन उपादेय हो। जिसका वचन थोड़ा भी महान् अर्थ वाला मालूम पड़ता हो। (१२) जित-परिषद्-बड़ी से बड़ी सभा में भी नहीं घबराने वाला। (१३) जितनिद्र-निद्रा को जीतने वाला अर्थात् रात को सूत्र या अर्थ का विचार करते समय जिसे निद्रा नहीं आती। (१४) मध्यस्थ-सभी शिष्यों से समान बर्ताव रखने वाला। (१५) देशकाल-भावज्ञ-देश काल और भाव को जानने वाला। शिष्यों के अभि-प्राय को समझने वाला। (१६) आसन्नलब्धप्रतिभ-प्रतिपक्षी द्वारा किसी प्रकार का आक्षेप होने पर शीघ्र उत्तर देने वाला। (१७) नानाविधदेशभाषाज्ञ-भिन्न भिन्न देशों की भाषाओं को जानने वाला। ऐसा व्यक्ति भिन्न भिन्न देशों के शिष्यों को अच्छी तरह समझा सकता है। (१८) पञ्चविधाचारयुक्त-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य रूप पाँच प्रकार के आचार वाला। आचार सम्पन्न व्यक्ति ही दूसरों को आचार में प्रवृत्त कर सकता है। (१९) सूत्रार्थतदुभयविधिज्ञ-सूत्र अर्थ और उभय दोनों की विधि को जानने वाला। (२०) आहरणहेतूपनयनयनिपुण-दृष्टान्त, हेतु,

उपनय और नय में निपुण अर्थात् इन सब का मर्म जानने वाला। (२१) ग्राहणाकुशल–विषय को प्रतिपादन करने की शक्ति वाला। (२२) स्वसमयपरसमयवित्–अपने और दूसरों के सिद्धान्तों को जानने वाला। (२३) गम्भीर–जो तुच्छ स्वभाव वाला न हो। (२४) दीप्तिमान्–तेजस्वी ऐसा व्यक्ति प्रतिपक्षियों से प्रभावित नहीं होता। (२५) शिव–कभी क्रोध न करने वाला अथवा इधर उधर विहार करके जनता का कल्याण करने वाला। (२६) सोम–शान्त दृष्टि वाला। (२७) गुणशतकलित–सैंकड़ों मूल तथा उत्तर गुणों से सुशोभित। (२८) युक्त–द्वादशाङ्गी रूप प्रवचन के अर्थ को कहने में निपुण। (बृहत्कल्प पीठिका निर्युक्ति गाथा २४१-२४४

९५३–अट्ठाईस नक्षत्र

जैन शास्त्रों में भी लौकिक ज्योतिष शास्त्र की तरह २८ नक्षत्र प्रसिद्ध हैं। किन्तु ज्योतिष शास्त्र में नक्षत्रों का जो क्रम है उससे जैनशास्त्रों का क्रम कुछ भिन्न है। लौकिक शास्त्र में अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा और रेवती ये सात नक्षत्र अन्त में (२२ से २८ तक) दिये हैं जब कि जैन शास्त्रों में ये सात नक्षत्र प्रारम्भ में दिये गये हैं। इसका कारण बतलाते हुए जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की शान्ति चन्द्रगणिविरचित वृत्ति में लिखा है कि अश्विन्यादि अथवा कृतिकादि लौकिक क्रम का उल्लंघन कर जैनशास्त्रों में नक्षत्रावली का जो यह क्रम दिया है इसका कारण यह है कि युग के आदि में चन्द्र के साथ सर्व प्रथम अभिजित् नक्षत्र का योग प्रवृत्त हुआ था।

जैनशास्त्रानुसार २८ नक्षत्र इस क्रम से हैं--(१) अभिजित् (२) श्रवण (३) धनिष्ठा (४) शतभिषक् (५) पूर्वभाद्रपदा (६) उत्तरभाद्रपदा (७) रेवती (८) अश्विनी (९) भरणी (१०) कृतिका (११) रोहिणी (१२) मृगशिर (१३) आर्द्रा (१४) पुनर्वसु (१५) पुष्य

(१६) अश्लेषा (१७) मघा (१८) पूर्वाफाल्गुनी (१९) उत्तरा-फाल्गुनी (२०) हस्त (२१) चित्रा (२२) स्वाति (२३) विशाखा (२४) अनुराधा (२५) ज्येष्ठा (२६) मूला (२७) पूर्वाषाढ़ा (२८) उत्तराषाढ़ा।

समवायांग सूत्र में कहा है कि जम्बूद्वीप में अभिजित को छोड़ कर सत्ताईस नक्षत्रों से व्यवहार की प्रवृत्ति होती है। टीकाकार ने अभिजित् का उत्तराषाढ़ा के चौथे पाद में ही प्रवेश माना है।

लौकिक ज्योतिष शास्त्र में २८ नक्षत्र इस क्रम से प्रसिद्ध हैं—

(१) अश्विनी (२) भरणी (३) कृतिका (४) रोहिणी (५) मृग-शिर (६) आर्द्रा (७) पुनर्वसु (८) पुष्य (९) अश्लेषा (१०) मघा (११) पूर्वाफाल्गुनी (१२) उत्तराफाल्गुनी (१३) हस्त (१४) चित्रा (१५) स्वाति (१६) विशाखा (१७) अनुराधा (१८) ज्येष्ठा (१९) मूला (२०) पूर्वाषाढ़ा (२१) उत्तराषाढ़ा (२२) अभिजित् (२३) श्रवण (२४) धनिष्ठा (२५) शतभिषक् (२६) पूर्वभाद्रपदा (२७) उत्तरभाद्रपदा (२८) रेवती।

(जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ७ वक्षस्कार १५५ सूत्र) (समवायांग २७)

९५४--लब्धियां अट्ठाईस

शुभ अध्यवसाय तथा उत्कृष्ट तप संयम के आचरण से तत् तत्कर्म का क्षय और क्षयोपशम होकर आत्मा में जो विशेष शक्ति उत्पन्न होती है उसे लब्धि कहते हैं। शास्त्रकारों ने अट्ठाईस प्रकार की लब्धियाँ बतलाई हैं:—

आमोसहि विप्पोसहि खेलोसहि जल्ल ओसही चेव।
सव्वोसहि संभिण्णे ओही रिउ विउलमइ लद्धी॥
चारण आसीविस केवलिय गणहारिणो य पुव्वधरा।
अरहंत चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा य॥

खीर महु सप्पि आसव कोट्ठय बुद्धि पयाणुसारी य।
तह बीयबुद्धि तेयग आहारग सीय लेसा य ॥
वेउव्वि देह लद्धी अक्खीण महाणसी पुलाया य।
परिणाम तव वसेणं एमाई हुंति लद्धीओ ॥

अर्थ—आमशौंषधि लब्धि, विप्रुडौषधि लब्धि, खेलौषधि लब्धि, जल्लौषधि लब्धि, सर्वौषधि लब्धि, सम्भिन्नश्रोतो लब्धि, अवधि लब्धि, ऋजुमति लब्धि, विपुलमति लब्धि, चारण लब्धि, आशीविष लब्धि, केवली लब्धि, गणधर लब्धि, पूर्वधर लब्धि, अर्हल्लब्धि, चक्रवर्ती लब्धि, बलदेव लब्धि, वासुदेव लब्धि, क्षीरमधु सर्पिराश्रव लब्धि, कोष्ठकबुद्धि लब्धि, पदानुसारी लब्धि, बीजबुद्धि लब्धि, तेजोलेश्या लब्धि, आहारक लब्धि, शीतलेश्या लब्धि, वैकुर्विकदेह लब्धि, अक्षीणमहानसी लब्धि, पुलाक लब्धि।

(१) आमशौंषधि लब्धि—जिस लब्धि के प्रभाव से हाथ, पैर आदि अवयवों के स्पर्श मात्र से ही रोगी स्वस्थ हो जाता है वह आमशौंषधि लब्धि कहलाती है।

(२) विप्रुडौषधि लब्धि—विप्रुड् शब्द का अर्थ है मल मूत्र। जिस लब्धि के कारण योगी के मल मूत्र आदि में सुगन्ध आने लगती है और व्याधि शमन के लिये वे औषधि का काम देते हैं वह विप्रुडौषधि लब्धि कहलाती है।

(३) खेलौषधि लब्धि—खेल यानी श्लेष्म। जिसके प्रभाव से लब्धिधारी के श्लेष्म से सुगन्ध आती है और उससे रोग शान्त हो जाते हैं वह खेलौषधि लब्धि है।

(४) जल्लोषधि लब्धि—कान, मुख, जिह्वा आदि का मैल जल्ल कहलाता है। जिस के प्रभाव से इस मैल में सुगन्ध आती है और इसके स्पर्श से रोगी स्वस्थ हो जाता है वह जल्लौषधि लब्धि है।

(५) सर्वौषधि लब्धि—जिस लब्धि के प्रभाव से मल, मूत्र,

नख ,केश आदि सभी में सुगन्ध आने लगती है और उनके स्पर्श से रोग नष्ट हो जाते हैं वह सर्वौषधि लब्धि कहलाती है।

(६) सम्भिन्नश्रोतो लब्धि–जो शरीर के प्रत्येक भाग से सुने उसे सम्भिन्नश्रोता कहते हैं। ऐसी शक्ति जिस लब्धि से प्राप्त हो उसे सम्भिन्नश्रोतो लब्धि कहते हैं। अथवा श्रोत्र, चक्षु, घ्राण आदि इन्द्रियाँ अपने अपने विषय को ग्रहण करती हैं किन्तु जिस लब्धि के प्रभाव से किसी भी एक इन्द्रिय से दूसरी सभी इन्द्रियों के विषय ग्रहण किये जा सकें वह सम्भिन्नश्रोतो लब्धि है। अथवा जिस लब्धि के प्रभाव से लब्धिधारी बारह योजन में फैली हुई चक्रवर्ती की सेना में एक साथ बजने वाले शंख, भेरी, काहला, ढक्का, घंटा आदि वाद्यविशेषों के शब्द पृथक् पृथक् रूप से सुनता है वह सम्भिन्नश्रोतो लब्धि है।

(७) अवधि लब्धि–जिस लब्धि के प्रभाव से अवधिज्ञान की प्राप्ति होती है उसे अवधि लब्धि कहते हैं।

(८) ऋजुमति लब्धि–ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्यय-ज्ञान के भेद हैं। ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञान वाला अढ़ाई द्वीप से कुछ कम (अढ़ाई अंगुल कम) क्षेत्र में रहे हुए संज्ञी जीवों के मनोगत भाव सामान्य रूप से जानता है। जिस लब्धि से ऐसे ज्ञान की प्राप्ति हो वह ऋजुमति लब्धि है।

(९) विपुलमति लब्धि–विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान वाला अढ़ाई द्वीप में रहे हुए संज्ञी जीवों के मनोगत भाव विशेष रूप से स्पष्टता-पूर्वक जानता है। जिस लब्धि के प्रभाव से ऐसे ज्ञान की प्राप्ति हो वह विपुलमति लब्धि है।

नोट–अवधि ज्ञान का स्वरूप इसी ग्रन्थ के प्रथम भाग में बोल नं० १३ तथा ३७५ में और ऋजुमति विपुलमति मनःपर्ययज्ञान का स्वरूप बोल नं० १४ में दिया गया है।

(१०) चारण लब्धि—जिस लब्धि से आकाश में जाने आने की विशिष्ट शक्ति प्राप्त होती है वह चारण लब्धि है। जंघाचारण और विद्याचारण के भेद से यह लब्धि दो प्रकार की है। जंघाचारण लब्धि विशिष्ट चारित्र और तप के प्रभाव से प्राप्त होती है और विद्याचारण लब्धि विद्या के वश होती है।

जंघाचारण लब्धि वाला रुचकवर द्वीप तक जा सकता है। वह एक ही उत्पात (उड़ान) से रुचकवर द्वीप तक पहुँच जाता है किन्तु आते समय दो उत्पात करके आता है पहली उड़ान से नन्दीश्वर द्वीप में आता है और दूसरी से अपने स्थान पर आ जाता है। इसी प्रकार वह ऊपर भी जा सकता है। वह एक ही उड़ान में सुमेरु पर्वत के शिखर पर रहे हुए पाण्डुक वन में पहुंच जाता है और लौटते समय दो उड़ान करता है। पहली उड़ान से वह नन्दन वन में आता है और दूसरी से अपने स्थान पर आ जाता है।

विद्याचारण लब्धि वाला नन्दीश्वर द्वीप तक उड़ कर जा सकता है। जाते समय वह पहली उड़ान में मानुषोत्तर पर्वत पर पहुँचता है और दूसरी उड़ान में नन्दीश्वर द्वीप पहुंच जाता है। लौटते समय वह एक ही उड़ान में अपने स्थान पर आ जाता है किन्तु बीच में विश्राम नहीं लेता। इसी प्रकार ऊपर जाते समय वह पहली उड़ान से नन्दन वन में पहुंचता है और दूसरी से पाण्डुक वन। आते समय वह एक ही उड़ान से अपने स्थान पर आ जाता है।

जंघाचारण लब्धि चारित्र और तप के प्रभाव से होती है। इस लब्धि का प्रयोग करते हुए मुनि के उत्सुकता होने से प्रमाद का संभव है और इसलिये यह लब्धि शक्ति की अपेक्षा हीन हो जाती है। यही कारण है कि उसके लिये आते समय दो उत्पात करना कहा है। विद्याचारण लब्धि विद्या के वश होती है, चूंकि विद्या का परिशीलन होने से वह अधिक स्पष्ट होती है इसलिये यह लब्धि

वाला जाते समय दो उत्पात करके जाता है किन्तु एक ही उत्पात से वापिस अपने स्थान पर आ जाता है।

(११) आशीविष लब्धि–जिनके दाढ़ों में महान् विष होता है वे आशीविष कहे जाते हैं। उनके दो भेद हैं–कर्म आशीविष और जाति आशीविष। तप अनुष्ठान एवं अन्य गुणों से जो आशीविष की क्रिया कर सकते हैं यानी शापादि से दूसरों को मार सकते हैं वे कर्म आशीविष हैं। उनकी यह शक्ति आशीविष लब्धि कही जाती है। यह लब्धि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्यों के होती है। आठवें सहस्रार देवलोक तक के देवों में भी अपर्याप्त अवस्था में यह लब्धि पाई जाती है। जिन मनुष्यों को पूर्वभव में ऐसी लब्धि प्राप्त हुई है वे आयु पूरी करके जब देवों में उत्पन्न होते हैं तो उन में पूर्वभव में उपार्जन की हुई यह शक्ति बनी रहती है। पर्याप्त अवस्था में भी देवता शाप आदि से जो दूसरों का अनिष्ट करते हैं वह लब्धि से नहीं किन्तु देव भव कारण के सामर्थ्य से करते हैं और वह सभी देवों में सामान्य रूप से पाया जाता है।

जाति विष के चार भेद हैं–बिच्छू, मेंढक, साँप और मनुष्य। ये उत्तरोत्तर अधिक विष वाले होते हैं। बिच्छू के विष से मेंढक का विष अधिक प्रबल होता है। उससे सर्प का विष और सर्प की अपेक्षा भी मनुष्य का विष अधिक प्रबल होता है। बिच्छू, मेंढक, सर्प और मनुष्य के विष का असर क्रमशः अर्द्ध भरत, भरत, जम्बूद्वीप और समयक्षेत्र (अढ़ाई द्वीप) प्रमाण शरीर में हो सकता है।

(१२) केवली लब्धि–ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घाती कर्मों के क्षय होने से केवलज्ञान रूप लब्धि प्रगट होती है। इसके प्रभाव से त्रिलोक एवं त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ हस्तामलकवत् स्पष्ट जाने देखे जा सकते हैं।

(१३) गणधर लब्धि–लोकोत्तर ज्ञान दर्शन आदि गुणों के

गण (समूह) को धारण करने वाले तथा प्रवचन को पहले पहल सूत्र रूप में गूंथने वाले महापुरुष गणधर कहलाते हैं। ये तीर्थङ्करों के प्रधान शिष्य तथा गणों के नायक होते हैं। गणधर लब्धि के प्रभाव से गणधर पद की प्राप्ति होती है।

(१४) पूर्वधर लब्धि–तीर्थ की आदि करते समय तीर्थङ्कर भगवान् पहले पहल गणधरों को सभी सूत्रों के आधार रूप पूर्वों का उपदेश देते हैं। इसलिये उन्हें पूर्व कहा जाता है। पूर्व चौदह हैं। दश से लेकर चौदह पूर्वों के धारक पूर्वधर कहे जाते हैं। जिस के प्रभाव से उक्त पूर्वों का ज्ञान प्राप्त होता है वह पूर्वधर लब्धि है।

(१५) अर्हल्लब्धि–अशोकवृक्ष, देवकृत अचित्त पुष्पवृष्टि, दिव्य ध्वनि, चँवर, सिंहासन, भामण्डल, देवदुन्दुभि और छत्र इन आठ महाप्रातिहार्यों से युक्त केवली अर्हन्त (तीर्थङ्कर) कहलाते हैं। जिस लब्धि के प्रभाव से अर्हन्त (तीर्थङ्कर) पदवी प्राप्त हो वह अर्हल्लब्धि कहलाती है।

(१६) चक्रवर्ती लब्धि–चौदह रत्नों के धारक और छः खण्ड पृथ्वी के स्वामी चक्रवर्ती कहलाते हैं। जिस लब्धि के प्रभाव से चक्रवर्ती पद प्राप्त होता है, वह चक्रवर्ती लब्धि कहलाती है।

(१७) बलदेव लब्धि–वासुदेव के बड़े भाई बलदेव कहलाते हैं। जिस के प्रभाव से इस पद की प्राप्ति हो वह बलदेव लब्धि है।

(१८) वासुदेव लब्धि–अर्द्ध भरत (भरतक्षेत्र के तीन खण्ड) और सात रत्नों के स्वामी वासुदेव कहलाते हैं। इस पद की प्राप्ति होना वासुदेव लब्धि है।

अरिहन्त, चक्रवर्ती और वासुदेव ये सभी उत्तम एवं श्लाघ्य पुरुष हैं। इनका अतिशय बतलाते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—

सोलस रायसहस्सा सव्व बलेणं तु संकलनिबद्धं।
अंछंति वासुदेवं अगडतडम्मि ठियं संतं॥

घेत्तूण संकलं सो वामहत्थेण अंछमाणाणं ।
भुंजिज्ज विलिंपिज्ज व महुमहणं ते न चाएंति ॥

भावार्थ—वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से वासुदेवों में अतुल बल होता है। कुए के तट पर बैठे हुए वासुदेव को, जंजीर से बांध कर, हाथी घोड़े रथ और पदाति (पैदल) रूप चतुरंगिणी सेना सहित सोलह हजार राजा भी खींचने लगें तो वे उसे नहीं खींच सकते। किन्तु उसी जंजीर को बाँए हाथ से पकड़ कर वासुदेव अपनी तरफ बड़ी आसानी से खींच सकता है।

जं केसवस्स उ बलं तं दुगुणं होई चक्कवट्टिस्स ।
तत्तो बला बलवगा अपरिमियबला जिणवरिंदा ॥

अर्थ—वासुदेव का जो बल बतलाया गया है उससे दुगुना बल चक्रवर्ती में होता है। जिनेश्वर देव चक्रवर्ती से भी अधिक बलशाली होते हैं। वीर्यान्तराय कर्म का सम्पूर्ण क्षय कर देने के कारण उनमें अपरिमित बल होता है।

(१९) क्षीरमधुसर्पिराश्रव लब्धि—जिस लब्धि के प्रभाव से वक्ता के वचन श्रोताओं को दूध, मधु (शहद) और घृत के समान मधुर और प्रिय लगते हैं वह क्षीरमधुसर्पिराश्रव लब्धि कहलाती है। गन्नों (पुण्ड्रेक्षु) को चरने वाली एक लाख श्रेष्ठ गायों का दूध निकाल कर पचास हजार गायों को पिला दिया जाय और पचास हजार का पचीस हजार को पिला दिया जाय। इसी क्रम से करते करते अन्त में वह दूध एक गाय को पिला दिया जाय। उस गाय का दूध पीने पर जिस प्रकार मन प्रसन्न होता है और शरीर की पुष्टि होती है उसी प्रकार जिसका वचन सुनने से मन और शरीर आह्लादित होते हैं वह क्षीराश्रव लब्धि वाला कहलाता है। जिसका वचन सुनने में श्रेष्ठ और मधु (शहद) के समान मधुर लगता है वह मध्वाश्रव लब्धि वाला कहलाता है। जिसका वचन गन्नों को चरने

वाली गायों के घी के समान लगता है वह सर्पिराश्रव लब्धि वाला कहलाता है अथवा जिन साधु महात्माओं के पात्र में आया हुआ रूखा सूखा आहार भी क्षीर, मधु, घृत आदि के समान स्वादिष्ट बन जाता है एवं उसकी परिणति भी क्षीरादि की तरह ही पुष्टिकारक होती है। साधु महात्माओं की यह शक्ति क्षीरमधु-सर्पिराश्रव लब्धि कही जाती है।

(२०) कोष्ठक बुद्धि लब्धि–जिस प्रकार कोठे में डाला हुआ धान्य बहुत काल तक सुरक्षित रहता है और उसका कुछ नहीं बिगड़ता, इसी प्रकार जिस लब्धि के प्रभाव से लब्धिधारी आचार्य के मुख से सुना हुआ सूत्रार्थ ज्यों का त्यों धारण कर लेता है और चिर काल तक भूलता नहीं है वह कोष्ठक बुद्धि लब्धि है।

(२१) पदानुसारिणी लब्धि–जिस लब्धि के प्रभाव से सूत्र के एक पद का श्रवण कर दूसरे बहुत से पद बिना सुने ही अपनी बुद्धि से जान ले वह पदानुसारिणी लब्धि कहलाती है।

(२२) बीजबुद्धि लब्धि–जिस लब्धि के प्रभाव से बीज रूप एक ही अर्थप्रधान पद सीख कर अपनी बुद्धि से स्वयं बहुत सा बिना सुना अर्थ भी जान ले वह बीजबुद्धि लब्धि कहलाती है। यह लब्धि गणधरों में सर्वोत्कर्ष रूप से होती है। वे तीर्थङ्कर भगवान् के मुख से उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप त्रिपदी मात्र का ज्ञान प्राप्त कर सम्पूर्ण द्वादशाङ्गी की रचना करते हैं।

(२३) तेजोलेश्या लब्धि–मुख से, अनेक योजन प्रमाण क्षेत्र में रही हुई वस्तुओं को जलाने में समर्थ, अति तीव्र तेज निकालने की शक्ति तेजोलेश्या लब्धि है। इसके प्रभाव से लब्धिधारी क्रोध वश विरोधी के प्रति इस तेज का प्रयोग कर उसे जला देता है।

(२४) आहारक लब्धि–प्राणी दया, तीर्थङ्कर भगवान् की ऋद्धि का दर्शन तथा संशय निवारण आदि प्रयोजनों से अन्य क्षेत्र में

विराजमान् तीर्थङ्कर भगवान् के पास भेजने के लिये चौदह पूर्वधारी मुनि अतिविशुद्ध स्फटिक के समान एक हाथ का पुतला निकालते हैं, उनकी यह शक्ति आहारक लब्धि कहलाती है।

(२५) शीत लेश्या लब्धि—अत्यन्त करुणाभाव से प्रेरित हो अनुग्राहपात्र के प्रति तेजो लेश्या को शान्त करने में समर्थ शीतल तेज विशेष को छोड़ने की शक्ति शीत लेश्या लब्धि कहलाती है। बाल तपस्वी वैशिकायिन ने गोशालक को जलाने के लिये तेजो लेश्या छोड़ी थी उस समय करुणा भाव से प्रेरित हो प्रभु महावीर ने गोशालक की रक्षा के लिये शीत लेश्या का प्रयोग किया था।

(२६) वैकुर्विक देह लब्धि—जिस लब्धि के प्रभाव से छोटा बड़ा आदि विविध प्रकार के रूप बनाये जा सकें वह वैकुर्विक देह लब्धि कहलाती है। मनुष्य और तिर्यञ्चों को यह लब्धि तप आदि का आचरण करने से प्राप्त होती है। देवता और नैरयिकों में विविध रूप बनाने की यह शक्ति भव कारणक होती है।

(२७) अक्षीण महानसी लब्धि—जिस लब्धि के प्रभाव से भिक्षा में लाये हुए थोड़े से आहार से लाखों आदमी भोजन करके तृप्त हो जाते हैं किन्तु वह ज्यों का त्यों अक्षीण बना रहता है। लब्धिधारी के भोजन करने पर ही वह अन्न समाप्त होता है उसे अक्षीण महानसी लब्धि कहते हैं।

(२८) पुलाक लब्धि—देवता के समान समृद्धि वाला विशेष लब्धि सम्पन्न मुनि लब्धि पुलाक कहलाता है। कहा भी है—

संघाइआण कज्जे चुएणेज्जा चक्कवट्टिमवि जीए।
तीए लद्धीए जुओ लद्धिपुलाओ मुणेयव्वो॥

अर्थ—जिस लब्धि द्वारा मुनि संघादि के खातिर चक्रवर्ती का भी विनाश कर देता है। उस लब्धि से युक्त मुनि लब्धि पुलाक

कहलाता है। लब्धिपुलाक की यह विशिष्ट शक्ति ही पुलाक लब्धि है।

ये अट्ठाईस लब्धियाँ गिनाई गई हैं। इस प्रकार की और भी अनेक लब्धियाँ हैं—जैसे शरीर को अति सूक्ष्म बना लेना अणुत्व लब्धि है। मेरु पर्वत से भी बड़ा शरीर बना लेना महत्त्व लब्धि है। शरीर को वायु से भी हल्का बना लेना लघुत्व लब्धि है। शरीर को वज्र से भी भारी बना लेना गुरुत्व लब्धि है। भूमि पर बैठे हुए ही अङ्गुली से मेरु पर्वत के शिखर को छू लेने की शक्ति प्राप्ति लब्धि है। जल पर स्थल की तरह चलना तथा स्थल में जलाशय की भाँति उन्मज्जन निमज्जन (ऊपर आना नीचे जाना) की क्रियाएं करना प्राकाम्य लब्धि है। तीर्थङ्कर अथवा इन्द्र की ऋद्धि की विक्रिया करना ईशित्व लब्धि है। सब जीवों को वश में करना वशित्व लब्धि है। पर्वतों के बीच से बिना रुकावट निकल जाना अप्रतिघातित्व लब्धि है। अपने शरीर को अदृश्य बना लेना अन्तर्धान लब्धि है। एक साथ अनेक प्रकार के रूप बना लेना कामरूपित्व लब्धि है।

इन लब्धियों में से भव्य अभव्य स्त्री पुरुषों के कितनी और कौन सी लब्धियाँ होती हैं? यह बताते हुए ग्रन्थकार कहते हैं—

भवसिद्धिय पुरिसाणं एयाओ हुंति भणियलद्धीओ।
भवसिद्धिय महिलाण वि जत्तिय जायंति तं वोच्छं ॥ १५०५ ॥
अरहंत चक्कि केसव बल संभिण्णे य चरणे पुव्वा।
गणहर पुलाय आहारगं च ण हु भविय महिलाणं ॥ १५०६ ॥
अभवियपुरिसाणं पुण दस पुव्विल्लाउ केवलित्तं च।
उज्जुमई विउलमई तेरस एयाउ ण हु हुंति ॥ १५०७ ॥
अभवियमहिलाणं वि एयाओ हुंति भणिय लद्धीओ।
महु खीरासव लद्धी वि नेय सेसा उ अविरुद्धा ॥ १५०८ ॥

अर्थ—भव्य पुरुषों में अट्ठाईस ही लब्धियाँ पाई जाती हैं। भव्य

स्त्रियों में निम्न दस लब्धियों के सिवाय शेष लब्धियाँ पाई जाती हैं।

१ अर्हल्लब्धि २ चक्रवर्ती लब्धि ३ वासुदेव लब्धि ४ बलदेव लब्धि ५ सम्भिन्नश्रोतो लब्धि ६ चारण लब्धि ७ पूर्वधर लब्धि ८ गणधर लब्धि ६ पुलाक लब्धि १० आहारक लब्धि।

उपरोक्त दस और केवली लब्धि, ऋजुमति लब्धि तथा विपुलमति लब्धि ये तेरह लब्धियाँ अभव्य पुरुषों में नहीं होती हैं। उक्त तेरह और मधुक्षीरसर्पिराश्रव लब्धि ये चौदह लब्धियाँ अभव्य स्त्रियों में नहीं पाई जातीं अर्थात् अभव्य पुरुषों में ऊपर बताई गई तेरह लब्धियों को छोड़ कर शेष पन्द्रह लब्धियाँ और अभव्य स्त्रियों में उपरोक्त चौदह लब्धियों को छोड़ कर बाकी चौदह लब्धियाँ पाई जा सकती हैं। (प्रवचन सारोद्धार द्वार २७० गाथा १४६२-१५०८)

उनतीसवां बोल संग्रह

६५५—सूयगडांग सूत्र के महावीर स्तुति नामक छठे अध्ययन की २६ गाथाएं

सूयगडांग सूत्र प्रथम श्रुतस्कन्ध के छठे अध्ययन का नाम महावीरस्तुति है। इसमें भगवान् महावीर स्वामी की स्तुति की गई है। इसमें २६ गाथाएं हैं। उनका भावार्थ इस प्रकार है—

(१) श्री सुधर्मास्वामी ने जम्बूस्वामी से कहा कि श्रमण ब्राह्मण क्षत्रिय आदि तथा अन्य तीर्थिकों ने मुझ से पूछा था कि हे भगवन्! कृपया बतलाइये कि केवलज्ञान से सम्यक् जान कर एकान्त रूप से कल्याणकारी अनुपम धर्म को जिसने कहा है वह कौन है ?

(२) ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्ञान दर्शन और चारित्र कैसे थे ? हे भगवन्! आप यह जानते हैं अतः जैसे आपने सुना और निश्चय किया है वह कृपया हमें बतलाइये।

(३) श्रीसुधर्मास्वामी भगवान् महावीर स्वामी के गुणों का कथन करते हैं—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी संसार के प्राणियों के दुःख एवं कष्टों को जानते थे। वे आठ प्रकार के कर्मों का नाश करने वाले और सदा सर्वत्र उपयोग रखने वाले थे। वे अनन्त ज्ञानी और अनन्तदर्शी थे। भवस्थ केवली अवस्था में भगवान् जगत् के नेत्र रूप थे। उनके द्वारा कथित धर्म का तथा उनके धैर्य आदि यथार्थ गुणों का मैं वर्णन करूँगा। तुम ध्यान पूर्वक सुनो।

(४) केवलज्ञानी भगवान् महावीर स्वामी ने ऊर्ध्वदिशा अधोदिशा और तिर्यग्दिशा में रहने वाले त्रस और स्थावर प्राणियों को अच्छी तरह देख कर उनके लिये कल्याणकारी धर्म का कथन किया है। तत्त्वों के ज्ञाता भगवान् ने पदार्थों का स्वरूप दीपक के समान नित्य और अनित्य दोनों प्रकार का कहा है अथवा भगवान् संसार सागर में डूबते हुए प्राणियों के लिये द्वीप के समान हैं।

(५) भगवान् महावीर स्वामी समस्त पदार्थों को जानने और देखने वाले सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे। वे मूल गुण और उत्तर गुण युक्त विशुद्ध चारित्र का पालन करने वाले बड़े धीर और आत्म स्वरूप में स्थित थे। भगवान् समस्त जगत् में सर्व श्रेष्ठ विद्वान् थे। वे बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थि से रहित थे तथा निर्भय एवं आयु (वर्तमान आयु से भिन्न चारों गति की आयु) से रहित थे, क्योंकि कर्म रूपी बीज के जल जाने से इस भव के बाद उनकी किसी गति में उत्पत्ति नहीं हो सकती थी।

(६) भगवान् महावीर स्वामी भूतिप्रज्ञ (अनन्त ज्ञानी) इच्छानुसार विचरने वाले, संसार सागर को पार करने वाले और परीषह तथा उपसर्गों को सहन करने वाले धीर और पूर्ण ज्ञानी थे। वे सूर्य के समान प्रकाश करने वाले थे और जिस तरह अग्नि अन्धकार को दूर कर प्रकाश करती है उसी तरह भगवान् अज्ञानान्धकार

को दूर कर पदार्थों का यथार्थ स्वरूप प्रकाशित करते थे।

(७) दिव्यज्ञानी भगवान् महावीर स्वामी ऋषभादि जिनेश्वरों द्वारा प्रणीत उत्तम धर्म के नेता थे। जिस प्रकार स्वर्ग लोक में इन्द्र महा प्रभावशाली तथा देवताओं का नायक है एवं सभी देवताओं में श्रेष्ठ है उसी तरह भगवान् भी सभी से श्रेष्ठ थे, त्रिलोक के नेता थे तथा सभी से अधिक प्रभावशाली थे।

(८) भगवान् समुद्र के समान अक्षय प्रज्ञा वाले थे। जिस प्रकार स्वयम्भूरमण समुद्र अगाध-अपार है, उसका पार नहीं पाया जा सकता, उसी प्रकार भगवान् का ज्ञान भी अनन्त है उसका पार नहीं पाया जा सकता। जैसे इस समुद्र का जल निर्मल है। उसी प्रकार भगवान् का ज्ञान भी निर्मल है। भगवान् कषायों से रहित तथा मुक्त हैं। देवों के अधिपति इन्द्र के समान भगवान् बड़े तेजस्वी हैं।

(९) वीर्यान्तराय कर्म के क्षय हो जाने से भगवान् अनन्त वीर्य युक्त हैं। जैसे पर्वतों में सुमेरु श्रेष्ठ है उसी प्रकार भगवान् त्रिलोकी के समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ हैं। जैसे स्वर्ग प्रशस्त वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श और प्रभाव आदि गुणों से युक्त है और देवों को आनन्द देने वाला है उसी प्रकार भगवान् भी अनेक गुणों से सुशोभित हैं।

(१०) ऊपर की गाथा में भगवान् को सुमेरु पर्वत की उपमा दी है उसी सुमेरु का विशेष वर्णन करते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

सुमेरु पर्वत एक लाख योजन ऊँचा है। उसके तीन विभाग हैं–भूमिमय, सुवर्णमय और वैडूर्य्य रत्नमय। ऊपर पताका रूप पाण्डुक वन है। सुमेरु पर्वत निन्यानवें हजार योजन ऊँचा है और एक हजार योजन भूमि में रहा हुआ है।

(११) सुमेरु पर्वत ऊपर आकाश को स्पर्श करके रहा हुआ है तथा नीचे पृथ्वी को अवगाह करके स्थित है। इस प्रकार वह तीनों लोकों का स्पर्श किये हुए है। सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि इस

पर्वत की परिक्रमा करते हैं। तपे हुए सोने के समान इसका सुनहला वर्ण है। यह चार वनों में युक्त है। भूमिमय विभाग में भद्रशाल वन है उससे पाँच सौ योजन ऊपर नन्दन वन है। उससे बासठ हजार पाँच सौ योजन ऊपर सौमनस वन है। उस से छत्तीस हजार योजन ऊपर शिखर पर पाण्डुक वन है। इस प्रकार यह पर्वत चार सुन्दर वनों से युक्त विचित्र क्रीड़ा स्थान है। इन्द्र भी स्वर्ग से आकर इस पर्वत पर आनन्द का अनुभव करते हैं।

(१२) यह सुमेरु पर्वत मन्दर, मेरु, सुदर्शन, सुरगिरि आदि अनेक नामों से जगत् में प्रसिद्ध है। इसका वर्ण तपे हुए सोने के समान शुद्ध है। सब पर्वतों में यह पर्वत अनुत्तर (प्रधान) है और उपपर्वतों के कारण अति दुर्गम है अर्थात् सामान्य जन्तुओं का उस पर चढ़ना बड़ा कठिन है। यह पर्वत मणियों और औषधियों से सदा प्रकाशमान रहता है।

(१३) यह पर्वतराज पृथ्वी के मध्य भाग में स्थित है। सूर्य के समान यह कान्ति वाला है। विविध वर्णों के रत्नों से शोभित होने से यह अनेक वर्ण वाला और विशिष्ट शोभा वाला है और इसलिये बड़ा मनोरम है। सूर्य के समान यह दशों दिशाओं को प्रकाशित करता रहता है।

(१४) मेरु का दृष्टान्त बता कर शास्त्रकार दार्ष्टान्त बतलाते हैं– महान् सुमेरु पर्वत का यश ऊपर कहा गया है। उसी प्रकार ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर भी सब जाति वालों में श्रेष्ठ हैं। यश में समस्त यशस्वियों से उत्तम हैं, ज्ञान तथा दर्शन में ज्ञान दर्शन वालों में प्रधान हैं और शील में समस्त शीलवानों में उत्तम हैं।

(१५) जैसे लम्बे पर्वतों में निषध पर्वत श्रेष्ठ है और वर्तुल (गोल) पर्वतों में रुचक पर्वत श्रेष्ठ है। उसी तरह अतिशय ज्ञानी भगवान् महावीर भी सब मुनियों में श्रेष्ठ हैं ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है।

(१६) भगवान् महावीर स्वामी अनुत्तर (प्रधान) धर्म का उपदेश देकर सर्वोत्तम शुक्ल ध्यान (सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाति और व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक शुक्ल ध्यान के उत्तर दो भेद) ध्याते थे। उनका ध्यान अत्यन्त शुक्ल वस्तु के समान अथवा शुद्ध सुवर्ण की तरह निर्मल था एवं शंख तथा चन्द्रमा के समान शुभ्र था।

(१७) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ज्ञान दर्शन और चारित्र के प्रभाव से ज्ञानावरणीयादि समस्त कर्म क्षय करके सर्वोत्तम उस प्रधान सिद्धगति को प्राप्त हुए हैं जो सादि अनन्त है अर्थात् जिसकी आदि है किन्तु अन्त नहीं है।

(१८) जैसे सुपर्ण (सुवर्ण) जाति के देवों का क्रीड़ा रूप स्थान शाल्मली वृक्ष सब वृक्षों में श्रेष्ठ है तथा सब वनों में नन्दन वन श्रेष्ठ है इसी तरह ज्ञान और चारित्र में भगवान् महावीर स्वामी सबसे श्रेष्ठ हैं।

(१९) जैसे शब्दों में मेघ का शब्द गर्जन) प्रधान है, नक्षत्रों में चन्द्रमा प्रधान है तथा गन्ध वाले पदार्थों में चन्दन प्रधान है इसी तरह कामना रहित भगवान् सभी मुनियों में प्रधान एवं श्रेष्ठ हैं।

(२०) जैसे समुद्रों में स्वयम्भूरमण समुद्र नाग जाति के देवों में धरणेन्द्र और रस वालों में ईक्षुरसोदक (ईख के रस के समान जिसका जल मधुर है) समुद्र श्रेष्ठ है उसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी सब तपस्वियों में श्रेष्ठ एवं प्रधान हैं।

(२१) जैसे हाथियों में इन्द्र का ऐरावण हाथी, पशुओं में सिंह, नदियों में गङ्गा, और पक्षियों में वेणुदेव (गरुड़) श्रेष्ठ है इसी तरह निर्वाणवादियों में ज्ञातपुत्र श्रीमन्महावीर स्वामी श्रेष्ठ हैं।

(२२) जैसे सब योद्धाओं में चक्रवर्ती प्रधान हैं, सब प्रकार के फूलों में अरविन्द (कमल) का फूल श्रेष्ठ है और क्षत्रियों में दान्तवाक्य अर्थात् जिनके वचन मात्र से ही शत्रु शान्त हो जाते हैं ऐसे चक्रवर्ती प्रधान हैं इसी तरह ऋषियों में श्रीमान् वर्धमान स्वामी श्रेष्ठ हैं।

(२३) जैसे दानों में अभयदान श्रेष्ठ है, सत्य में अनवद्य (जिससे किसी को पीड़ा न हो) वचन श्रेष्ठ है और तप में ब्रह्मचर्य तप प्रधान है इसी तरह श्रमण भगवान् महावीर लोक में प्रधान हैं।

(२४) जैसे सब स्थिति वालों में * लवसप्तम अर्थात् सर्वार्थसिद्ध विमान वासी देव उत्कृष्ट स्थिति वाले होने से प्रधान हैं, सभाओं में सुधर्मा सभा और सब धर्मों में निर्वाण (मोक्ष) प्रधान है इसी तरह सर्वज्ञ भगवान् महावीर स्वामी से बढ़ कर दूसरा कोई ज्ञानी नहीं है अतः वे सभी ज्ञानियों से श्रेष्ठ हैं।

(२५) जैसे पृथ्वी सब जीवों का आधार है इसी तरह भगवान् महावीर स्वामी सब को अभयदान देने से और उत्तम उपदेश देने से सब जीवों के लिये आधार रूप हैं, अथवा पृथ्वी सब कुछ सहन करती है इसी तरह भगवान् भी सब परीषह और उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करते थे। भगवान् कर्म रूपी मैल से रहित हैं। वे गृद्धिभाव तथा द्रव्य सन्निधि (धन धान्यादि) और भावसन्निधि (क्रोधादि) से भी रहित हैं। आशुप्रज्ञ भगवान् महावीर आठ कर्मों का क्षय कर समुद्र के समान अनन्त संसार को पार करके मोक्ष को प्राप्त हुए हैं। भगवान् प्राणियों को स्वयं अभय देते थे और सदुपदेश देकर दूसरों से अभय दिलाते थे इसलिये भगवान् अभयङ्कर हैं। अष्ट कर्मों का विशेष रूप से नाश करने से वे वीर एवं अनन्तज्ञानी हैं।

(२६) भगवान् महावीर महर्षि हैं। उन्होंने आत्मा को मलिन करने वाले क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषायों को जीत लिया है। वे पाप (सावद्य अनुष्ठान) न स्वयं करते हैं न दूसरों से कराते हैं।

* पूर्व भव में धर्माचरण करते समय यदि सात लव उनकी आयु अधिक होती तो वे केवलज्ञान प्राप्त कर अवश्य मोक्ष में चले जाते इसीलिये वे लवसप्तम कहे जाते हैं।

(२७) क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी और अज्ञानवादी, इन सभी मतवादियों के मतों को जान कर भगवान् यावज्जीवन संयम में स्थिर रहे थे ।

(२८) अष्ट कर्मों का नाश करने के लिये भगवान् ने काम भोग, रात्रि भोजन तथा अन्य पापों का त्याग कर दिया था । वे सदा तप संयम में संलग्न रहते थे । इस लोक और परलोक के स्वरूप को जान कर भगवान् ने पापों का सर्वथा त्याग कर दिया था ।

(२९) अरिहन्त देव द्वारा कहे हुए युक्ति संगत तथा शुद्ध अर्थ और पद वाले इस धर्म को सुन कर जो जीव इसमें श्रद्धा करते हैं वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं अथवा इन्द्र की तरह देवताओं के अधिपति होते हैं । (सूयगडांग सूत्र, प्रथम श्रुतस्कन्ध अध्ययन ६)

९५६–पापश्रुत के उनतीस भेद

पाप उपादान के हेतुभूत अर्थात् पाप आगमन के कारणभूत श्रुत पाप श्रुत कहलाते हैं—

(१) भौम–भूमिकम्पा आदि का फल बताने वाला निमित्त शास्त्र ।

(२) उत्पात–रुधिर की वृष्टि, दिशाओं का लाल होना आदि लक्षणों का शुभाशुभ फल बताने वाला निमित्त शास्त्र ।

(३) स्वप्न शास्त्र–स्वप्नों का शुभाशुभ फलों को बताने वाला शास्त्र स्वप्नशास्त्र कहलाता है ।

(४) अन्तरिक्ष शास्त्र–आकाश में होने वाले ग्रहवेधादि का शुभाशुभ फल बताने वाला शास्त्र अन्तरिक्ष शास्त्र कहलाता है ।

(५) अङ्गशास्त्र–आँख, भुजा आदि शरीर के अवयवों के प्रमाण विशेष का तथा स्पन्दित आदि विकारों का शुभाशुभ फल बतलाने वाला शास्त्र अङ्गशास्त्र कहलाता है ।

(६) स्वरशास्त्र–जीव तथा अजीव के स्वरों का शुभाशुभ फल

बतलाने वाला शास्त्र स्वरशास्त्र कहलाता है।

(७) व्यञ्जनशास्त्र-शरीर के तिल, मष आदि के शुभाशुभ फल को बतलाने वाला शास्त्र व्यञ्जन शास्त्र कहलाता है।

(८) लक्षण शास्त्र-स्त्री, पुरुषों के लांछनादि रूप विविध लक्षणों का शुभाशुभ फल बतलाने वाला शास्त्र लक्षणशास्त्र कहलाता है।

ये आठों ही सूत्र, वृत्ति और वार्तिक के भेद से चौबीस हो जाते हैं। इनमें अङ्गशास्त्र के सिवाय बाकी शास्त्रों में प्रत्येक के एक हजार सूत्र हैं, एक लाख प्रमाण वृत्ति है और वृत्ति की स्पष्ट रूप से व्याख्या करने वाला वार्तिक एक करोड़ प्रमाण है। अङ्ग शास्त्र में एक लाख सूत्र हैं, एक करोड़ प्रमाण वृत्ति है और वार्तिक अपरिमित हैं।

(२५) विकथानुयोग-अर्थ और काम के उपायों को बतलाने वाले शास्त्र विकथानुयोग शास्त्र कहलाते हैं। जैसे-कामन्दक, वात्स्यायन आदि या भारतादि शास्त्र।

(२६) विद्यानुयोग शास्त्र-रोहिणी आदि विद्याओं की सिद्धि के उपाय बतलाने वाले शास्त्र विद्यानुयोग शास्त्र कहलाते हैं।

(२७) मन्त्रानुयोग शास्त्र-मन्त्रों द्वारा सर्प आदि को वश में करने का उपाय बतलाने वाले शास्त्र मन्त्रानुयोग शास्त्र कहलाते हैं।

(२८) योगानुयोग शास्त्र-वशीकरण आदि योग बतलाने वाले हरमेखलादि शास्त्र योगानुयोग कहलाते हैं।

(२९) अन्यतीर्थिकानुयोग-अन्यतीर्थिकों द्वारा अभिमत आचार वस्तुतत्त्व का जिसमें व्याख्यान हो वह अन्य तीर्थिकानुयोग कहलाता है। समवायाग २९)

उनतीस पापश्रुतों को बतलाने के लिये हरिभद्रीयावश्यक प्रतिक्रमणाध्ययन में दो गाथाएँ दी गई हैं-

अट्ठ निमित्तंगाइं दिव्वुप्पायंतलिक्ख भौमं च।
अंगसरलक्खणवंजणं च तिविहं पुणोक्केक्कं॥

सुत्तं वित्ती तह वत्तियं च पावसुय अउणतीसविहं ।
गंधव्व नट्ट वत्थु आउं धणुवेय संजुत्तं ॥

अर्थ-दिव्य (व्यन्तरादिकृत अट्टहासादि विषयक शास्त्र), उत्पात, आन्तरिक्ष, भौम, अङ्ग, स्वर, लक्षण और व्यञ्जन। ये आठ निमित्तांग शास्त्र हैं। ये आठ सूत्र वृत्ति और वार्तिक के भेद से चौबीस हैं। पिछले भेद इस प्रकार हैं-

(२५) गन्धर्व शास्त्र-संगीत विद्या विषयक शास्त्र।

(२६) नाट्य शास्त्र-नाट्य विधि का वर्णन करने वाला शास्त्र।

(२७) वास्तु शास्त्र-गृहनिर्माण अर्थात् घर, हाट आदि बनाने की कला बतलाने वाला शास्त्र वास्तु शास्त्र कहलाता है।

(२८) आयु शास्त्र-चिकित्सा और वैद्यक सम्बन्धी शास्त्र।

(२९) धनुर्वेद-धनुर्विद्या अर्थात् बाण चलाने की विद्या बतलाने वाला शास्त्र धनुर्वेद शास्त्र कहलाता है।

हरि० आ० प्रतिक्रमण अध्य० पृ० ६६०) (उत्तराध्ययन अ० ३१ गा० १९)

तीसवाँ बोल संग्रह

९५७-अकर्मभूमि के तीस भेद

जिन क्षेत्रों में असि (शस्त्र और युद्ध विद्या), मसि (लेखन और पठन पाठन) और कृषि (खेती) तथा आजीविका के दूसरे साधन रूप कर्म अर्थात् व्यवसाय न हों तथा तप, सयम, अनुष्ठान वगैरह कर्म न हों उसे अकर्मभूमि कहते हैं। अकर्मभूमियाँ तीस हैं-हैमवत, हैरण्यवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरु और उत्तरकुरु ये छः क्षेत्र जम्बूद्वीप में हैं। धातकीखंड और अर्द्धपुष्कर में ये छहों क्षेत्र दो दो की संख्या में हैं। इस प्रकार पाँच हैमवत, पाँच हैरण्यवत, पाँच हरिवर्ष, पाँच रम्यकवर्ष, पाँच देवकुरु और पाँच उत्तरकुरु कुल तीस क्षेत्र अकर्मभूमि के हैं।

इन तीस क्षेत्रों में उत्पन्न मनुष्य अकर्मभूमिज कहलाते हैं। यहाँ असि मसि और कृषि का व्यापार नहीं होता। इन क्षेत्रों में दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं। ये वृक्ष अकर्मभूमिज मनुष्यों को इच्छित फल देते हैं। किसी प्रकार का कर्म न करने से तथा कल्प वृक्षों द्वारा भोग प्राप्त होने से इन क्षेत्रों को भोगभूमि और यहाँ के मनुष्यों को भोगभूमिज कहते हैं। यहाँ स्त्री पुरुष युगल रूप से (जोड़े से) जन्म लेते हैं इसलिये इन्हें युगलिया भी कहते हैं।

अकर्मभूमि के, क्षेत्रों के, मनुष्यों के, संस्थान संहनन अवगाहना स्थिति आदि इस प्रकार हैं:—

गाउअमुच्चा पलिओवमाउणो वज्जरिसह संघयणा ।
हेमवए रएणवए अहमिंद णरा मिहुण वासी ॥
चउसट्ठी पिट्ठकरंडयाण मणुयाण. तेसिमाहारो ।
भत्तस्स चउत्थस्स य गुणासीदिणऽवच्चपालणया ॥

भावार्थ—हैमवत, हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्यों की अवगाहना एक गाउ (दो मील) की और आयु एक पल्योपम की होती है। वे वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरस्र संस्थान वाले होते हैं। सभी अहमिन्द्र और युगलिया होते हैं। उनके शरीर में ६४ पांसलियाँ होती हैं। एक दिन के बाद उन्हें आहार की इच्छा होती है। वे ७६ दिन तक अपनी सन्तान का पालन पोषण करते हैं।

हरिवास रम्मएसुं आउपमाण सरीरमुस्सेहो ।
पलिओवमाणि दोण्णि उ दोण्णि उ कोसुस्सिया भणिया ॥
छट्ठस्स य आहारो चउसट्ठि दिणाणि पालणा तेसिं ।
पिट्ठ करंडयाण सयं अट्ठावीसं मुणेयव्वं ॥

भावार्थ-हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्रों के मनुष्यों की आयु दो पल्योपम की, और शरीर की ऊँचाई दो गाउ (दो कोस) की होती है। उनके वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरस्र

संस्थान होता है। दो दिन के बाद उनको आहार की इच्छा होती है। उनके शरीर में १२८ पांसलियाँ होती हैं। माता पिता ६४ दिन तक अपनी सन्तान का पालन पोषण करते हैं।

दोऽवि कुरूसु मणुया तिपल्ल परमाउणो तिकोसुच्चा।
पिट्ठिकरंडसयाइं दो छप्पएणाइं मणुयाणं ।
सुसमसुसमाणु भावं अणु भवमाणाणऽवच्च गोवणया ॥
अउणापएण दिणाइं अट्ठम भत्तस्स माहारो ॥

भावार्थ—देवकुरु और उत्तरकुरु के मनुष्यों की आयु तीन पल्योपम की और शरीर की ऊँचाई तीन गाउ की होती है। उनके वज्र ऋषभनाराचसंहनन और समचतुरस्र संस्थान होता है। उनके शरीर में २५६ पाँसलियाँ होती हैं। सुषमसुषमा की स्थिति का अनुभव करते हुए ये अपनी सन्तान का पालन ४९ दिन तक करते हैं। तीन दिन के बाद उनको आहार की इच्छा होती है।

अन्तरद्वीपों में भी कल्पवृक्ष होते हैं और वे ही वहाँ के युगलियों की इच्छा पूर्ण करते हैं किन्तु अन्तरद्वीप के कल्पवृक्षों का रसास्वाद, वहाँ की भूमि का माधुर्य तथा वहाँ के मनुष्यों के उत्थान, बल, वीर्यादि हैमवतादि की अपेक्षा अनन्त भाग हीन होते हैं। ये बातें अन्तरद्वीप की अपेक्षा हैमवत हैरण्यवत में अनन्तगुणी और हैमवत हैरण्यवत से हरिवर्ष रम्यकवर्ष में अनन्तगुणी और वहाँ की अपेक्षा भी देवकुरु उत्तरकुरु में अनन्तगुणी होती है।

उपरोक्त तीस अकर्मभूमि के मनुष्य अल्प कषाय वाले तथा अल्प स्नेहानुबन्ध वाले होते हैं। ये अपनी आयु पूरी करके स्वर्ग में जाते हैं। इनकी मृत्यु केवल उबासी, खाँसी या छींक आने से होती है। किन्तु इन्हें किसी प्रकार की शारीरिक पीड़ा नहीं होती। ये भद्र परिणाम वाले होते हैं। (पन्नवणा पद १ सूत्र ३७)

६५८--परिग्रह के तीस नाम

अल्प, बहु, अणु, स्थूल, सचित्त, अचित्त आदि किसी भी द्रव्य पर मूर्च्छा (ममत्व) रखना परिग्रह है। इसके तीस नाम हैं-

(१) परिग्रह (२) सञ्चय (३) चय (४) उपचय (५) निधान (६) सम्भार (७) सङ्कर (८) आदर (९) पिण्ड (१०) द्रव्यसार (११) महेच्छा (१२) प्रतिबन्ध (अभिष्वङ्ग) (१३) लोभात्म (१४) महर्दि (महती याञ्चा) (१५) उपकरण (१६) संरक्षणा (१७) भार (१८) सम्पातोत्पादक (१९) कलिकरण्ड (कलह का भाजन) (२०) प्रविस्तार (धन धान्यादि का विस्तार) (२१) अनर्थ (२२) संस्तव (२३) अगुप्ति (२४) आयास (खेद रूप (२५) अवियोग (२६) अमुक्ति (२७ तृष्णा (२८) अनर्थक (निरर्थक) (२९) आसक्ति (३०) असन्तोष) (प्रश्नव्याकरण आश्रव द्वार ५)

९५९—भिक्षाचर्या के तीस भेद

निर्जरा बाह्य आभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार की है। बाह्य निर्जरा (बाह्य तप) के छः भेदों में भिक्षाचर्या तीसरा प्रकार है। औपपातिक सूत्र में भिक्षा के अनेक भेद कहे हैं और उदाहरण रूप में द्रव्याभिग्रह चरक, क्षेत्राभिग्रह चरक, कालाभिग्रह चरक, भावाभिग्रह चरक, उत्क्षिप्त चरक आदि तीस भेद दिये हैं। भिक्षाचर्या के तीस भेदों के नाम और उनकी व्याख्या इसी ग्रन्थ के तीसरे भाग में बोल नं० ६६३ में दिये गये हैं। (औपपातिक सूत्र १९)

९६०—महामोहनीय के तीस स्थान

सामान्यतः मोहनीय शब्द से आठों कर्म लिये जाते हैं और विशेष रूप से आठों कर्मों में से चौथा कर्म लिया जाता है। वैसे आठों कर्मों के और मोहनीय कर्म बन्ध के अनेक कारण हैं लेकिन शास्त्रकारों ने विशेष रूप से तीस स्थान गिनाये हैं। इन्हें

सेवन करने वालों के अध्यवसाय अत्यन्त तीव्र एवं क्रूर होते हैं। जिन पर इनका प्रयोग किया जाता है उनके परिणाम भी तीव्र वेदनादि कारणों से अत्यन्त संक्लिष्ट एवं महामोह उत्पन्न करने वाले हो जाते हैं इस कारण इन स्थानों का कर्त्ता अपने कार्य के अनुरूप ही सैंकड़ों भवों तक दुःख देने वाले महामोह रूप कर्म बाँधता है। तीस स्थान नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) जो जीव त्रस प्राणियों को पानी में डाल कर पाद प्रहारादि द्वारा उन्हें मारता है अथवा जल के आघात से यानी पानी में डूबा कर उन्हें मार देता है वह महामोहनीय कर्म बाँधता है।

(२) जो किसी प्राणी के नाक, मुख आदि इन्द्रिय द्वारों को हाथ से ढक कर और उसका श्वास रोक कर घुर घुर शब्द करते हुए उसे मार डालता है वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है।

(३) जो व्यक्ति बहुत से प्राणियों को मण्डप या बाड़े आदि स्थानों में घेर कर चारों ओर अग्नि जला देता है और धुँए से दम घोट कर निर्दयता पूर्वक उनकी हिंसा करता है, क्रूर अध्यवसाय वाला वह दुरात्मा महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है।

(४) जो व्यक्ति किसी प्राणी को मारने के लिये दुष्ट भाव से उसके सिर पर खड्ग, मुद्गर आदि शस्त्रों से प्रहार करता है। प्रकृष्ट प्रहार द्वारा उसके उत्तमाङ्ग (शरीर में सब से प्रधान अङ्ग मस्तक) का विदारण कर उसके प्राणों का विनाश करता है वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है।

(५) जो व्यक्ति किसी प्राणी के मस्तक पर कस कर गीला चमड़ा बाँधता है और निर्दयतापूर्वक उसकी हिंसा करता है। तीव्र अशुभ आचरण वाला वह प्राणी महामोहनीय कर्म बाँधता है।

(६) जो धूर्त अनेक प्रकार के विश्वस्त वेष धारण करके मार्ग में चलते हुए पथिकों को धोखा देता है। उनको निर्जन स्थान में

ले जाकर योगभावित फल खिला कर मारता है अथवा भाले, डण्डे आदि के प्रहार से उनके प्राणों का विनाश करता है और ऐसा करके अपनी धूर्ततापूर्ण सफलता पर प्रसन्न होता है और हँसता है वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है।

(७) जो व्यक्ति गुप्तरीति से अनाचारों का सेवन करता है और कपट पूर्वक उन्हें छिपाता है। अपनी माया द्वारा दूसरे की माया को ढक देता है। दूसरों के प्रश्न का झूठा उत्तर देता है। मूल-गुण और उत्तर गुणों में लगे हुए दोषों को छिपाता है। सूत्र और अर्थ का अपलाप करता है यानी सूत्रों के वास्तविक अर्थ को छिपा कर अपनी इच्छानुसार आगमविरुद्ध अप्रासङ्गिक अर्थ करता है। वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है।

(८) निर्दोष व्यक्ति पर जो झूठे दोषों का आक्षेप करता है और अपने किये हुए दुष्ट कार्य उसके सिर मढ़ देता है। दूसरे ने अमुक पापाचरण किया है यह जानते हुए भी लोगों के सामने किसी दूसरे ही को उसके लिये दोषी ठहराता है। ऐसा व्यक्ति महामोहनीय कर्म का बँध करता है।

(९) जो व्यक्ति यथार्थता को जानते हुए भी सभा में अथवा बहुत से लोगों के बीच मिश्र अर्थात् थोड़ा सत्य और बहुत झूठ बोलता है, कलह को शान्त न कर सदा बनाये रखता है वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है।

(१०) यदि किसी राजा का मन्त्री रानियों का अथवा राज्य लक्ष्मी का ध्वंस कर राजा की भोगोपभोग सामग्री का विनाश करता है। सामन्त वगैरह लोगों में भेद डाल कर राजा को क्षुब्ध कर देता है एवं राजा को अधिकार च्युत करके स्वयं राज्य का उपभोग करने लगता है। यदि मन्त्री को अनुकूल करने के लिये राजा उसके पास आकर अनुनय विनय करना चाहता है तो अनिष्ट वचन कह

कर वह उसका अपमान करता है और उसे भोग्य भोगों से वञ्चित रखता है। इस प्रकार कृतघ्नतापूर्ण व्यवहार करने वाला विश्वास-घातक मन्त्री महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है।

(११) जो व्यक्ति वाल ब्रह्मचारी नहीं है किन्तु लोगों में अपने आपको वाल ब्रह्मचारी प्रकट करता है, स्त्री सुखों में गृद्ध होकर स्त्रियों के वश रहता है वह महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है।

(१२) जो व्यक्ति मैथुन से निवृत्त नहीं है, कुशील का आचरण करके भी जो दूसरों को ठगने के लिये अपने आपको ब्रह्मचारी वत-लाता है। गायों के बीच गधे का स्वर जैसे शोभा नहीं पाता उसी प्रकार उसका यह कथन भी सज्जनों में अनादेय एवं अशोभा-जनक होता है। ऐसा करने वाला अज्ञानी अपने आत्मा का ही अहित करता है। उसे अपनी झूठी वात वनाये रखने के लिये अनेकों वार माया मृषावाद का आश्रय लेना पड़ता है। स्त्री सुखों में आसक्त रहने वाला वह आत्मा महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है।

(१३) जो व्यक्ति जिस राजा या सेठ के आश्रय में रह कर आजीविका करता है, जिसके प्रताप से या जिसकी सेवा करके अपना निर्वाह करता है, उसी राजा या सेठ के धन से ललचा कर अनुचित तरीकों से उसे लेने का प्रयत्न करने वाला कृतघ्न व्यक्ति महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है।

(१४) कोई असमर्थ दीन व्यक्ति अपने स्वामी अथवा जन समूह के द्वारा समर्थ वना दिया जाय और उसके पास उनके योग से अतुल सम्पत्ति हो जाय इस प्रकार सम्पन्न होकर यदि वह अपने उप-कारक स्वामी के अथवा जन समूह के उपकारों को भूल कर उन्हीं से ईर्षा करने लगे तथा द्वेष एवं लोभ से दूषित चित वाला होकर, यश लक्ष्मी एवं भोग सामग्री की प्राप्ति में उन्हें विघ्न करे तो वह महामोहनीय कर्म का वन्ध करता है।

(१५) जैसे सर्पिणी अपने अण्डों के समूह को मार कर स्वयं खा जाती है उसी प्रकार जो व्यक्ति सब का पालन करने वाले घर के स्वामी की, सेनापति की, राजा की, कलाचार्य या धर्माचार्य की हिंसा करता है वह महामोहनीय कर्म का बन्ध करता है क्योंकि उपरोक्त व्यक्तियों की हिंसा करने से उनके आश्रित बहुत से व्यक्तियों की परिस्थिति शोचनीय बन जाती है।

(१६) जो देश के स्वामी और निगम (वणिक् समूह) के नेता यशस्वी सेठ की हिंसा करता है वह महामोहनीय कर्म बान्धता है।

(१७) जैसे समुद्र में गिरे हुए पुरुषों के लिये द्वीप आधारभूत है और वह उनकी रक्षा करने में सहायक होता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति बहुत से प्राणियों के लिये द्वीप की तरह आधार भूत एवं रक्षा करने वाला है अथवा जो दीप की तरह अज्ञानान्धकार को हटा कर ज्ञान का प्रकाश देने वाला है ऐसे नेता पुरुष की जो हिंसा करता है वह महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है।

(१८) जो दीक्षाभिलाषी है, जिसने दीक्षा अंगीकार कर रखी है, जो संयतो और उग्र तपस्वी है ऐसे व्यक्ति को जो बलात् श्रुत-चारित्र धर्म से भ्रष्ट करता है वह महामोहनीय कर्म बाँधता है।

(१९) जो अज्ञानी, अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन के धारक, श्रेष्ठ क्षायिक दर्शन वाले सर्वज्ञ जिन देव के सम्बन्ध में 'सर्वज्ञ नहीं है, सर्वज्ञ की कल्पना ही भ्रान्त है' इत्यादि अवर्णवाद बोलता है वह महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है।

(२०) जो दुष्टात्मा सम्यग्ज्ञान दर्शन युक्त, न्याय संगत सत्य धर्म एवं मोक्ष मार्ग की बुराई करता है। धर्म के प्रति द्वेष और निन्दा के भावों का प्रचार कर भव्यात्माओं को धर्म से विमुख करता है, वह महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है।

(२१) जिन आचार्य उपाध्याय से श्रुत और विनय की शिक्षा

प्राप्त की है उन्हीं की जो शिष्य ज्ञान दर्शन चारित्र की अपेक्षा निन्दा करता है। जैसे—आचार्य और उपाध्याय अल्पश्रुत हैं, अन्य-तीर्थिकों के संसर्ग से इनका दर्शन मलीन हो गया है, ये पासत्थे आदि की संगति करते हैं इत्यादि। ऐसा अविनीत कृतघ्न शिष्य महामोहनीय कर्म बान्ध है।

(२२) जो शिष्य आचार्य उपाध्याय की कृपा से ज्ञान एवं योग्यता प्राप्त कर उनकी सम्यक् प्रकार विनय आहार उपधि आदि से सेवा भक्ति नहीं करता। किन्तु ज्ञान का अभिमान करता हुआ आचार्य और उपाध्याय की सेवा की उपेक्षा करता है वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है।

(२३) जो अवहुश्रुत होते हुए भी 'मैं श्रुतवान् हूँ, अनुयोगधर हूँ' इस प्रकार आत्म श्लाघा करता है। क्या तुम अनुयोगाचार्य हो ? वाचक हो ? इस प्रकार किसी के पूछने पर, वैसा न होते हुए भी, हाँ कह देता है तथा मैं ही शुद्ध स्वाध्याय करने वाला हूँ इस प्रकार झूठी प्रशंसा करता है वह महामोहनीय कर्म बान्ध है।

(२४) जो तपस्वी नहीं होते हुए भी यश और ख्याति के लिये अपने आपको तपस्वी प्रसिद्ध करता है ऐसा व्यक्ति लोक में सब से बड़ा चोर है, वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है।

(२५) जो व्यक्ति आचार्य उपाध्याय और दूसरे साधुओं के बीमार होने पर, शक्ति होते हुए भी उपकार के लिये उनकी यथोचित सेवा नहीं करता किन्तु मन में सोचता है कि जब मैं बीमार था तब इन लोगों ने भी मेरी सेवा नही की थी तो फिर मैं इनकी सेवा क्यों करूँ ? ऐसा विचार कर सेवा से बचने के लिये जो छल कपट का आश्रय लेता है, छल करने में निपुण कलुषचित्त वाला वह धूर्त व्यक्ति भगवान् की आज्ञा की विराधना कर अपनी आत्मा के लिये अबोधिभाव उत्पन्न करता है एवं महामोहनीय कर्म का बंध करता है।

(२६) जो व्यक्ति बार बार हिंसाकारी शस्त्रों का और राज कथा आदि हिंसक एवं कामोत्पादक विकथाओं का प्रयोग करता है तथा कलह बढ़ाता है। संसार सागर से तिराने वाले ज्ञानादि तीर्थ का नाश करता हुआ वह दुरात्मा महामोहनीय कर्म बान्धता है।

(२७) जो व्यक्ति अपनी प्रशंसा के लिये अथवा दूसरों से मित्रता करने के लिये अधार्मिक एवं हिंसा युक्त निमित्त वशीकरण आदि योगों का प्रयोग करता है वह महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है।

(२८) जिसे देव और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों से तृप्ति नहीं होती और निरन्तर जिसकी अभिलाषा बढ़ती रहती है ऐसा विषय-लोलुप व्यक्ति सदा विषयवासना में ही डूबा रहता है और वह महामोहनीय कर्म बान्धता है।

(२६) जो व्यक्ति अनेक अतिशय वाले वैमानिक आदि देवों की ऋद्धि, द्युति (कान्ति) यश, वर्ण, बल और वीर्य आदि का अभाव बतलाते हुए उनका अवर्णवाद बोलता है, वह महामोहनीय कर्म का उपार्जन करता है।

(३०) जो अज्ञानी जनता में सर्वज्ञ की तरह पूजा प्रतिष्ठा प्राप्त करने की इच्छा से देव (ज्योतिष और वैमानिक), यक्ष (व्यन्तर) और गुह्यक (भवनपति) को न देखते हुए भी, 'ये मुझे दिखाई देते हैं' इस प्रकार कहता है, मिथ्या भाषण करने वाला वह व्यक्ति महामोहनीय कर्म उपार्जन करता है।

यहाँ महामोहनीय के तीस बोल दशाश्रुतस्कन्ध के आधार से दिये गये हैं। (दशाश्रुतस्कन्ध दशा ६) (समवायांग ३०)

(उत्तराध्ययन अध्ययन ३१ गा० १६)(हरिभद्रीयावश्यक प्रतिक्रमणाध्ययन पृ० ६६०)

अन्तिम मङ्गल— महावीर प्रभुं वन्दे, भवभीति विनाशनम् ।
मंगलं मंगलानां च, लोकालोक प्रदर्शकम् ॥
श्रीमज्जैनसिद्धान्त, बोल संग्रह संज्ञके ।
षष्ठे भागः समाप्तोऽयं, ग्रन्थे यत्प्रसादतः ॥
वैक्रमे द्विसहस्राब्दे, पञ्चम्यां कार्तिके सिते ।
भौमे कृतिरियं पूर्णा, भूयाद्भव्यहितावहा ।